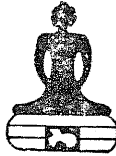
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और तेलुगु नाटकों में नारी समस्याएँ

आर० सुमनलता (एम० ए०)



ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति
नई दिल्ली-2 □ मसूरी

प्रथम संस्करण	बुद्धपूर्णिमा 1988
मूल्य	पचहत्तर रुपये केवल
प्रकाशक	**दिग्दर्शन चरण जैन** ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति 4697/5-21ए दरियागंज, नयी दिल्ली-2
मुद्रक	रुचिका प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

Hindi Aur Telugu Natakon men Nari Samasyain by Dr. R. Snman Lata, Published by Rishabh Charan Jain Evam Santati.

Price Rs. 75.00

अनुक्रम

प्रस्तावना 11—12

प्रथम अध्याय : भारतीय नारी : एक विश्लेषण 13—24

1. भारतीय नारी : एक विश्लेषण; 1.1 भारतीय संस्कृति और नारी; 1.2 नारी के पर्यायवाची शब्द; 1.3 नर और नारी में अन्तर; 1.4 नर और नारी : एक दूसरे के पूरक; 1.5 भारतीय नारी का विकास—; 1.5.1 वैदिक युग—; 1.5.1.1 कन्या; 1.5.1.2 पत्नी; 1.5.1.3 माता; 1.5.2 मुसलमानों का युग; 1.5.3 अंग्रेजों का युग; 1.5.4 स्वातन्त्र्योत्तर युग; 1.6 नारी समस्याएँ व साहित्य; 1.7 नारी समस्याओं का वर्गीकरण

द्वितीय अध्याय : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटकों में चित्रित अविवाहिता की समस्याएँ 25—47

2.1 असफल प्रेम; 2.2 प्रेम में धोखा; 2.3 बौद्धिक स्तर की समस्या; 2.4 आर्थिक समस्या; 2.5 अनमेल विवाह; 2.6 आर्थिक असमानता

तृतीय अध्याय : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटकों में चित्रित विवाहिता की समस्याएँ 48—79

3.1 पति से सम्बन्धित समस्याएँ—; 3.1.1 बौद्धिक स्तर की समस्या; 3.2 पति का सन्देह; 3.3 पति का दुर्व्यवहार; 3.4 पति का दुश्चरित्र; 3.5 अनमेल विवाह के दुष्परिणाम की समस्या; 3.6 बाल विवाह की समस्या; 3.7 विवाह में अस्वतन्त्रता; 3.8 परित्यक्ता की दशा; 3.9 वैवाहिक जीवन में सुरक्षा; 3.10 माता की समस्याएँ

चतुर्थ अध्याय : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटकों में चित्रित विधवाओं की समस्याएँ 80—89

4.1 विधवाओं की समाज में दशा; 4.2 विधवा पुनर्विवाह की समस्या; 4.3 सन्तानवती विधवा; 4.4 बाल-विधवा की समस्या

पंचम अध्याय : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटकों में चित्रित वेश्याओं की समस्याएँ 90--103

5.1 वेश्या बनने के कारण; 5.2 वेश्या-सन्तान; 5.3 वेश्याओं के उद्धार में आनेवाले विघ्न; 5.4 वेश्याओं की समाज में दशा; 5.5 देवदासी की समस्या

षष्ठ अध्याय : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटकों में चित्रित अन्य समस्याएँ 104—125

6.1 दहेज की समस्या; 6.2 पेशे में रहनेवाली नारी की समस्या; 6.3 परदे की समस्या; 6.4 विवाह-विच्छेद की समस्या; 6. 5 सामाजिक सुरक्षा

सप्तम अध्याय : उपसंहार 126—140

सहायक ग्रन्थ-सूची

प्रस्तावना

"कत विधि सृजी नारि जग मांहीं।
पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं।"

तुलसीदास जी की इन पंक्तियों में कितना सत्य है। अंग्रेजी के एक कवि के अनुसार भगवान् के पश्चात् मानव नारी का ही ऋण चुकाने में असमर्थ है क्योंकि नारी के ही कारण मानव का जन्म ही नहीं वरन् सुखी जीवन भी सम्भव है। किन्तु खेद इस बात का है कि बहुधा नारी की इस महानता को भुला दिया जाता है। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह हम जानते हैं कि वैदिक युग में नारी को मूर्धन्य स्थान प्राप्त था। वह सहधर्मचारिणी तथा अर्धांगिनी के पद पर प्रतिष्ठित थी और सृष्टि में सबसे वन्दनीय था मातृत्व। प्राचीन वैभव की इस स्वप्नावस्था से जगकर देखें तो आज की यथार्थ स्थिति हमारे सामने आती है। साथ ही साथ कई प्रश्न भी मस्तिष्क में उठ खड़े होते हैं। जैसे—क्या वैदिक युग से लेकर आज तक नारी वस्तुतः समाज द्वारा इतनी ही पूज्य, इतनी ही सम्मान्य समझी जा रही है? क्या आज भी भारतीय समाज नारी को वह प्राचीन महत्व दे रहा है...आदि आदि।

'काव्येषु नाटकं रम्यं' कहा गया है। साहित्य की अन्य विधाओं से नाटक इसलिए अधिक प्रभाशाली हैं क्योंकि वह श्रव्य ही नहीं वरन् दृश्य भी हैं। श्रोताओं एवं दर्शकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है। 'मेयर' के अनुसार किसान और नागरिक के बिना काव्य का काम चल सकता है, परन्तु नारी के बिना काव्य के अस्तित्व की कल्पना भी असम्भव है। नाटक भी इसके अपवाद नहीं हैं। साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग होने के कारण नाटकों में समाज की अनेक समस्याओं के साथ-साथ 'नारी-समस्या' को भी प्रधानता दी गयी है। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक ही नहीं, वरन् साहित्यिक रूप से भी भारत के इतिहास में 'स्वातन्त्र्योत्तर काल' अत्यन्त महत्वपूर्ण है। देश की सभी भाषाओं में नाटककारों ने अपने चारों ओर के वातावरण की पृष्ठभूमि में नारी समस्याओं का चित्रण कर उनके समाधान भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है क्योंकि साहित्य ही समाज को आगे बढ़ाता है। अतः अपने शोध प्रबन्ध का विषय मैंने 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और तेलुगु नाटकों में नारी समस्याएँ' को चुनने का साहस किया। अपनी इस परिधि में यथासम्भव उनका अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है।

सम्पूर्ण अध्ययन का सात अध्यायों में विभाजन किया गया है। प्रथम अध्याय में —"भारतीय नारी : एक विश्लेषण" में भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान, नर और नारी में अन्तर के साथ-साथ वैदिक युग तथा मध्ययुग से लेकर आधुनिक युग तक नारी की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसी में नारी समस्याओं का वर्गीकरण भी किया गया है—जिनका आगे के अध्यायों में विस्तृत रूप से अध्ययन प्रस्तुत किया है। यह अध्ययन स्थूल रूप से नारी के विभिन्न रूप—अविवाहिता, विवाहिता, विधवा तथा वेश्याओं के आधार पर है।

द्वितीय अध्याय में अविवाहित नारी की समस्याओं का सामान्य चित्रण कर, नाटकों के सम्बन्ध में विशेष अध्ययन किया गया है। इसके अन्तर्गत अविवाहिता का असफल प्रेम, प्रेम में धोखा, बौद्धिक स्तर की समस्या, आर्थिक समस्या, अनमेल विवाह, आर्थिक वैषम्य जैसी समस्याओं का विश्लेषण है।

विवाहिता नारी की समस्याओं की संख्या कम नहीं है। तृतीय अध्याय में पति से सम्बन्धित विवाहिता की समस्याएँ—जैसे बौद्धिक स्तर की समस्या, पति का सन्देह, पति का दुर्व्यवहार, पति का दुश्चरित्र, अनमेल विवाह के दुष्परिणाम, बाल विवाह की समस्या, विवाह में अस्वतन्त्रता, परित्यक्ता की दशा, वैवाहिक जीवन में सुरक्षा तथा माता की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ अध्याय में विधवाओं की समस्याएँ हैं। विधवाओं की समाज में दशा, विधवा विवाह, सन्तानवती विधवा, बाल विधवा की समस्याओं में विभाजन का अध्ययन किया गया है।

पंचम अध्याय में वेश्याओं की समस्याओं का अध्ययन है। समाज में वेश्या बनने के कारण क्या हैं? वेश्याओं की सन्तान की स्थिति क्या होती है? वेश्या उद्धार में आने वाले विघ्न, वेश्याओं की समाज में दशा तथा देवदासी की समस्या इस परिधि में आते हैं।

छठे अध्याय में सम्पूर्ण नारी वर्ग के सामने उपस्थित होने वाली अन्य समस्याओं जैसे—दहेज की समस्या, पेशे में रहने वाली नारी की समस्या, परदे की समस्या, विवाह विच्छेद की समस्या, सामाजिक सुरक्षा पर विचार किया गया है।

सप्तम अध्याय में— स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटकों की नारी समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

अन्त में इस कार्य में जिनकी सहायता मुझे मिली है, उन सभी के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

आर० सुमनलता

स्नेहमयी स्वर्गीया जननी की
पावन स्मृति में

आशंसा

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि डॉ० आर० सुमनलता का एम० फिल उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रवन्ध प्रकाशित होकर, विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

वर्तमान परिस्थितियों में देश की भावात्मक एकता की सिद्धि का एकमात्र उपाय तुलनात्मक अध्ययन ही है। बाह्य रूप से विभिन्न लगने वाले भारतीय साहित्य की आत्मा एक है। पं० राधाकृष्णन ने ठीक ही कहा था कि the scriptrs are diffcrent but the soul is sane.

तुलनात्मक अध्ययन की इस दिशा में श्रीमती सुमनलता ने स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और तेलुगु के नाटकों में चित्रित नारी भावना के साम्य और वैषम्य का तुलनात्मक परिशीलन करने का सफल प्रयास किया है। अविवाहिता, विवाहिता, विधवा, वेश्या आदि चार वर्गों में नारी जीवन को बाँटकर, वर्तमान समाज में उत्पन्न उनकी समस्याओं के चित्रण में हिन्दी और तेलुगु के नाटककारों के दृष्टिकोण को रेखांकित करने के प्रयत्न श्रीमती सुमनलता, निश्चय ही सफल रही हैं।

आशा है, भविष्य में भी, श्रीमती सुमनलता इसी प्रकार तुलनात्मक अध्ययन द्वारा अनेकता में विभक्त भारतीय आत्मा की एकता को स्थापित करने का प्रयास करती रहेंगी।

21-2-1988 —डॉ० भीमसेन निर्मल

दो शब्द

पुरुष प्रधान समाज ने सभी देशों में और सभी कालों में दम्भी होकर नारी की महिमा खूब गायी है और उसका शोषण भी जी भरकर किया है। आज भी जब नारी स्वातन्त्र्य का नारा (Women's Liberation movement) काफी बुलन्द स्वरों में विश्व के वायु-मण्डल में गूँज रहा है, ऐसे समय में—तथाकथित, सुविकसित, सुसभ्य देशों को मिलाकर भी—नारी 'शोषित वर्ग' का ही प्रतिनिधित्व करती है। नारी समस्याएँ वस्तुत: उसके तन-मन के समान ही जटिल हैं।

प्रसन्नता की बात है कि उस्मानिया विश्वविद्यालय की शोध छात्रा डॉ० श्रीमती सुमनलता ने गहन अध्ययन के पश्चात् 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और तेलुगु नाटकों' में पायी जाने वाली नारी समस्याओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। स्वयं नारी होने के कारण आपकी दृष्टि विशेष पैनी रही है। भारतीय साहित्य में नारी को 'श्रद्धा-साकार' भले ही कहा गया हो, उसके प्रति अश्रद्धा ही वस्तुत: अधिक दिखलायी जाती रही है; उसे मूर्तिमन्त प्रेम भले ही कहा गया हो, उसका तिरस्कार ही विशेष हुआ है; और ममतामयी का बड़ा गरिमामय नाम देकर भी उसके मातृत्व का शोषण ही अधिक किया गया है। संसार भर की समस्याओं को सुलझाने की क्षमता रखने वाली नारी को ही हमने समस्या बना दिया है। पहेली बूझने की शक्ति रखने वाली नारी को ही पहेली बनाकर छोड़ दिया है। समस्त सृष्टि को दृष्टि व दिशा प्रदान करने वाली नारी को ही दृष्टिहीन और दिशा-भ्रष्ट करके छोड़ा है और शक्ति-स्वरूपा के रूप में प्रशंसित नारी को मात्र सहन शक्ति की तुला पर ही हमने तोला है। ऐसी भारतीय नारी की हिन्दी व तेलुगु नाटक साहित्य में चित्रित, निरुपित समस्याओं पर लेखिका ने न्याय दृष्टि से विचार किया है और वह अपमे प्राप्तव्य से कितनी दूर है और रहेगी, इस कटु यथार्थ को स्पष्ट किया है।

स्वातन्त्र्योत्तर युग के साहित्य में भी नारी न स्वतन्त्र है, और न पूर्ण रूप से परतन्त्र ही। 'कलत्र' के रूप में चित्रित भारतीय नारी प्राचीन काल में पूर्ण परतन्त्र थी किन्तु आज भी स्वातन्त्र्योत्तर युग की नारी कहलाने को तो स्वतन्त्र है, किन्तु उसकी स्वतन्त्रता दिखलाने का पुरुष को मोह है, और उसकी यथार्थ परतन्त्रता छिपाने का उसका

प्रयास रहता है। ऐसी वास्तविकता का पर्दाफाश करने वाले साहित्यकारों का साहित्य अपने में विशिष्ट महत्व रखता है।

डॉ० (श्रीमती) सुमनलता ने विषय चयन से लेकर विषय समापन तक अपने दृष्टिकोण को सन्तुलित, वैज्ञानिक, न्याय युक्त तथा पूर्वाग्रह-मुक्त रखा है। यही इस शोध ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता है। वन्दनीय नारी, महिला से अधिक विश्व की महिमा है, और ऐसे विषय पर किया गया शोध कार्य जितना स्तुत्य है, उतनी ही शोध-छात्रा भी अभिनन्दनीय है।

आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
उस्मानिया विश्वविद्यालय

डॉ० ललितकुमार पारिख

प्रथम अध्याय

भारतीय नारी : एक विश्लेषण

"नारी-निर्झर की गूँज, नदी की उमड़न,
आँधी-पानी-तूफान, आग की दहकन,
ऊषा का उन्माद राग, लाज संध्या की,
धरती-सी धीरजवान, सिन्धु-सी उन्मत।
नारी शिव की नवशक्ति तपस्या अर्जित,
प्रज्वलित शिखा-सी स्नेह-विन्दु-संवर्धित।
निज ज्वाला में लवलीन छीन तम करती
नारी सर्जन के लिए विमुग्ध समर्पित।"[1]

यह है नारी (का रूप) जिसके बिना भगवान की इस सृष्टि को सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि नारी प्रकृति का एक महान् तथा अपूर्व अंग है।

1.1 भारतीय संस्कृति और नारी

भारतीय संस्कृति हजारों वर्षों से एक प्रवाह के रूप में चली आ रही है, जिसमें विविध संस्कृतियों का मिलन हुआ है। फिर भी आर्य संस्कृति की महानता यह है कि विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिलन होने पर भी, उसने अपने मूल सिद्धान्तों का कभी भी त्याग नहीं किया। हाँ अन्य संस्कृतियों के अच्छे तत्त्वों का ग्रहण अवश्य किया। इसीलिए सम्पूर्ण विश्व में आर्य संस्कृति का अपूर्व गौरव स्वीकृत है, क्योंकि वह सनातन ही नहीं वरन् शाश्वत भी है।

"भारतीय संस्कृति ने सम्पूर्ण विश्व में नारी तत्त्व को ही देखा है। सृष्टि, स्थिति तथा लय का कारण पराशक्ति को माना है जो विश्व के सभी प्राणियों में शक्ति के रूप में गोचर होती है। सूर्य का ताप और चन्द्र की शीतलता—इस शक्ति के ही कारण हैं। दार्शनिकों के लिए वह शक्ति माया, प्रकृति या परमेश्वरी है तो आध्यात्मवादियों ने उसे कुण्डलिनी, योगमाया, मुक्तिकान्ता आदि माना है। कवियों के लिए ऊषा बाला है,

वन लक्ष्मी है, नदी देवता है। इस प्रकार सारे विश्व में नारीत्व का कोमल रूप ही गोचर होता है।"[2]

इसीलिए स्वामी विवेकानन्द का कहना सच है कि "यथार्थ शक्ति पूजक तो वह है, जो यह जानता है कि ईश्वर विश्व में सर्वव्यापी शक्ति है और जो स्त्रियों में उस शक्ति का प्रकाश देता है।"[3]

वायु के बिना प्राणी जीवित नहीं रह सकता, किन्तु उसकी पूजा नहीं की जाती। इसी तरह ऋषियों ने भी स्त्रीत्व को एक अलग रूप नहीं दिया। किन्तु भारतीय साहित्य में जितना 'स्त्रीत्व' दीखता है, उतना संसार के अन्य साहित्यों में नहीं।

आर्य संस्कृति में नारी का स्थान वह है जो किसी राष्ट्र में उसके झण्डे का होता है और शरीर में सिर का होता है। अर्थात् समाज में नारी को ऊँचे-से-ऊँचा पद दिया गया था तथा समाज का नेतृत्व भी उस पर था।[4]

1.2 नारी के पर्यायवाची शब्द

रूप, गुण आदि विभिन्न तत्त्वों के आधार पर नारी के विविध नाम हैं।

"स्त्री योशिदवला योशा नारी सीमंतिनी वधू:
प्रतीपदर्शिनी वामा वनिता महिला तथा।"[5]

'नृ' अथवा 'नर' से 'नारी' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। सभी (जगत्) को अपने वश में रखनेवाला 'नर' है, तो उस नर को अपने वश में रखनेवाली 'नारी' है। सुन्दर वह है, जिससे हृदय द्रवित होता है। स्त्री को देखने पर पुरुष का हृदय आर्द्र एवं चित्त द्रवित होता है—इसलिए नारी 'सुन्दरी' है। पूज्य होने के कारण स्त्री 'महिला' है। वह 'वामा' भी है क्योंकि सौन्दर्य बिखेरती है। 'कामिनी' इसलिए है क्योंकि नर के विमोहन एवं आकर्षण का गहन कुंज है। अपने पति के मन को रमाने के कारण 'रमणी' है। भर्ता से जिसका भरण होता है वह 'भार्या' है। 'पत्नी' तथा 'योशा' वह है जो पति से मिलती है। शारीरिक रूप से दुर्बल रहने के कारण 'अबला' है। 'आत्मा वै पुत्र नामासि' के अनुसार पति को ही अपनी कोख से उत्पन्न करने के कारण पत्नी को 'जाया' कहा जाता है। गर्भ उसमें रहने के कारण वह 'माता' है। पुरुष के सभी कर्तव्यों में सहायता करने के कारण वह 'सहधर्मचारिणी' है। पत्नी के बिना पति को स्वर्ग और मुक्ति नहीं पा सकने के कारण वह 'अर्धांगिनी' है।

इस प्रकार नारी के कई पर्यायवाची शब्द हैं। कन्या का जन्म होते ही वह एक पुत्री है, विवाह के बाद पत्नी तथा सन्तान पाकर माता बनती है।

स्त्री के गुणों का वर्णन यजुर्वेद में मिलता है—वे ग्यारह हैं।[6]

1. इड़ा—उत्तम वाणी युक्त 2. रत्ना—प्रसन्न करनेवाली 3. हव्या—पूजनीय 4. काम्या—चाहने योग्य 5. चन्द्रा—आनन्द देनेवाली 6. ज्योति—घर को प्रकाशित करनेवाली 7. अदिति—दीन, साधना रहित 8. सरस्वती—उत्तम ज्ञान सम्पादन करने-वाली 9. मही—बहुत उदार भाव युक्त 10. श्रुति—वेद-विद्या जाननेवाली 11. अवध्या—कभी न मारने योग्य।

1.3 नर और नारी में अन्तर

शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से नर और नारी दोनों में अन्तर है। नारी जन्म से ही कोमल और सुकुमार होती है तो पुरुष कठोर। इसीलिए दोनों के व्यवहार तथा व्यक्तित्व में भेद पाया जाता है। "फ्रायड का नारी के विषय में कथन है कि नारी स्वभाव में व्याप्त ईर्ष्या तथा हेय भावना पुरुष की अपेक्षा उसके मानसिक जीवन में विशेष प्रभाव डालते हैं। वस्तुतः फ्रायड के अनुसार पुरुष की अपेक्षा नारी कम उत्तेजनात्मक, कम निडर, परतन्त्र, अधिक ईर्ष्यालु तथा अधिक प्रकृत्यात्मक है।"[7] नारी में पुरुष की अपेक्षा अधिक लज्जा पायी जाती है जो उसका पुरुष की अपेक्षा अधिक सम्वेदनशील होने का द्योतक है।

"नर तथा नारी के व्यक्तित्व में पाये जानेवाले भेद शारीरिक रचना के साथ ही साथ सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारणों से भी हैं। इनमें से किसी एक का नहीं, वरन् सभी का संयुक्त रूप से प्रभाव प्राणी के व्यक्तित्व पर पड़ता है।"[8]

1.4 नर और नारी एक-दूसरे के पूरक

"भारतीय चिन्तन सदा से ही स्फटिक स्वच्छ रहा है। वर्गीकरण की असाधारण प्रतिभा है—भारतीय मस्तिष्क में—और उस प्रतिभा को कार्यान्वित करने की क्षमता भी। प्रश्न है 'को नाम स्त्री ?' 'को नाम पुरुषः ?' भोजन, वसन, खान-पान, निद्रा, शयन जैसे शारीरिक कृत्यों में दोनों समान हैं। बुद्धि, मेधा में भी दोनों की समानता है। भेद होता है जब दोनों की सर्जन शक्ति का प्रश्न उठता है। सर्जन क्रिया में पुरुष पुरुष है, स्त्री स्त्री है। दोनों विशिष्ट, अलग, एक-दूसरे से भिन्न, फिर भी एक-दूसरे के पूरक, एक-दूसरे के ऊपर निर्भर दोनों की सक्रियता अन्योन्याश्रित है— दीपक और दियासलाई की भाँति।"[9]

नर और नारी विधाता की दो अद्भुत देन हैं। जिनके संयोग में ही सृष्टि का मूल निहित है। स्त्री और पुरुष को हम रथ के दो पहिये या पक्षी के दोनों पर मान सकते हैं क्योंकि एक के बिना दूसरा निश्चल है। नारी के बिना पुरुष का कोई अस्तित्व नहीं, और पुरुष के अभाव में नारी का कोई मूल्य नहीं। दोनों का सम्बन्ध अभिन्न, अखण्ड और अनादि है। यही कारण है कि सृष्टि के आदिकाल से दोनों एक-दूसरे के जीवन संगी बनते चले आये हैं तथा सृष्टि को आगे बढ़ाने की सहायता करते हैं। "समाज ने उनकी इस जीवन मैत्री को विवाह की संज्ञा दी है, कुछ अधिकार सौंपे हैं, कुछ उत्तरदायित्व निर्धारित किये हैं तथा इस प्रकार उनके इस अप्रतिम सम्बन्ध को संस्था के रूप में परिणित किया है।"[10]

नर और नारी की सृष्टि भिन्न दृष्टिकोणों से हुई है। पुरुष अपनी शारीरिक शक्ति से जो काम कर सकता है स्त्री के लिए वह सभी अवस्थाओं में सम्भव नहीं, क्योंकि प्रकृति ने उसके ऊपर भिन्न दायित्व रखा है। इसका अर्थ यह नहीं कि स्त्री पुरुष से कम है। शारीरिक निर्माण अलग होने के कारण बौद्धिक रूप से एक-दूसरे के पीछे नहीं। गाँधीजी ने सही कहा है कि—"स्त्री-पुरुष समान हैं—इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों का

कार्य क्षेत्र एक ही है।

न्यायशास्त्र के सामने प्रतिरोध न होते हुए भी शिकार खेलना स्त्री की प्रकृति नहीं है। मृगया पुरुष की वृत्ति है। जिस प्रकार उनके बाह्य रूपों में अन्तर है, उसी प्रकार उनके कार्य क्षेत्र भी अलग हैं।"[11]

इसीलिए भारतीय चिन्तन में अर्ध नारीश्वर तत्त्व को प्रधानता दी गयी है जिसके दोनों हिस्से महान् हैं। स्त्री तथा पुरुष के सहयोग में ही प्रगति सम्भव है। जैसे दियासलाई की रगड़ से दीपक जलकर प्रकाश फैलाता है। पुरुष की शक्ति को अगर दियासलाई की शक्ति जैसी कड़ी मानें तो स्त्री का सौन्दर्य दिये के प्रकाश जैसा है—कोमल। दोनों के सहयोग से अन्धकार दूर भागता है, अज्ञान नष्ट होता है। अत: नर और नारी दोनों में से कौन अधिक है? या महान् है? यह प्रश्न एक समाज या एक देश का नहीं जो युगों से चला आ रहा है और जिसका समाधान आज भी अप्राप्य है।

"नर दोपहर की धूप, ताप का सरगम
नारी करुणा की कोर, भोर की शबनम्
संध्या में दोनों एक रागमय अम्बर
नक्षत्रों में मुस्कान चाँद में विभ्रम्।"[12]

1.5 भारतीय नारी का विकास

आज की भारतीय नारी विभिन्न युगों से विभिन्न अवस्थाओं से गुजरती आयी हैं। अत: आज की नारी की समस्याओं को जानने के पहले उनका अध्ययन करना असंगत न होगा।

1.5.1 वैदिक युग—"यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फला: क्रिया:"[13]

जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता रहते हैं, जहाँ उनका आदर नहीं होता है वहाँ सारे कार्य और प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। यह बहुत ही प्राचीन आदर्श रहा है। आदिकालीन समाज में सामूहिक विवाह का प्रचलन था। किन्तु इस व्यवस्था में नारी गुलाम नहीं थी। वैदिक काल की नारी सम्पूर्ण रूप से स्वतन्त्र और पुरुषों के समान थी।

1.5.1.1 कन्या

कन्या के लिए ऋग्वेद में 'दुहिता' शब्द का प्रयोग मिलता है। दूध, मलाई, मक्खन जैसी वह कोमल है। भारतीय कन्या गृहस्थी सम्बन्धी कार्यों के साथ-साथ ललित कलाओं में भी निपुण थी। उसे बहुत लाड़-प्यार से देखा जाता था। "ऋग्वेद कालीन कन्या न बहुत भोली-भाली थी, न बलहीन, न मुग्धा। वह धैर्य से स्वयं निर्णय ले सकती थी। उसका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व था।"[14] अपने पति का चुनाव भी वह स्वयं कर सकती थी। उसकी समकालीन अरब की कन्या को जन्म होते ही जमीन में गाड़ दिया जाता था।[15] कितना भेद है दोनों की स्थिति में।

स्मृतियों में कन्या के पिता को महान् तथा कन्यादान को श्रेष्ठ घोषित किया गया

है। क्योंकि कन्यादान से ही सात पीढ़ियों का उद्धार होता है। कन्यादान के समय पिता के निम्न वचन उक्त धारणा के प्रमाण हैं—

क. "दास्यामि विष्णवे तुभ्यम ब्रह्मलोक जिगीवया" (ब्रह्म लोक पाने के लिए कन्या का दान कर रहा हूँ।)

ख. "त्वद्दानान्मोक्षमाप्तुयाम्" (अर्थात् हे कन्या तुम्हारे दान से मैं मोक्ष पाऊँगा।)

ग. "कन्यामिमांप्रदास्यामि पित्रणां तारणायवै"[16] (पितृ देवताओं को पार कराने के लिए इस कन्या का दान कर रहा हूँ।)

अध्ययन के क्षेत्र में भी तत्कालीन कन्यायें पीछे नहीं थीं। अपने घर में ही पिता या बड़े भाई से शिक्षा पाती थीं। गार्गी, रोमशा, अपाला, लोपामुद्रा, इन्द्राणी, पौलमि, सूर्या, मैत्री आदि स्त्रियाँ दर्शन शास्त्र में पुरुषों के समान थीं। अमरकोष में शिक्षित स्त्रियों के लिए—

"उपाध्यायाप्युपाध्यायी सादाचार्यापिचस्वतः"[17] कहा गया है।

1.5.1.2 पत्नी

वैदिक काल से लेकर आज तक हिन्दुओं के लिए विवाह एक पवित्र विधि है। अन्य धर्मों के समान एक समझौता नहीं है। वैदिक काल में पत्नी का स्थान कुटुम्ब में बहुत मुख्य था। कविकुल गुरु कालिदास के अनुसार "गृहिणी सचिवः सखी-मिथः प्रिया शिष्या ललिते कला विधौ"।[18] अर्थात् पत्नी ही पति के लिए एक सचिव, सखी तथा प्रिय शिष्या है।

ऋग्वेद में पत्नी का वर्णन इस प्रकार मिलता है :
आशा, योशी, वसूनर्युषा याति
प्रभुंजती, जरयन्ती, वृजिनंपद्वदीयती
उत्पादित पक्षिणं।"

अर्थात् "जिस प्रातःकाल में समस्त प्राणिकोटि अपने-अपने कार्य क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं, पक्षी उड़ रहे हैं, वह उषा एक कार्यनिपुण पत्नी की तरह सभी की रक्षा कर रही है।"[19] पत्नी तथा देवी में अन्तर नहीं है। गृहिणी के बिना घर शून्य रहता है तथा घर के अन्य सदस्य सभी मिलकर भी उसे पूरा नहीं कर सकते। 'इह' तथा 'पर' दोनों लोकों के सुख के लिए पत्नी की आवश्यकता थी। पत्नी यज्ञ आदि धर्म कार्यों में उसकी सहधर्म-चारिणी तथा अर्धांगिनी थी। पति धन कमाता था तो पत्नी उसका उचित व्यय करती थी। अतः यह मालूम होता है कि वैदिक काल में पत्नी तथा पति दोनों को समान स्वतन्त्रता थी।

1.5.1.3 माता

"उपाध्यायान् दशाचार्य
आचार्याणां शतं पिता

सहस्रन्तुपितृन्माता
गौरवेणातिरिच्यते ।"[20]

दस उपाध्यायों से एक आचार्य, सौ आचार्यों से एक पिता, हजार पिताओं से माता गौरव में बढ़कर है। भारतीय संस्कृति में माता का गौरवपूर्ण स्थान है। जननी और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी महान् बताया गया है।[21] परलोक प्राप्ति के लिए इहलोक में माता की पूजा करने की आवश्यकता है। माता ही प्रथम गुरु है, प्रथम सोपान है। इस विश्व के समस्त जीव माता के आधार पर ही जीवित रहते हैं। अपनी पत्नी के अलावा अन्य सभी स्त्रियों में मातृत्व देखने का आदर्श केवल भारतीय संस्कृति में ही मिलता है इसीलिए लक्ष्मण सीता के बारे में कहते हैं—

"नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कंकणे
नूपुरे त्वमि जानामि नित्यं पदाभिवन्दनात् ।"[22]

यह रही पुराने युग की महिला की स्थिति—किन्तु समय के साथ व्यक्तिगत सम्पत्ति का बोलबाला बढ़ते ही, नारी की शारीरिक कोमलता के कारण उसकी स्थिति गिरती चली गयी। अब उसकी स्थिति सिर्फ गृहस्थी को सँभालनेवाली और बच्चों को देखनेवाली तक ही सीमित हो गयी है।

पुरुष अपने आपको सृष्टि का प्रथम तथा प्रधान घोषित कर स्त्रियों पर कठिन-से-कठिन नियम लगाने लगा है। वैदिक काल में स्त्रियों को जो गौरव दिया जाता था, विद्या में पुरुषों के जो समान मानी जाती थी, वह स्थिति नहीं रही। नारी को किसी एक पुरुष के अधीन में रहना अनिवार्य घोषित किया गया। यथा—

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति ।"[23]

(छुटपन में पिता, यौवन में भर्ता तथा वृद्धावस्था में पुत्र स्त्री की रक्षा करते हैं, स्त्री को स्वतन्त्र रूप से नहीं रहना चाहिए।)

1.5.2 मुसलमानों का युग

मध्ययुगीन नारी की स्थिति और भी हीन है। मुसलमानी आक्रमणों के कारण देश में हल-चल मच गयी। धर्म के नाम पर देश-भर में अत्याचार होने लगे। इस स्थिति में अपनी मान की रक्षा के लिए हिन्दू जनता को प्राण और धन का त्याग करने के लिए तत्पर रहना पड़ा।

इसीलिए वैदिककालीन स्त्रियों की विवाह सम्बन्धी स्वतन्त्रता अब नष्ट हो गयी। इसकी रक्षा करने के लिए 'अष्टवर्षात् भवेत्कन्या' कहकर आठ-नौ साल की छोटी-सी आयु में ही उसका विवाह किया जाना आरम्भ हो गया।

उस युग की स्त्रियाँ घर की चारदीवारी के बाहर देखने का नाम भी न ले सकती थीं। उसी समय 'परदा' स्त्री के मुख पर आ गया जिसके कारण किसी भी प्रकार की प्रगति सम्भव नहीं रही। हाँ, यह प्रथा भी अधिकतर मध्यमवर्गीय और उच्चवर्गीय स्त्रियों के लिए ही प्रचलित थी, क्योंकि निम्न वर्गीय स्त्रियों को बाहर जाकर रोटी कमाने

की आवश्यकता थी। अतः समाज की बहुसंख्यक स्त्रियाँ अपनी परिधि में ही रह जाती थीं। उनका अपना कुछ भी व्यक्तित्व नहीं था। चारों ओर कई प्रकार के बन्धन लगाकर केवल पुरुष की आवश्यकताओं को देखना और उन्हें सुखी रखना ही स्त्री के लिए सब-कुछ मान लिया गया था।

'दि हिन्दू वूमन्स स्ट्रगल' नामक लेख में सुलोचना देलगाँवकर का कहना है—"विवाह होते ही स्त्री को ससुराल के वातावरण में घुलमिल जाना आवश्यक था। पातिव्रत्य की महानता घोषित की गयी थी, पति चाहे कैसा भी वर्ताव करे किन्तु पत्नी के लिए उसकी आज्ञा में रहना अनिवार्य था। उसकी परिधि—घर-गृहस्थी, पति-परिवार तक ही सीमित कर दी गयी थी। स्त्री-जीवन का ध्येय एक चतुर, होशियार और एक बहुत ही अच्छी पत्नी बनना था।"[24]

उस युग में सती प्रथा का महत्व बढ़ गया था। इसका कारण धार्मिक होने के साथ साथ सामाजिक भय भी था। क्योंकि पति की मृत्यु के बाद स्त्री की रक्षा करना एक नारी का उत्तरदायित्व हो जाता था। उस समय स्त्रियों के लिए भय का वातावरण रहता था। जौहर व्रत की कहानियाँ उसका प्रमाण हैं।

1.5.3 अंग्रेजों का युग

अंग्रेजों के शासन काल तक आते-आते भारतीय जन जीवन में कुछ अन्धविश्वास रूढ़ हो गये थे। जैसे बाल विवाहों का देश भर में प्रचलन था। सती प्रथा ने तीव्र रूप ले लिया था। तब लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने का नाम ही नहीं लिया जाता था। पुरुषों को बहु-विवाह करने से कोई रोक नहीं थी। देश भर में वेश्या-वृत्ति बढ़ गयी थी। स्त्रियों को केवल विलास की वस्तु समझा जाने लगा था। समाज के कई गणनीय व्यक्ति रखेलों का पोषण करने लगे थे। मन्दिरों में, शादी आदि सामाजिक सम्मेलनों में देवदासियों का नृत्य होना अनिवार्य हो गया था। छोटी-छोटी बालिकाओं की धन के लालच में वृद्धों से शादी कर देने के कारण बाल-विधवाओं की संख्या बढ़ने लगी थी। यह थी उन्नीसवीं शताब्दी की सामाजिक परिस्थिति।

अंग्रेजों का मुख्य लक्ष्य आर्थिक शोषण होने के कारण पहले उन्होंने भारत के सामाजिक और आर्थिक विषयों में विशेष रुचि न ली थी। किन्तु बाद में देश में शासन करने के कारण उनका रुचि लेना आवश्यक हो गया था। लार्ड विलियम बेंण्टिग ने सती प्रथा के निर्मूलन के लिए कमर बाँधी जिसमें राममोहन राय, कन्दकूरि, वीरेश लिंगम, पंतुलु आदि समाज सुधारकों ने अपना पूरा हाथ बँटाकर सफलता प्राप्त की। सती प्रथा तो रुक गयी किन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि विधवाओं की संख्या बढ़ने लगी। उनका भरण-पोषण एक बोझ समझा जाने लगा और उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी। विधवाओं का पुनर्विवाह करने के लिए कन्दुकूरि, गुरजाड़ अप्पाराव, राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि प्रमुख व्यक्ति प्रयत्न करने लगे। उससे सम्बन्धित बिल तो पास हो गया किन्तु आचरण में बहुत कम आया। फिर स्त्री शिक्षा को पुनः प्रोत्साहन मिलने लगा। देश के कई प्रमुख व्यक्तियों के साथ-साथ आर्य समाज तथा ब्रह्म समाज

जैसी संस्थाएँ इस दिशा में प्रयत्न करने लगीं।

भारत का प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम झाँसी की रानी जैसी वीरांगना के नेतृत्व में हुआ तथा देश-भर में जागरण हो गया। स्वतन्त्रता संग्राम में कई प्रमुख स्त्रियाँ अपने घर से बाहर आकर भाग लेने लगीं। बाल-विवाहों के दुष्परिणामों को मिटाने के लिए सन् 1929 में हरविलास शारदा के प्रयत्न से "शारदा एक्ट" पास हुआ। इस प्रकार समाज में बहु-विवाह, बाल-विवाह तथा सती प्रथा का विरोध दिखायी देने लगा।

आगे चलकर स्वतन्त्रता संग्राम के नेता गाँधीजी ने स्त्रियों में भी जागृति पैदा की तथा कोने-कोने में अपना सन्देश भेजने के लिए स्त्रियों को अपना साधन बनाया। इसी स्वतन्त्रता संग्राम में परदा प्रथा भी समाप्त होने लगी और नारी की मुक्ति का आन्दोलन भी शुरू हुआ। इस प्रकार "भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर अंग्रेजी शासन का प्रभाव महत्वपूर्ण है। आंग्ल भारतीय सम्पर्क से भारतीय जीवन में एक चेतना आयी। पुरानी परम्पराओं एवं रूढ़ियों पर अंग्रेजी शिक्षा का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा और भारतीय दृष्टि-कोण में व्यापकता आयी।"[25]

1.5.4 स्वातन्त्र्योत्तर युग

श्री कमलेश्वर ने अपनी नयी कहानी की भूमिका[26] में 'स्वातन्त्र्योत्तर' शब्द से आशय 15 अगस्त 1947 से आरम्भ होनेवाले युग से लिया है। वैधानिक रूप से हमें अंग्रेजों से मुक्ति 15 अगस्त 1947 को मिली थी।

समय के साथ-साथ नवीन आर्थिक परिस्थितियों के कारण संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगा जिसका प्रभाव नारी के जीवन पर भी पड़ा। मध्यम वर्ग की नारी अबला होते हुए भी पहले संयुक्त परिवार में किसी तरह अपना जीवन निर्वाह कर सकती थी। किन्तु अब उसे जीने के लिए आर्थिक संघर्ष करने के लिए तैयार होना पड़ा। उसे पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़ा होना पड़ा। स्वातन्त्र्योत्तर समाज में नारी शिक्षा, विधवा-विवाह, तलाक आदि प्रचलित होने लगे।

हिन्दू कोड बिल स्त्रियों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह स्त्री और पुरुष के अधिकारों में समानता लाने का प्रयत्न कर रहा है। बहु-विवाह पर नियन्त्रण, पारिवारिक सम्पत्ति में उत्तराधिकार, स्त्री को भी गोद ले सकने की सुविधाएँ दी गयीं। दहेज को कानूनन अवैध घोषित कर दिया गया।

यह सब होते हुए भी जब हम आधुनिक भारत के परिप्रेक्ष्य में नारी की स्थिति का आकलन करते हैं तो बड़ी विषम तथा जटिल स्थिति दिखायी देती है। क्योंकि "एक ओर प्रगति के पथ पर तेजी से बढ़ती हुई शहरी क्षेत्र की सुशिक्षित, सभ्य एवं आधुनिक नारियाँ हैं, जो घर से अधिक बाहर ज्यादा कार्यशील हैं, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष से कन्धे से कन्धा मिलाकर संघर्षरत हैं...वहीं दूसरी ओर दूर-दूर तक फैले हुए ग्रामीण क्षेत्र की वे नारियां भी हैं जो अभी भी निरक्षर पुरानी रूढ़ियों की गुलाम, घर की चारदीवारी तक ही सीमित तथा प्राचीन भारतीय परम्पराओं का पूर्ण निष्ठा एवं भक्ति के साथ निर्वाह करने में लगी हुई हैं।"[27]

आज के समाज में अत्यन्त वैविध्यपूर्ण विषय गोचरित होते हैं। जैसे "जब भी माता-पिता, सास-ससुर और पति के अंकुश और नियन्त्रण में अवगुण्ठनवती नारी और बाल-बधुओं के साथ-साथ विश्व भ्रमण और पर्वतारोही नारी और आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करनेवाली और सार्वजनिक एवं प्रशासनिक जीवन में भाग लेने वाली नारी का अस्तित्व बराबर दृष्टिगोचर होता है। समाज में बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, विवाह सम्बन्धों में कट्टरता के प्रचलन के साथ-साथ परिवारों में अभूतपूर्व परिवर्तन अन्तर्जातीय विवाह, विज्ञापनों द्वारा विवाह, विवाह की उम्र में वृद्धि, दूर-दूर विवाह करने की प्रवृत्ति, विवाह से पूर्व लड़के लड़की का घूमने जाना, देर में शादी होने या न होने पर लड़की का नौकरी करना आदि बातें बराबर मिलती हैं।"[28]

यदि हम इन परिस्थितियों को सूक्ष्म दृष्टि से परखें तो असंतृप्त ही होते हैं। शहर की नारियाँ अभुतपूर्व तरक्की हासिल करने पर भी उनका पारिवारिक जीवन उतना सन्तोषजनक नहीं दीखता। सुख और शान्ति का स्वर्ग कहा जानेवाला उनका गृह दुःख और कलह से भरा है। "वहीं दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में नारी निरक्षर व अशिक्षित होने से पिछड़ेपन के अन्धकार में पड़ी हुई है।···अज्ञान ने उसकी प्रगति के सभी मार्ग अवरुद्ध कर दिये हैं। वह आज भी रूढ़िवादी एवं लकीर की फकीर है। धार्मिक आडम्बरों, अन्ध-विश्वासों तथा पुरानी रूढ़ियों ने उसे आर्थिक दृष्टि से गिरा दिया है।···उसकी इस स्थिति का लाभ उठा पुरुष उसे अपना गुलाम बनाये हुए हैं।"[29]

शताब्दियों से पड़ी दासत्व की श्रृंखलाओं को तोड़कर मिली स्वतन्त्रता में भारतीय जनता की कई आशाएँ, आकाँक्षाएँ छिपी हुई थीं। प्रजा एक नये जीवन का स्वप्न देखने लगी जिसमें सभी और सभी के लिए सुख ही सुख छिपा हुआ है। किन्तु वास्तव में कानून के सामने समान होते हुए भी सामाजिक रूप से स्त्री और पुरुष की स्थिति में अन्तर नहीं मिटा। स्वतन्त्रता के बाद भी पर्दा प्रथा, विधवाओं की हीन दशा, कन्या पक्ष को नीच समझा जाना, अनमेल विवाह, आर्थिक परतन्त्रता आदि कुरीतियों में दबती हुई नारी दिखायी दे रही है जो चेष्टा करने पर भी जागृत न हो पा रही है।

स्त्रियों को चारों ओर की व्यवस्थाओं ने इस प्रकार वन्दी बना लिया है कि वह अच्छाई बुराई को जानते हुए भी अपने हित अहित का विचार कर कुछ नहीं कर सकती। 'तितली'[30] उपन्यास में प्रश्न यही किया जाता है--"तो क्या स्त्रियाँ अपने लिये कुछ भी नहीं कर सकतीं? उन्हें अपने सोचने का अधिकार भी नहीं है? और 'आकाश दीप'[31] की कहानी में यह प्रश्न उठाया गया है कि—'क्या स्त्री होना कोई पाप है?'

1.6 नारी समस्याएँ व साहित्य

साहित्य और समाज का सम्बन्ध अविच्छिन्न है। वे एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रित ही नहीं हैं वरन् एक दूसरे को प्रबल रूप से प्रभावित भी करते हैं। समाज से ही साहित्य उत्पन्न होने के कारण उसका प्रतिबिम्ब साहित्य में दिखायी देता है। प्राचीन युगों की सामाजिक स्थिति का परिचय तत्कालीन साहित्य के अध्ययन से ही प्राप्त होता है। उसी प्रकार वर्त-मान जीवन का चित्र विभिन्न साहित्यिक विधाओं में प्रस्तुत किया जा रहा है। स्वातन्त्र्यो-

त्तर भारत में समाज की विभिन्न समस्याओं का साहित्य की विभिन्न विधाओं में चित्रण किया जा रहा है। यथा उपन्यास, नाटक, कहानी, निबन्ध, कविता आदि में विभिन्न पक्षों पर विभिन्न शैली में चित्रण मिलता है। नाटकों का दर्शकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध भी होने के कारण उसका महत्त्व अधिक है।

"उपन्यास या कविता केवल पाठ्य या श्रव्य है। उनसे श्रोत्रेन्द्रिय की ही लालसा सन्तुष्ट हो पाती है। पर नाटक श्रव्य और पाठ्य के--अतिरिक्त दृश्य भी है। अत: यह कानों की ही नहीं आँखों की भी प्यास बुझाने में समर्थ है। काव्य के भिन्न-भिन्न अंगों— कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि में नाटक ही एक ऐसी चीज है जो भिन्न-भिन्न रुचिवाले लोगों के लिए आदरणीय बन जाती है। इसमें कथा है, कविता है, गीत है, नृत्य है, संघर्ष है, सरसता है, संवाद है, अभिनय है और आनन्द है। शास्त्र, शिल्प, योग, ज्ञान, कला और विद्या में से किसी का भी इसमें अभाव नहीं है। धर्मी और कामी, विनीत और अविनीत, बुद्धू और पण्डित सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिए यह उपभोग और उपयोग की वस्तु है।"[32]

"आलोच्य काल में सामाजिक नाटकों ने गुण एवं परिमाण दोनों में स्थिर डग बढ़ाये हैं। इस युग में समाज की ओर विशेष ध्यान दिया गया और अनेक सामाजिक समस्याओं को नाटकों में स्थान मिला, जिसमें से प्रधानता पायी—'स्त्री समस्या' ने। स्त्री के अनेक रूपों ने कई समस्याओं को समेटा और नाटककार ने बड़े मनोयोग से उन्हें संजोया। अन्य सामाजिक समस्याएँ जिन्हें नाटककारों ने अपनाया वे भी विवाह, ऊँच-नीच का भाव, परिवार की टूटती मेखला, सामाजिक अंकुश, आर्थिक विषमता इत्यादि।"[33]

पिछले युग में सुधारवादी दृष्टिकोण से कुछ नाटक लिखे गये थे जिनमें प्राय: स्त्री शिक्षा, विधवा-विवाह, तलाक तथा अनमेल विवाहों की समस्याओं पर हिन्दी तथा तेलुगु दोनों भाषाओं के नाटककारों ने प्रकाश डाला। आज के युग में नवीन प्रकार की समस्याओं का चित्रण हो रहा है। इस समय नारी अपने अधिकारों के प्रति विशेष रूप से जागरूक होने के कारण नारी और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों को लेकर कई नाटक आये हैं। आगामी अध्यायों में देश की दो प्रमुख भाषाएँ—हिन्दी तथा तेलुगु में स्वातन्त्र्योत्तर काल में लिखी गयी नाटकों में चित्रित नारी समस्याओं का अध्ययन किया गया है।

1.7 नारी समस्याओं का वर्गीकरण

हम सम्पूर्ण अध्ययन का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं—नारी के विभिन्न रूपों को लेकर उनकी समस्याओं पर प्रकाश डालना उचित होगा, जिसे हम पृष्ठ 23 पर दी गयी तालिका के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं—

नारी के रूप व समस्याएँ

अविवाहिता की समस्याएँ	विवाहिता की समस्याएँ	विधवा की समस्याएँ	वेश्या की समस्याएँ	अन्य समस्याएँ
1. असफल प्रेम 2. प्रेम में धोखा 3. बौद्धिक स्तर की समस्या 4. आर्थिक समस्या 5. अनमेल विवाह 6. आर्थिक असमानता	1. पति से सम्बन्धित समस्याएँ 1.1 बौद्धिक स्तर की समस्या 1.2 पति का सन्देह 1.3 पति का दुर्व्यवहार 1.4 पति का दुश्चरित्र 2. अनमेल विवाह के दुष्परिणाम की समस्या 3. बालविवाह की समस्या 4. विवाह में अस्वतन्त्रता 5. परित्यक्ता की दशा 6. वैवाहिक जीवन में सुरक्षा 7. माता की समस्याएँ	1. विधवाओं की समाज में दशा 2. विधवा पुनर्विवाह 3. सन्तानवती विधवा 4. बाल विधवा की समस्या	1. वेश्या बनने के कारण 2. वेश्या सन्तान 3. वेश्याओं के उद्धार में आनेवाले विघ्न 4. वेश्याओं की समाज में दशा 5. देवदासी की समस्या	1. दहेज की समस्या 2. पेशे में रहने वाली नारी की समस्या 3. परदे की समस्या 4. सामाजिक सुरक्षा 5. विवाह-विच्छेद

सन्दर्भ-संकेत

1. संस्कृति संचिका-53 से शिवमंगलसिंह 'सुमन'
2. युग-युगाल्लो भारतीय महिला—जे० वरलक्ष्मी, पृ० 6
3. संस्कृति-संचिका 53 से
4. संस्कृति-संचिका-53, पृ० 145
5. अमरकोष-अमरसिंह, पृ० 174
6. संस्कृति-संचिका-53, पृ० 95
7. छायावादी कवियों की नारी भावना (अमुद्रित शोध प्रबन्ध) प्रतिभा गर्ग, पृ० 70
8. वही, पृ० 71-72
9. स्त्री भारतीय चिन्तन में—श्रीमती कमला रत्नम् (संस्कृति-संचिका-52, पृ० 7)
10. भारतीय सामाजिक संरचना और संस्कृति—शंभूरत्न त्रिपाठी, प्रारम्भिक पृष्ठ
11. युग युगाल्लो भारतीय महिला—जे० वरलक्ष्मी, पृ० 412
11. शिवमंगलसिंह 'सुमन'
13. मनुस्मृति—3-55-56
14. युग युगाल्लो भारतीय महिला—जे० वरलक्ष्मी, पृ० 94
15. विस्तार के लिए—वही, पृ० 90
16. भारत नारी-नाडु-नेडु—श्रीमती इल्लिदल सरस्वती देवी, पृ० 14 के आधार पर
17. अमरकोषमु, पृ० 177
18. रघुवंश
19. युग युगाल्लो भारतीय महिला—जे० वरलक्ष्मी, पृ० 92
20. मनुस्मृति, पृ० 118
21. रामायण
22. मुझे कंकण या अन्य आभूषणों का पता नहीं। प्रतिदिन पाँवों को वंदन करने के कारण केवल नूपुर ही जानता हूँ।
23. मनुस्मृति, पृ० 31
24. अधर काज—संकलनकर्ता—श्यामकुमारी नेहरू, पृ० 394
25. नव्य हिन्दी नाटक—डॉ० सावित्री स्वरूप, पृ०17
26. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन —विवेकी राय, पृ० 17
27. आधुनिक भारत में नारी का स्थान (लेख) शम्सुद्दीन, संस्कृति-संचिका-53
28. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० 57
29. आधुनिक भारत में नारी का स्थान (लेख) शम्सुदीन—संक्रुति संचिका-53
30. जयशंकर प्रसाद
31. वही
32. आन्ध्र हिन्दी रूपक—डॉ० पाण्डुरंगराव, पृ० 2
33. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास—14 वाँ भाग, पृ० 286

द्वितीय अध्याय

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटकों में चित्रित अविवाहिता की समस्याएँ

प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय समाज में पुत्र का पैदा होना अधिक हर्षदायक माना जाता है। देवताओं से भी पुत्र सन्तति के लिए ही प्रार्थनाएँ की जाती हैं। 'वैदिक रेलिजियन' पुस्तक में मेक्डोनेल का कहना है, "वैदिक मन्त्रों में पुत्रों के लिए, पोतों के लिए, पुरुष सन्तति के लिए और कभी-कभी पत्नी के लिए प्रार्थनाएँ मिलती हैं, किन्तु पुत्री के लिए कहीं भी नहीं।...जो हर्ष तथा उल्लास पुत्र के जन्म पर दिखायी देता है, वह कन्या के जन्म पर नहीं।"[1]

भारतीय परिवार पितृ प्रधान होने के कारण पुत्रियों की अपेक्षा पुत्रों का विशेष आदर दीखता है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार—

"सखा ह जाया कृपणं हि दुहिता
ज्योतिर्हि पुत्रः परमे व्योमन्।"[2]

अर्थात् जहाँ पुत्र परिवार की आशा है, वहीं पुत्री परिवार के लिए अपार दुःख का कारण है। क्योंकि

"सम्भवे स्वजन दुःखकारिका,
सम्प्रदान समर्थ हारिका।
यौवने पिबहु दोष कारिका,
दारिका, हृदय-दारिका पितुः" ।।

इस श्लोक से यह अभिप्राय है कि प्रत्येक अवस्था में किसी-न-किसी रूप में पुत्री कष्ट ही देती रहती है। जैसे जन्म के समय स्वजनों को, विवाह के समय अर्थहरण करने से, (परिवार को) यौवनकाल में बहुत दोष से युक्त होने से पुत्री माता-पिता के लिए हृदय विदारक होती है।"[3] लोक में भी एक कहावत प्रचलित है—

देना भला न छदाम का
बेटी भली न एक

भावार्थ है कि एक पाई का भी कर्ज अच्छा नहीं है और (परिवार में) एक भी कन्या का होना अच्छा नहीं है। यह भी कन्या के प्रति आशंका एवं भय का परिचायक है।

जैन साहित्य में भी इसी प्रकार का भाव मिलता है—"उसके पैदा होने पर शोक होता है, बड़ी होने पर चिन्ता बढ़ती है, विवाह कर देने पर उसे कुछ-न-कुछ देते रहना पड़ता है। इस प्रकार युवती का पिता सदा दुखी रहता है।"[4]

पुत्र के प्रति प्रेम होने के कई कारण हो सकते हैं। जैसे पुत्र के ही कारण वंशक्रम आगे बढ़ता है, वृद्धावस्था में अपने माता-पिता की सहायता करता है, पिण्डदान का कार्य करता है। किन्तु कन्या का विवाह होते ही वह दूसरे परिवार की सदस्या बन जाती है। इसीलिए शायद पुत्री को 'पराया धन' आदि नाम दिये गये।

समय के साथ सामाजिक परिवर्तनों के कारण कन्या की स्थिति गिरती गयी। इसके कई कारण हो सकते हैं जैसे[5]—

1. पितृ पूजा की भावना प्रचलित हुई। यह पूजा पुत्र ही कर सकता था।
2. ईस्वी सन् के बाद बाल विवाह का धीरे-धीरे प्रचलन समाज में हो चला था। यह प्रथा स्मृतियों और पुराणों के समय और भी विकसित और प्रौढ़ रूप धारण कर चुकी थी। इसके साथ ही इस समय बाल मृत्यु बहुत होती थी। दूसरी ओर इन विधवाओं के पुनर्विवाह की प्रथा भी समाप्त कर दी गयी थी।
3. अन्तर्जातीय विवाह का समाज में विरोध होने लगा।
4. दुर्भाग्यवश यदि लड़की विधवा हो जाती थी तो पिता के सिर विपत्ति आ जाती थी।
5. सती प्रथा का भी इस समय प्रचलन हो चुका था जो पिता को प्रायः इस बात के लिए बाधित करता था कि वह अपने सन्तान को अपने सामने ही चिता पर जलते हुए देखे।

एक समय था जबकि कन्या को अत्यन्त आदर के साथ देखा जाता था। मनु-स्मृतियों में पुत्र तथा पुत्री दोनों का सम्बोधन 'सन्तति' मिलता है। महाभारत में कन्या में नित्य लक्ष्मी का वास होने का उल्लेख है। कन्या का महत्व इसमें भी है कि धर्मशास्त्रों में पुत्री के पुत्र (दौहित्र) को औरस पुत्र के समकक्ष रखा गया है। कन्या पुरुषों के समान वेदों का अध्ययन भी कर सकती थी।

किन्तु विदेशी आक्रमणों के कारण कन्या के जीवन में कई परिवर्तन आये। समाज ने लड़की को एक बोझ के रूप में देखना आरम्भ किया। उसकी रक्षा करना ही परिवार के लिए बड़ी समस्या बन गयी। पिछली शताब्दी तक आते-आते स्त्री शिक्षा का ह्रास हो गया था। ललितकलाओं को सिर्फ वेश्याओं तक ही सीमित कर दिया गया था। बहुत छोटी सी आयु में ही कन्या की शादी के लिए प्रयत्न किये जाने लगे थे। बाल-विधवाओं की संख्या भी बढ़ती गयी थी।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के समय बाल-विवाह, सती-प्रथा, आदि का निर्मूलन हो गया था। कन्याओं की शिक्षा के लिए कई प्रबन्ध किये जाने लगे। किन्तु आज भी मध्यम वर्गीय परिवार में लड़की का पैदा होना आनन्ददायक नहीं समझा जाता। जन्म से उसका पालन पोषण अत्यन्त सावधानी से करना पड़ता है।

पढ़ाई-लिखाई के बाद भी आज की कन्या दहेज के बिना विवाह नहीं कर सकती

—जो परिवार के सदस्यों के लिए एक अलग समस्या है। कन्या शिक्षित होने पर भी कई सामाजिक तथा आर्थिक बन्धनों के कारण अपने पति का चुनाव स्वयं नहीं कर सकती क्योंकि आज की वैवाहिक पद्धति एकोन्मुख ही है। दहेज की समस्या के कारण कई कन्याएँ अविवाहित ही रह जाती हैं। कुछ को अपने परिवार का पोषण करना पड़ता है। आज की कन्या को बौद्धिक रूप से आगे बढ़ जाने के कारण भी विवाह-समस्या का सामना करना पड़ रहा है। उसके आदर्शों के अनुसार पति का मिलना भी एक समस्या है।

आज के समाज में कुँवारी स्त्री के लिए सुरक्षा नहीं है। पल-पल पर संकटों का सामना करना पड़ता है और आज भी नारी अकेली जीविका नहीं चला सकती। वृद्ध कन्याओं की समस्याओं का चित्रण करते हुए मार्गरेट कोरमाक कहती हैं, "उनका जीवन बहुत कठिन है, उनको या तो युवा अविवाहित लड़कियों की या विवाहित युवतियों की स्वतन्त्रता नहीं मिलती। उनके हर कदम पर सन्देह की दृष्टि डाली जाती है।"[6]

आर्थिक कठिनाइयों के कारण, कभी-कभी परिस्थितियों के दबाव के कारण कन्या दब जाती है और न चाहने पर भी राह भटक जाती है। स्वातन्त्र्योत्तर नाटककारों ने इन समस्याओं का विभिन्न रूप से चित्रण किया है—

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटकों में चित्रित अविवाहिता की समस्याओं का निम्न रूप से वर्गीकरण कर सकते हैं—

समस्या	हिन्दी नाटक	तेलुगु नाटक
1. असफल प्रेम	विदाई नाटक	शारदा
	विधवा	रक्त कन्नीरु कथा
		कन्नबिड्डा।
2. प्रेम में धोखा	त्रिकोण की भुजाएँ	आशा
	न्याय	अनामकुलु
3. बौद्धिक स्तर की समस्या	उड़ान	—
4. आर्थिक समस्या	—	अन्ना चैल्लेलु
5. अनमेल विवाह के कारण	सगाई	स्वर्गम्-नरकम्
6. आर्थिक असमानता	अधूरी-आवाज़	वारमुरालु
		पल्ले पिल्ल
		तिरस्कृति

2. 1 असफल प्रेम

भारतीय समाज में विवाह सामान्य रूप से माता-पिता या अभिभावकों द्वारा ही निश्चित किया जाता है। स्वतन्त्र रूप से प्यार कर शादी करने के बहुत कम अवसर दिये जाते हैं। बहुधा देखा यह जाता है कि स्वतन्त्र प्रेम असफल भी हो जाता है। इसके कई कारण हैं

जैसे सामाजिक, आर्थिक आदि। "व्यक्तिगत प्रेम में बाधा डालनेवाले कई तत्व होते हैं।" एक वह तत्व था, पश्चिम में ऊँचे और नीचे खानदान की समस्या और पूर्व में था जाति प्रथा या बिरादरी और गैर-बिरादरी का प्रश्न। इन सभी व्यवधानों और सड़ी-गली रूढ़ियों के कारण ये व्यक्तिगत प्रेम एक सफल सामाजिक रूप (विवाह) नहीं ग्रहण कर पाते।"[7] कारण चाहे कुछ भी हो किन्तु उसका प्रभाव पुरुष से अधिक स्त्री पर पड़ता है। यह एक गम्भीर समस्या है। अपना हृदय एक व्यक्ति को सौंपकर अन्य पुरुष से विवाह न कर सकने के कारण स्त्री घुटन अनुभव करती है। इसीलिए स्वयं का अन्त कर समस्या का ही अन्त कर लेना चाहती है। इसका चित्रण निम्न नाटकों में किया गया है।

2.1.1 बिदाई नाटक :[8]

इस नाटक में सामाजिक बन्धनों के कारण टूटे हुए प्रेम का मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है। जय तथा शकुन्तला आदर्श प्रेमी हैं। एक दूसरे की प्रतीक्षा में ही दिन काटते हैं, एक दूसरे के लिए तड़पते रहते हैं, किन्तु कभी भी सामाजिक मर्यादा को तोड़ने का साहस नहीं कर पाते और न करना चाहते हैं। अपनी इस स्थिति का कथन शकुन्तला के शब्दों में कितना मार्मिक है—

"यह जानती हूँ कि वह यहाँ से बहुत दूर हैं। मेरी यह इन्तजारी एक पागलपन ही है। फिर भी न जाने, कौन कानों में कह जाता है — "नहीं शकुन्तला, प्यार की निराशा में आशाओं के दीप जगमगाया करते हैं। यह तेरी इन्तजारी जरूर ही उन्हें तेरे करीब खींच लायेगी।"[9] बस इसी आशा-निराशा के बीच उनके दिन गुजरते हैं। जय की भाभी को अपने देवर के प्रति स्नेह है तथा उसकी प्रेमिका के प्रति सहानुभूति। किन्तु शकुन्तला के माता-पिता इसके घोर विरोधी हैं। उनके उद्देश्य में प्रेम करने का अर्थ राह भटक जाना ही है। न वे स्वच्छ तथा आदर्श प्रेम का अर्थ ही जानते हैं। शकुन्तला उन्हें समझाने का प्रयत्न करती है, "प्रेम और वासना को समान न समझो माँ। वासना एक कलंक है, पाप है, पशुता है। लेकिन प्रेम प्राकृतिक, उज्ज्वल और पवित्र है।"[10] किन्तु सुननेवाले कौन हैं? स्वयं पिता पुत्री पर विश्वास नहीं करता और धमकी देता है, "खामोश रह शकुन्तला! नहीं तो यह हाथ तेरी हत्या के भागी हो जायेंगे। बजाय इसके कि तू हमारी इज्जत से खेल करे—शायद मुझे तेरे प्राणों से खेल करना पड़ जाये।"[11] उसका भरोसा इसलिए नहीं किया जाता है क्योंकि वह लड़की है और उसके बाहर आने-जाने पर निषेध लगाकर पढ़ाई बन्द कर दी जाती है। पिता अपनी इज्जत की रक्षा के लिए शकुन्तला का रिश्ता अन्यत्र तय कर देते हैं। समाज के अन्य व्यक्ति भी उसकी चर्चा करते हैं। बेचारे जय तथा शकुन्तला दोनों एक दूसरे के लिए तड़पते रहते हैं। किन्तु करें क्या? विवाह की तैयारियाँ बड़ी धूमधाम से की जाती हैं और असहाय शकुन्तला दुल्हन बन जाती है। किन्तु प्रेम की वह सच्ची देवी भाँवर पड़ने से पहले ही जहर खाकर आत्महत्या कर लेती है, क्योंकि आदर्श नारी अपने हृदय में केवल एक ही पुरुष को स्थान देती है। उसके हृदय ने जय को पति मान लिया था, अब दूसरे को स्थान देना उसके लिए वेश्या होने के समान है। हिन्दू समाज की रूढ़ रीतियों पर प्राणों की आहुति दे देती है। "यह दुनिया अपने

अन्धविश्वासों के कारण कैसे जुल्म कर डालती है···इसने शकुन्तला के अरमानों की दुनिया को उजाड़ दिया, मोहब्बत के चमन में आग लगा दी···।"[13] गंगा जल से भी पवित्र शकुन्तला अपनी पवित्र आत्मा के लिए तथा पिता और परिवार को कलंक से बचाने के लिए दूसरे लोक में चली जाती है जहाँ जाति-पाँति का भेद नहीं होता। इसे देख जय भी आत्महत्या कर लेता है। इस प्रकार दो युवा प्रेमियों का प्रेम असफल हो जाता है।

2.1.2 विधवा[1]

प्रस्तुत नाटक में सन्ध्या तथा प्रकाश का प्रेम दिखाया गया है। वे दोनों धर्म का पालन करते हुए अपने चरित्र को गंगा यमुना से भी पवित्र बनाये रखते हैं। केवल इस उम्मीद पर कि वे सामाजिक धर्म का पालन कर सामाजिक रीतियों के अनुसार सच्चे पति-पत्नी बन सकेंगे। किन्तु जाति भेद और सामाजिक धर्म ने उन्हें यह आज्ञा नहीं दी। सन्ध्या अपनी पवित्र आत्मा से प्रकाश को पति मान चुकी थी। वह नहीं चाहती थी कि जो आज प्रकाश की है वही कल एक वेश्या की भाँति सभी की बने।

जाति भेद के कारण सन्ध्या की मँगनी कर दी गयी, प्रकाश का भी ब्याह रचा दिया गया। नयी दुल्हन का स्वागत करने के लिए खड़ी सन्ध्या बेहोश होकर छत से गिर पड़ी। उसका जीवन प्रकाश के खून देने पर बच गया, किन्तु उसकी दुल्हन सिर्फ फेरों तक ही दुल्हन बनकर रह गयी क्योंकि प्रकाश का देहान्त हो जाता है। प्रकाश के मरण का दोष अपने सिर पर डालकर सन्ध्या अपने को विधवा मान लेती है।

किन्तु समाज के व्यक्ति यह सहन नहीं कर सके। सन्ध्या पर दुनिया भर के आरोप लगाये गये, उसे वेश्या की उपमाओं से रोशन किया गया—"आज तक हमारे धर्म में यह अन्धेर नहीं हुआ था। न मँगनी, न शादी···विधवा काहे की।"[14] तथा—"अरे विधवापन की तो आड़ है। समाज की आँखों में धूल डालकर धन्धा बना लिया है।"[15] सन्ध्या के पिता ने ठीक कहा है—"मैंने तुम्हारी (समाज की) आन कायम रखने के लिए अपनी बेटी की आत्मा पर घात किया है। तुम आज उसे अधर्म कहते हो? मैंने तुम्हारा धर्म कायम रखने के लिए दो घरों को उजाड़ दिया है। तुम्हारी अभी और ख्वाहिशें हैं तो मैं अपने हाथों इस वेश्या का गला घोंट देता हूँ।"[16] किन्तु इसकी आवश्यकता नहीं हुई, सन्ध्या ने स्वयं आत्महत्या कर ली।

नाटककार ने जैसे अपने निवेदन में लिखा है, "मैं तो हृदय की पवित्रता को ही सबसे अच्छी भक्ति मानता हूँ। लेकिन रोना इस समाज का है जो हजारों बुराइयाँ होते हुए भी धर्म का ठेकेदार बन बैठा है।···धर्म क्या है, इसका उसे ज्ञान नहीं। प्रेम, दया और मानव धर्म को तो हमारे समाज ने नष्ट कर दिया है।···हमारी रामायण तथा महाभारत सरीखे ग्रन्थों में बार-बार कहा गया है कि सच्ची नारी वही है जो केवल एक को पति मान उसी की पूजा करती रहे।"[17] किन्तु उसे आचरण का रूप देने के लिए कितनी कठिनाइयाँ सहनी पड़ती हैं। इसका उदाहरण सन्ध्या की कहानी है, जिसने मनसा, वाचा, कर्मणा से प्रकाश को ही अपना पति माना।

2.1.3. शारदा[18]

शारदा एक मातृ विहीन युवती है, जिसके पिता तथा भाई हैं। शारदा तथा शेखर एक दूसरे से प्रेम कर शादी करने का निश्चय कर लेते हैं। किन्तु मध्यमवर्गीय समाज में बहुत कम प्रेमी ही विवाह के बन्धन में बँध सकते हैं। उसी प्रकार दोनों घरों में इस विवाह का विरोध किया जाता है। शारदा के पिता अपने मित्र जनार्दन राव के पुत्र से शारदा का विवाह करना चाहते हैं। भाई रामाराव अपनी बहन को हर प्रकार से मनाने का प्रयत्न करता है, जब शारदा कहती है कि मेरा मन दूसरे के प्रति समर्पित हो गया है। लड़कियों को विवाह के विषय में बहुत कम स्वतन्त्रता दी जाती है। जब वह मानती नहीं है तो उसे धमकी भी दी जाती है कि "अगर तुम पिताजी को जीवित देखना चाहती हो तो इस विवाह के लिए हाँ कह दो।"[19] उनके मतानुसार लड़की अपना निर्णय स्वयं नहीं ले सकती —क्योंकि वह अबोध है। विवाह जीवन में एक जबरदस्त मोड़ है। "तुम्हारे भविष्य के बारे में माता-पिता ही तुमसे अच्छा जानते हैं। अपने मन से सभी इच्छाओं को मिटाकर, निश्चिन्त रूप से अपने भविष्य को पिताजी के हाथों में रख दो।"[20] कन्या को अपने व्यक्तित्व को भूलना पड़ता है। माता-पिता को पुत्री के प्रति कितना भी प्रेम क्यों न हो किन्तु जीवन संगी को चुनने में उसे स्वतन्त्रता नहीं दी जाती है। उधर प्रेमी—शेखर रात में आकर अपने साथ शारदा को भगा ले जाना चाहता है। शारदा जानती है कि उसके पिता को भी यह विवाह पसन्द नहीं है इसलिए उसे अपने को भूलने के लिए कहती है। शेखर उससे कहता है—अब शारदा को या तो प्रेमी या मायके को चुनना है। अपनी सुविधा के लिए सबके सामने कहता है कि शारदा गर्भवती है। इस पर शारदा का भाई शारदा और शेखर के सम्बन्ध में शेखर के पिता से बात करने जाता है किन्तु शेखर के पिता स्वीकार नहीं करते। शेखर दुबारा शारदा के घर आकर उनसे मिन्नत करता है कि मेरे पिता के न मानने पर भी शारदा से मैं विवाह करना चाहता हूँ और तैयार भी हूँ। किन्तु इन वाद-प्रतिवादों के बीच पिस जाने के कारण शारदा आत्महत्या कर लेती है। क्योंकि वह न अपने पिता तथा भाई के विरुद्ध जा सकती है और न प्रेमी को ही त्याग सकती है। उसी के शब्दों में "पिताजी! आपने अपनी मित्रता को घनिष्ठ बनाने के लिए यह रिश्ता तय किया। यह जानते हुए कि मेरा मन दूसरे के प्रति आकर्षित है। भैया ने धमकी देकर मेरी जबान ही बन्द कर दी। उसे डर है कि मैं कहीं आपके वात्सल्य का लाभ न उठा लूँ। शेखर ने आकर मेरे मन में तूफान पैदा कर दिया। उधर भाई को दिये हुए वचन के कारण मैं अपना कदम बाहर नहीं रख सकती। यद्यपि शेखर अपने पिता के प्रेम को त्यागने के लिए तैयार है किन्तु परिस्थितियों के कारण मुझसे नहीं हो रहा है। अगर मैं उसके साथ जाऊँगी तो आपको पग-पग पर अपमान सहन करना पड़ेगा। इसलिए मैं सदा के लिए आपसे विदाई माँग रही हूँ।"[21]

सच बात असल में यह है कि पिता, भाई या प्रेमी, किसी ने भी शारदा को समझने का प्रयत्न नहीं किया। उसे एक कठपुतली समझकर हर एक ने अपनी अँगुलियों पर नचाना चाहा। कन्या के लिए पिता, भाई तथा प्रेमी तीनों के प्रेम की आवश्यकता है।

किन्तु स्वार्थी होने के कारण हर एक अपनी ही भावना को महत्त्व देता है। वह किसी की अवहेलना न कर सकने के कारण पिस जाती है। वह प्राण त्याग ही कर देती है। इस प्रकार एक युवती का जीवन नष्ट हो जाता है।

2.1.4 रक्त कन्नीरु कथा[22]

बीस साल की 'युवती' के असफल प्रेम का चित्रण इस नाटक में मिलता है। धनवान पिता चन्द्र बाबू की इकलौती पुत्री है। दयानिधि चन्द्रबाबू के दोस्त होने के कारण उसके पुत्र करुणानिधि की पढ़ाई में सहायता कर विदेश भी भेजते हैं। छुटपन से दोनों मित्र जगदा तथा करुणानिधि का विवाह करना चाहते हैं। जब करुणानिधि विदेश में रहते हैं तभी जगदा नृत्य सीखती है जहाँ उसे भास्कर नाम का युवक मिलता है जो एक गरीब परिवार का है। दोनों में मित्रता बढ़ जाती है तथा एक दूसरे से विवाह करने का निश्चय कर लेते हैं। पिता को गरीब घर का यह रिश्ता पसन्द नहीं है फिर भी वह अपनी पुत्री के सुख के लिए हाँ कह देता है। करुणानिधि को जगदा समझाती है कि तुम्हारे प्रति मैं केवल बहन का वात्सल्य ही रख सकती हूँ किन्तु पत्नी का प्रेम नहीं। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि बचपन से दोनों एक साथ पले थे। वह स्थिति समझ जाता है और भास्कर से उसकी शादी कराने का भार अपने ऊपर ले लेता है। इन सबके बीच दयानिधि ही एक मात्र ऐसे व्यक्ति हैं जो उनके प्रेम में विघ्न डालते हैं। उनका दृष्टिकोण यह है—अपने पुत्र से जगदा की शादी हो जायेगी तो उसकी सारी सम्पत्ति पर अपना अधिकार हो जायेगा। इसलिए वह भास्कर को पहले अन्धा बना देता है तथा बाद में विष पिला देता है। यह देख जगदा भी विष पीकर अपने प्रेमी को दूसरे लोक में मिलने चली जाती है।

इस प्रकार इस नाटक में सम्पत्ति के लालच के कारण दो युवा प्रेमियों के जीवन का अन्त किया गया है।

2.1.5 कन्नविड्डा[23]

इस नाटक में कला की पुजारिन के असफल प्रेम का चित्रण किया गया है। चन्द्रकला एक नर्तकी है जिसके पिता दयानन्द भी संगीत में पारंगत हैं। सुरेश जमींदार का पुत्र है जो चन्द्रकला से प्यार करता है तथा विवाह भी करने के लिए तैयार है। किन्तु दोनों के बीच सामाजिक बन्धन इतने कठोर हैं कि उस दीवार को तोड़कर शादी करना असम्भव है। इसीलिए दयानन्द दोनों को चेतावनी देता है कि तुम्हारे इस प्रेम का विवाह में परिणत होना आसान नहीं है। इसके दो कारण हैं—एक—तुम दोनों के बीच आर्थिक अन्तर है तथा दूसरा—यह विजातीय प्रेम है। चन्द्रकला जैसी सामान्य नर्तकी से रिश्ता जमींदारी वंशज नहीं चाहेंगे। सुरेश की माता सुमित्रा चन्द्रकला के सामने पल्ला पसार कर प्रार्थना करती है कि सुरेश हमारा इकलौता पुत्र है। समाज में तुम्हारा यह विवाह चल नहीं सकता। हमारी सामाजिक मर्यादा को निभाने के लिए तुम सुरेश को भूल जाओ। उनके लिए कुल की मर्यादा अधिक है, चाहे ये दो युवा हृदय टूट ही क्यों न जायें। मजबूरी के कारण चन्द्रकला अपने सीने पर पत्थर रखकर सुरेश को धोखा देती है कि वह पतिता

बन गयी है। अब वह गर्भवती भी है। पिता कुपित होकर घर से चला जाना चाहता है। तब तक सुरेश को सच्चाई मालूम हो जाती है और वह वापस लौटकर दयानन्द के सामने अपनी सारी सम्पत्ति, सारे रिश्तेदार, सभी को छोड़ चन्द्रकला से विवाह कर लेता है। सुरेश के मामा को इस पर क्रोध आ जाता है कि चन्द्रकला के कारण अपनी ही मर्यादा का नाश हो गया। इसलिए वह उसकी हत्या कर देता है।

मर्द चाहे कैसे भी कर सकता है किन्तु सभी प्रकार के बन्धन स्त्रियों पर ही लगाये जाते हैं। दोनों के समान रूप से भागी होने पर भी सुरेश को छोड़, चन्द्रकला को ही सजा दी जाती है।

"प्रेम प्रकृति की देन है, कोई मानवीय कल्पना नहीं अलबत्ता तो आज के मानव ने स्वार्थ में फँसकर प्रेम का नाश ही कर दिया है, फिर भी यदि कहीं यह प्रेम जिन्दा है तो उसे समाज पनपने नहीं देता। इस प्रेम के सामने धर्म की चट्टानें खड़ी कर दी जाती हैं। ···समाज की इन ऊँची-ऊँची दीवारों की ओट में लाखों हत्याएँ होती हैं, जिन्हें पशु भी पाप मानते हैं, किन्तु हम मानव उस ओर ध्यान तक भी नहीं देते।"[24]

इस प्रकार इन नाटकों में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में असफल प्रेम का चित्रण मिलता है। ऐसी अन्य भी बहुत-सी परिस्थितियों की कल्पना की जा सकती है। प्रश्न यह है कि क्या भारतीय समाज सीधे सच्चे स्वाभाविक प्रेम को सहज रूप में स्वीकार नहीं कर सकता? काश यह सब नाटक इस समस्या का सही हल समाज को समझा सकते। फिर भी नाटककारों का प्रयास सराहनीय है। इस प्रकार की रचनाओं से धीरे-धीरे परिवर्तन अवश्य आता है।

2.2. प्रेम में धोखा

इस समाज में लड़कियों को प्रेम करने की स्वतन्त्रता इसलिए बहुत कम दी जाती है क्योंकि लड़के के बारे में अच्छी तरह जाने बिना लड़की का विवाह उससे कर देना जोखम का काम है। बहुधा देखा यह जाता है कि लड़कों के मीठे वचनों में पड़कर लड़कियां अपने आपको पूरे विश्वास के साथ उन्हें सौंप देती हैं। किन्तु प्रेमी निकलता है कायर, बेईमान अथवा धोखेबाज। कारण जो कुछ भी हो किन्तु इसका फल भोगनेवाली है कन्या, तदर्थ माता पिता। (इसीलिए भारतीय समाज के माता-पिता वर के खानदान को अच्छी तरह परखकर विवाह निश्चय करते हैं।) क्षणिक आवेश के कारण कन्या पर सदा के लिए दाग लग जाता है। उसके कारण न कभी उसकी शादी हो पाती है और होती भी है तो बाद में परिणाम भी बुरे निकलते हैं। इस प्रकार के कई नाटक लिखे गये हैं जिनमें प्रेमी के कारण धोखा खाकर कन्या का जीवन दुखों से भर जाता है।

2.2.1. त्रिकोण की भुजाएँ[25]

नमिता तथा दिवाकर यूनिवर्सिटी के शोध छात्र हैं तथा लोकेश उनके प्रोफेसर हैं। इस नाटक में त्रिकोण की ये ही तीन भुजाएं हैं। नमिता दिवाकर के प्रेम के लिए अपना शास्त्रीय नृत्य, गान, कविता लिखना आदि सभी रुचियों को बदलकर आधुनिक बन जाती

है। यद्यपि वह दिवाकर के रंग में रँग गयी किन्तु दिवाकर उसे अपनी वासनाओं की तृप्ति का साधन मात्र समझता है। अपने परिचितों से वह नमिता का परिचय, सिस्टर, कजिन आदि के रूप में देता है, जो उसे पसन्द नहीं। दुनिया के लांछन से डरकर दिवाकर पर विवाह करने के लिए दबाव डालती है, क्योंकि "मैं एक मध्यम परिवार की⋯असहाय लड़की हूँ, जो संस्कारों से कायर हैं, जो अपने परिवेश के खिलाफ बगावत नहीं कर सकती।⋯विवाह उसकी जिन्दगी का एक मस्ट है।"[26] दिवाकर शादी के झंझट में पड़ना नहीं चाहता और नमिता को आजीवन मैत्री का विश्वास दिलाना चाहता है तो नमिता सच कहती है, "मैत्री ? यह कौन-सा आधार है ? कैसा विश्वास है ? तुम मैत्री के नाम पर मुझे अपनी वासना के दलदल में घसीटकर भी राजहंस बने रहोगे—और मैं ? मैं तुम्हारी मैत्री, तुम्हारे विश्वास के बोझ से दबी— कीड़ों की तरह कुलबुलाऊँगी।"[27] इसीलिए एक मध्यम परिवार की कन्या, "यह मैत्री वहीं चाहती है, वहीं करती है, जहाँ विवाह सम्भव हो।"[28]

एक दिन दिवाकर के स्कूटर से गिर जाने के कारण नमिता की दोनों टाँगें काटनी पड़ती हैं पर दिवाकर बच जाता है। नमिता प्रोफेसर लोकेश के खून देने के कारण बच जाती है। होश आने पर नमिता दिवाकर को देखने के लिए तड़पती है किन्तु दिवाकर तो एक्सीडेण्ट के दूसरे ही दिन एक और गर्ल फ्रेण्ड के साथ अजन्ता की गुफाएँ देखने चला गया था।

अब प्रोफेसर ही उसके दुख के साथी बन जाते हैं। दिवाकर की प्रतीक्षा करती हुई नमिता को एक दिन प्रोफेसर लोकेश की डायरी पढ़ने पर दिवाकर के लुभावने चेहरे और कुत्सित वासनाओं का पता चलता है। अन्तिम पन्ने को वह पढ़कर तिलमिला उठती है कि दिवाकर ने अनिता (गर्ल फ्रेण्ड) से शादी कर ली। अपने जीवन के सपने चकनाचूर होते देख वह आत्महत्या करने के लिए चली जाती है, किन्तु दुबारा प्रोफेसर लोकेश की होशियारी के कारण बच जाती है। नमिता की आत्मा एवं अभिलाषाओं से प्रेम करनेवाले प्रोफेसर के साथ नया जीवन बिताने के लिए नमिता तैयार होती है।

इस प्रकार के कई उदाहरण नित्य प्रति दिखते हैं। कलाशालाओं में तथा दफ्तरों में ही नहीं अन्य प्रदेशों में भी लड़का-लड़की केवल शौक के लिए घूमते दिखायी देते हैं। किन्तु जिम्मेदारी से विवाह के बन्धन में बँधना लड़के पसन्द नहीं करते। तब लड़की को अपनी आत्मा को दबाकर जीवन बिताना पड़ता है या नहीं तो जीवन का अन्त ही कर देना पड़ता है।

2.2.2 आशा[29]

सुगुणा नाम की एक भोलीभाली युवती को सुन्दर नामक युवक का धोखा देना इस नाटक में दिखाया गया है। सुन्दर एक बड़े वकील का पुत्र है जो पढ़ाई के नाम पर दूसरे शहर में मजे उड़ाता है। मीठे वचनों के कारण सगुणा जैसी सामान्य लड़की को अपने जाल में फँसाना सुन्दर जैसे लड़के के लिए बहुत आसान है। वह अपनी वासनाओं को पूरा करना चाहता है। इसका फल यह होता है कि सुगुणा अपने आपको सम्पूर्ण रूप से समर्पित कर

देती है तथा गर्भवती हो जाती है। जब इस बात का उसे पता चलता है तो वह घबरा जाता है किन्तु प्रकट रूप से सुगुणा को वचन देता है कि पिताजी की आज्ञा लेकर मैं तुमसे शादी करूँगा। किन्तु वह सुगुणा से छुटकारा पाना चाहता है क्योंकि 'अगर पिताजी यह बात जान लेंगे तो मुझे मार डालेंगे और गर्भवती कन्या से शादी करने का नाम ही नहीं ले सकते।'[30] अपनी वासना की तृप्ति हो जाने के कारण सुगुणा के प्रति उसे आकर्षण कुछ भी नहीं रहता और अब उसे लगता है कि "इस लड़की में जवानी के अलावा और कुछ नहीं। अगर यहाँ रहूँगा तो वह शादी के लिए मुझे दबाती रहेगी।"[31] इसलिए कायर की तरह वहाँ से भाग जाता है। इतना ही नहीं उसके विचार इतने नीच हैं कि "अगर वहाँ आ भी जायेगी तो प्रमाण क्या है कि इसके गर्भ का कारण मैं ही हूँ।"[32] आखिर करता भी वही है, जब सुगुणा दर-दर भटकती हुई उसे ढूँढ़ती हुई उसके पास आती है तो वह मुँह मोड़ लेता है।

परित्यक्ता गर्भवती कन्या की स्थिति इस समाज में अत्यन्त दयनीय है। सभी व्यक्ति उस पर पत्थर फेंकने के लिए तैयार रहते हैं और आसानी से 'कुलटा', 'कलंकिनी' के नाम दिये जाते हैं। उसकी स्थिति वेश्याओं के बराबर हो जाती है। आखिर स्त्री की इस दयनीय स्थिति का कारण क्या है ? प्रकृति ने नारी को ही माँ बनने का वर दिया है जो कभी-कभी उसके लिए शाप भी बन जाता है। युगों से पुरुष के कण-कण में यह भावना फैल गयी है कि "मुझे चाहे कुछ भी करने का अधिकार है," क्योंकि पुरुष को वह समाज कभी भी दोषी नहीं ठहराता। अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए प्रेम एक बहाना बन जाता है।

प्रेम करते समय समाज, पिता या जायदाद की उसे याद नहीं आती, बाद में उनका महत्त्व बढ़ जाता है इसलिए बहाना करता है, "गर्भवती कन्या से शादी कर मैं इस समाज में टिक नहीं सकता हूँ। इसलिए तुम्हें जितने पैसे चाहिए लेकर चली जाओ।"[33] इस असहाय स्थिति में वह एक सहृदय व्यक्ति का आश्रय लेती है, जो उसे बहन समझता है तो वहाँ भी उनके सम्बन्धों पर कीचड़ फेंकी जाती है जो समाज की रीति है।

किन्तु अन्त में सुन्दर के पिता स्वयं सुन्दर को फटकारकर सुगुणा का विवाह सुन्दर से कर, समाज के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं। नहीं तो इस बेचारी की, उसकी सन्तान की स्थिति क्या होती ?

2.2.3 अनामकुल[34]

कृष्णप्रसाद नाम का युवक निर्मला नाम की सोलह साल की युवती को भड़काकर अपने साथ भगा ले जाता है। निर्मला अपनी जान से भी ज्यादा कृष्णप्रसाद से प्रेम करती है तथा सम्पूर्ण विश्वास के साथ अपने आपको समर्पित कर देती है। शादी करने के लिए कुछ-न-कुछ बहाना ढूँढ़ लड़का टालने लगता है। लड़की को शंका तब तक नहीं होती है जब तक कि वह गर्भवती नहीं हो जाती। कम-से-कम अपनी सन्तान के भविष्य के लिए निर्मला कृष्णप्रसाद से शादी करने की प्रार्थना करती है किन्तु वह शादी करना अस्वीकार कर देता है। तब निर्मला को वास्तविक स्थिति की जानकारी होती है और सामने से प्रेम का परदा

फट जाता है। बस वह अपने बच्चे को लेकर इस विशाल विश्व में कदम रखती है। समाज उसे एक छूत की बीमारी की तरह देखने लगता है। उसका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। उसका दोष पल-पल कदम-कदम पर उसका पीछा करने लगता है। वह तीव्र अशान्ति तथा वेदना का अनुभव करने लगती है क्योंकि जगत् ही उसके लिए सूना हो जाता है कोई स्त्री भी उसे हमदर्दी नहीं देती है क्योंकि एक स्त्री ही दूसरी की प्रथम शत्रु होती है।[35] अपने बच्चे को जन्म देने के लिए मानो वह मृत्यु के मुख में जाकर लौटती है। इस समाज से अपने आपको छिपाने के लिए चहारदीवारों के बीच बन्द सड़ती रहती है। फिर भी बीस साल की अवधि में अपने पुत्र को एक आदर्श युवक बनाती है। बीस वर्ष के पश्चात् पुत्र के कारण जब निर्मला तथा कृष्णप्रसाद की भेंट होती है तो अपनी सफाई देते हुए वह कहता है, "उस समय मेरी आयु केवल बीस वर्ष की थी। उस छोटी-सी उम्र में, वह भी यौवन के आरम्भ के दिनों में मैं भविष्य के बारे में सोच नहीं सका था। आयु में भी तुमसे बहुत बड़ा नहीं था। इसलिए मुझे अपनी जिम्मेदारी मालूम नहीं हुई थी।"[36]

इसका उत्तर निर्मला ठीक ही देती है—बुरे कर्म करने के लिए जो आयु काफी थी, अच्छे कर्म करने के लिए उसे कम बताना आश्चर्य की बात है। यह बात हँसी भी दिलाती है। वह उसे याद दिलाती है कि स्वयं वह उससे आयु में छोटी सिर्फ सोलह साल की लड़की ही थी। उस समय उस धन को उसने ठुकरा दिया था, जिससे कृष्ण प्रसाद अपने पाप को धोना चाहता था।

2.2.3 न्याय[37]

यौवन की आरम्भ दशा में अति सुन्दर युवती देवकी से चन्द्रमोहन ने उसकी भोली सुन्दरता पर मुग्ध होकर बिना कुछ सोचे-समझे किसी से बिना कुछ कहे, अपने पिता से पूछे बिना विवाह कर लिया। दो महीने तक वे आनन्द पूर्वक रहे। जब उसे होनेवाले बच्चे की जानकारी देने देवकी के पिता चन्द्रमोहन के पास जाते हैं तो अपने पिता से डरने के कारण वह विधिपूर्वक विवाह करते हुए भी कह देता है कि वे पण्डित जिन्होंने विधिपूर्वक शादी करवायी वे मेरे नौकर थे। इस पर देवकी के पिता मुँह नीचा कर वापस लौट जाते हैं। अब वे अदालत में भी नहीं जा सकते, क्योंकि चन्द्रमोहन के पिता एक रईस आदमी हैं। उनके देहान्त के बाद धन के नशे में मनमानी काम करते हुए चन्दू अमेरिका चला जाता है। नौ वर्ष के बाद वह देश वापस आता है। इस बीच देवकी ठोकरें खाती हुई, अपने बारे में जुबान खोले बिना आठ वर्षीय पुत्र की पढ़ाई को एकमात्र लक्ष्य बनाकर एक वकील साहब के घर में दिन काटती रहती है। नौ वर्ष के बाद वहीं पर चन्द्रमोहन का आगमन होता है तथा किशोर की बातों से प्रभावित होकर उसे अपने साथ ले जाना चाहता है। उसे मालूम नहीं कि वह किसका बच्चा है। देवकी की एकमात्र आशा है किशोर। वह उसके लिए कुछ भी करने को तैयार है, इसलिए भगवान से प्रार्थना करती है—"वे मुझे न पहचानें।··· किशोर के लिए अपने ही घर में परायी सी रहूँगी।"[38]···क्योंकि किशोर की प्रगति का अवरोध बनना नहीं चाहती।

चन्द्रमोहन देवकी को पहचानने पर किशोर पर अपना हक समझता है। वह देवकी

से अपने उस कर्म पर क्षमा की याचना करता है किन्तु देवकी उन वचनों पर विश्वास नहीं करती है। "सारी दुनिया की सैर कर ली, मन भर गया तो किशोर एक नया खिलौना मिल गया। उसे धन का लोभ दिया जा रहा है। पर मैं यह कभी न होने दूँगी। चाहे मुझे भीख ही क्यों न माँगनी पड़े, चाहे वह दुखी भिखारी ही क्यों न बन जाय।···मेरे हृदय को कागज की तरह फाड़कर फेंक दिया था—उन टुकड़ों को समेटकर किशोर ने जोड़ा है। अब उस जोड़नेवाले को भी छीनने आये हो।"[39]

अब किशोर को चन्द्रमोहन चाहे अदालत में लड़कर भी हो, लेना चाहता है क्योंकि न्याय पिता को ही लड़के का अधिकार देता है। देवकी कलप उठती है, "यह न्याय अन्याय है। तुम पुरुषों का बनाया हुआ, एक पिता का बनाया हुआ—प्रकृति का न्याय नहीं। माँ प्रकृति है, माँ माँ है।···प्रकृति का न्याय किसको अधिकार देता है? विश्व का पहला न्याय, जिस न्याय का आधार केवल सत्य है···तुम लोगों ने उस न्याय को तोड़कर, बल देकर, घुमाकर अपने लिये झुका लिया। इस न्याय का आधार केवल स्वार्थ है।"[40]

परित्यक्तता होने के कारण अपने बेटे को कलंक से बचाने के लिए वह विधवा जैसा ही जीवन बिताती है। आखिर वह चन्द्रमोहन से भी कहती है, "मैं एक दुःखी विधवा हूँ।" किन्तु उसके माँग में हलका-सा सिन्दूर रहता है, जिसे वह दुनिया की नजरों से बचाना चाहती है। इसीलिए वह कहती है, "यह जरा-सी लाली माँग की, यह ठुकराया हुआ, रोता, झूठा सुहाग मुझे क्षमा करने को मजबूर कर देगा। और आप? आप मेरी गोद को भी माँग की तरह सूनी कर मुझे सिसकती हुई, मसलती हुई जीवन बिताने को छोड़ दोगे।"[41] पुरुष के जीते हुए अपने आपको विधवा घोषित करने के लिए नारी को अपना मन दृढ़ बनाना पड़ता है।

चन्द्रमोहन उसे भी अपने साथ आने की प्रार्थना करता है। देवकी का मन इतना टूट गया है कि अब वह उसके साथ जा नहीं सकती है और न अपने बेटे की प्रगति की राह में पत्थर ही बन सकती है। उसके पास प्यार के अलावा और कुछ नहीं। उसे इस दुनिया में अपने किशोर के प्रेम के अलावा और कुछ नहीं चाहिए। उसे डर है कि धन के आकर्षण के कारण अगर साथ जायेगी तो भी किशोर उससे धीरे-धीरे छिन जायेगा। अब उसका मन भर गया है, इसीलिए थोड़ी-सी अफीम खा लेती है जो "बहुत दिनों से रख छोड़ी थी। जब पिताजी अपने घर से लौटकर आये थे, तब से यह मेरे पास थी। जब किशोर आने-वाला था···पर मैं खा न सकी। किशोर को देखना चाहती थी, अब देख लिया। आपको भी एक बार फिर देखना चाहती थी, देख लिया···। कोई माँ अपने लाल को कलंक का टीका न लगने देगी।"[42]

अतः यह स्पष्ट है कि हिन्दी तथा तेलुगु दोनों भाषा के नाटककारों ने प्रेम में धोखा खाकर कठिनाई से जीवन बितानेवाली कन्या तथा उसकी समस्याओं का सशक्त चित्रण किया है। प्रेमी से धोखा खाने के कारण उन्हें जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है उनके उदाहरण ऊपर दिये गये हैं।

2.3. बौद्धिक स्तर की समस्या

आज के युग में स्त्री पुरुष के सम्बन्धों में परिवर्तन होते दिखायी दे रहे हैं। कन्या ऐसे जीवन साथी को चाहती है जो उसे अपने समान स्वीकार करे। वह पति को अपने से श्रेष्ठ स्वीकार नहीं कर सकती। "आधुनिक नारी न तो पूजा की सामग्री बनना चाहती है, न संभोग की वस्तु और न सम्पत्ति। वह बनना चाहती है केवल संगिनी।"[43] किन्तु आज का पुरुष युगों से चली आ रही अपनी प्रवृत्ति को बदल न सकने के कारण वह स्त्री को संगिनी के रूप में देख नहीं पा रहा है और नारी भीरू, दिग्भ्रमित तथा संस्कारों से पीड़ित, दमित व्यक्तित्व के कारण सच्चे रूप में संगिनी बन नहीं पा रही है। इस प्रकार से आधुनिक नर-नारी में बौद्धिक अन्तर के कारण उनके सम्बन्धों में भी तनाव उत्पन्न होता जा रहा है। सुशिक्षित एवं प्रगतिशील वैयक्तिक अहम् उनके पारस्परिक जीवन की सबसे बड़ी रुकावट बन रहा है। आज के युग के प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक व मनीषी जार्ज बर्नाड शा ने कहा है एक स्त्री पुरुष पर शासन करती है यदि उसे शासन करने की कला आती है और वह कला है कि पुरुष को यह आभास न हो कि उस पर शासन किया जा रहा है। आधुनिक सुशिक्षित स्त्रियाँ यह कला भूल जाती हैं।

2.2.3.1 उड़ान[44]

"इस सामाजिक नाटक में पुरुषों की दुर्बलताओं पर प्रकाश डालते हुए यथार्थ के चित्रांकन से नारी समस्या का निदान खोजने का प्रयास किया गया है।"[45]

माया ने अपने जीवन में इतने कष्ट झेले थे कि अब उसे कैसी भी परिस्थिति कठिन नहीं लगती। माया रंगून में हुए बमबारी के कारण वहाँ से मीलों दूर तक पैदल, सिर्फ कुछ जड़ी-बूटियों को खाकर, कभी भूखों मरते हुए, मैले-फटे कपड़ों में चली आ रही थी। वह इस लम्बी यात्रा में एक जगह बेहोश होकर गिर जाती है, जहाँ शिकारी शंकर तथा भावुक रमेश ने कैम्प बसाया है। वहाँ उसका शरीर स्वस्थ होने लगता है। शिकारी शंकर की क्रूर दृष्टि से बचती हुई वह अपने प्रेमी मदन की प्रतीक्षा में किसी प्रकार दिन काटती है। मदन उसके कठिन काल में जीवन साथी बना था। केवल उसकी आशा ही माया को जीवन देती है। रमेश एक भावुक कवि है जो माया को अपने हृदय में बिठाकर आराधना करता है तथा शंकर शिकारी है जो उसे हिरनी समझता है। माया कहती है, "मैं दोनों से डरती हूँ। एक आकाश में बसता है। वह मुझे अपने साथ आकाश की ऊँचाइयों में लिये उड़ना चाहता है। दूसरा उस गहरे अँधियारे खड्ड से भी अन्धकारमय संसार का वासी है। उसका बस चले तो न जाने मुझे किन अँधेरी गहराइयों में ले जाय?···ऊँचाई या गहराई मेरा आदर्श नहीं··· मैं समतल धरती चाहती हूँ—समतल और सुखद।"[46]

एक दिन माया जब अपनी वह करुण कहानी रमेश को सुना रही थी तो अचानक मदन का प्रवेश होता है, जिसकी प्रतीक्षा माया कर रही थी। अब माया मदन के साथ चलने को तैयार है किन्तु मदन उपेक्षित भाव से कहता है कि तुम यहाँ सुखी हो तो ले जाकर मैं तुम्हें दुःख क्यों दूँ? माया उसे समझाने की चेष्टा करती है कि यहाँ उसने दिन

किस तरह काँटों की सेज में बिताये हैं। जब मदन कहता है कि तुम पहले से स्वस्थ हो, तो माया पीड़ा और विवशता से कहती है—"लेकिन मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ कि यह स्वस्थता तन की है, मन इतना अस्वस्थ है—जितना उस समय भी न था, जब हफ्ते-भर से जड़ी-बूटियों के सिवा मुझे कुछ भी खाने को न मिला था। यहाँ मुझे खाने-पीने की कमी नहीं रही। मीलों-पर-मील चलते आनेवाले पाँवों को भी यहाँ कम आराम नहीं मिला। लेकिन मेरा मन तो पहले से ज्यादा कहीं बीमार है। एक ओर तुम्हारी प्रतीक्षा ने और दूसरी ओर इस पागल शिकारी की हरकतों ने मुझे परेशान कर दिया है।"[47] माया अब समझ जाती है कि मदन उस पर विश्वास नहीं कर रहा है, क्योंकि उसके स्वर में जहर घुल गया है, आँखों में सन्देह के साये दिखायी दे रहे हैं और कहता है कि शंकर से डरती हो तो रमेश को पसन्द करती हो। माया के शब्दों में—"आशा थी कि···जिस तरह हम ऊँची-नीची घाटियों में हाथ में हाथ लिये चले थे उसी तरह समतल मार्गों पर भी हाथ में हाथ लिये चलेंगे। तुम आये, तो मैं उछल पड़ी, मैं अपने आपको भूल गयी मुझे क्या मालूम था कि तुम इतना बदल गये हो, तुम्हें मेरे प्रेम पर भी विश्वास नहीं रहा।"[48]

अब माया का भी मन टूट जाता है और विमुख होकर मदन से कहती है, "जाओ जब एक बार सन्देह तुम्हारे मन में बैठ गया तो चाहे मैं सीता की तरह अग्नि परीक्षा भी क्यों न दे दूँ, उसे अपनी जगह से न हटा सकूँगी। मुझे क्या मालूम था कि तुम्हारी स्वार्थ-परता का उदारता से, बुराई का भलाई से, यों एकदम बदल जाना भी स्वार्थ का ही दूसरा रूप था। जिस उद्दण्ड लड़की ने तुम्हें डाँटा था, उसे तुम अपने बस में देखना चाहते थे, अपनी इंगित पर चलनेवाली दासी के रूप में देखना चाहते थे। मुझे खेद है, मैंने तुम्हें समझने में भूल की।"[49]

इतने में वहाँ शंकर तथा रमेश भी आ पहुँचते हैं जबकि किसी तरह मदन और माया उस कैम्प से जाना चाह रहे थे। शंकर जब उसे बलात् रूप से अपने साथ रखना चाह रहा था तो माया कहती है कि एक थकी, बीमार, विवश स्त्री की सहायता कर, उसका बदन माँगना और उस एहसान का अनुचित लाभ उठाना बर्बरता है। फिर भी वह तैयार है उसकी बन्दूक का निशाना बनने के लिए। क्योंकि वह कायर हिरनी नहीं। मदन, शंकर तथा रमेश—तीनों पुरुषों की मनःप्रवृत्तियों को वह पसन्द नहीं करती। उसके शब्दों में "वह असहाय अबला स्त्री भी मैं नहीं जो मदन चाहता है और जो हर समय पुरुष के सहारे की आशा बाँधे, दासी की तरह खड़ी रहती है। वह बीमार हिरनी भी मैं नहीं, जिसे तुम लोग गोद में भरकर मनमानी करना चाहते हो। मैं देवी भी नहीं, जो केवल अपने आसन पर बैठी रहे। तुम एक दासी, एक खिलौना या देवी चाहते हो, संगिनी की तुममें से किसी को भी जरूरत नहीं।"[50]

इस प्रकार वर्तमान समाज की विकृत व्यवस्था में नर और नारी के सम्बन्धों में उलझन, अन्तर्विरोध तथा विकार उत्पन्न होते हुए दिखायी दे रहे हैं। यहाँ समस्या बौद्धिक है। इन परिस्थितियों से आज की नारी समझौता न कर सकने के कारण ही चली जाती है, जिसका प्रतीक माया है। उड़ान में नारी "आदिम पुरुष की हिंस्र वासना, कवि हृदय की अपार्थिव उपासना और स्वामी की अधिकार लोलुपता का निषेध करती हुई यथार्थ

की चट्टानों पर घायल, लेकिन अपराजित एक उन्मुक्त हिरनी की तरह एक स्वस्थ समाधान की खोज में निकल जाती है।"[51]

इस नाटक में नाटककार ने माया को एक स्वाभाविक पर जटिल परिस्थिति में डाल दिया है जहाँ मदन का उस पर सन्देह करना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। यदि माया इस स्थिति को समझकर मदन के साथ चली जाती जब मदन उसे ले जाने को तत्पर था। कुछ समय में वह अपने स्नेहिल व्यवहार तथा ममतापूर्ण समर्पण से मदन के सन्देह को दूर कर सकने में बहुत सम्भव है सफल हो जाती। पर उसका अहम् इस समझौते के लिए तैयार नहीं होता। वह एकाकी रहना श्रेयस्कर समझती है।

2.4 आर्थिक समस्या

निर्धनता और दरिद्रता के कारण समाज में चाहे स्त्री हो या पुरुष कई अपराध करते हुए दिखायी देते हैं। आज की समाज व्यवस्था इस प्रकार है कि नारी को आर्थिक रूप से पुरुष पर निर्भर रहना पड़ रहा है। कभी-कभी स्त्री को जबकि अन्य कोई सहारा नहीं है तो स्वयं अपने परिवार के पोषण के लिए जीविकार्जन की आवश्यकता पड़ती है। इस समाज में कन्या अकेली जीविका चलाने का साहस करती है तो उसके सामने विपत्तियाँ आ खड़ी होती हैं। इस संघर्ष में कभी-कभी उसका पतन हो जाता है।

2.4.1 अन्ना चेल्लेलु[52]

इस नाटक में सीता एक गरीब पिता की पुत्री है। उसका बड़ा भाई सूर्यम् है तथा छोटा रंगा। उनके पिता बीमार हैं। सूर्यम् एक बस कण्डक्टर है तथा रंगा अखबार बाँटने का काम कर मुश्किल से जीवन काटते रहते हैं। इतने में सूर्यम् को लायसेन्स न मिलने के कारण उसकी नौकरी छूट जाती है। अब उनकी स्थिति और भी दयनीय बन जाती है। भूख के कारण सीता बेहोश हो जाती है तो सूर्यम् अपने मालिक रंगनाथम् के घर से खाना चुराकर लाता है, जिसके कारण उसे पुलिस ले जाती है। इतने में ही पिता की मृत्यु भी हो जाती है। सत्यम् दर्जी ही एकमात्र व्यक्ति है जो उनकी सहायता करने का प्रयत्न करता है। किन्तु समाज के व्यक्ति उस पर भी लांछन लगाते हैं। वे सत्यम् तथा सीता में अवैध सम्बन्ध की कल्पना करते हैं। जब सत्यम् सीता से कहता है कि तुम इन बातों का खयाल मत करो तो सीता कहती है—"एक युवती का एक युवक की ओर देखना ही पाप तथा अपराध है क्योंकि हम गरीब हैं।" वही समाज के डर के कारण सत्यम् को अपने घर आने को मना कर देती है। रंगनाथम् उसकी उस निस्सहाय स्थिति का अनुचित लाभ उठाने के लिए अपने व्यक्तियों से कहला भेजते हैं—"भूख से मरने के बाद तुम्हारी शील सम्पत्ति का गुणगान नहीं होगा और लोग कहेंगे कि सीता अपनी असमर्थता के कारण मर गयी। अगर तुम उनका आश्रय लोगी तो खाने के लिए, ओढ़ने के लिए, रहने के लिए—एक से बढ़कर एक साधन मिलेंगे।"[53] उसके मन में अब संघर्ष आरम्भ होता है कि नीति-नियमों के कारण ही एक भाई जेल गया है, दूसरे को नौकरी नहीं है, तथा पिता का देहान्त हो गया है और सभी लोग भूख से मर रहे हैं। वह केवल अपने भाइयों को जीवित देखने

लिए रंगनाथम् के पास जाती है। इतने में दोनों भाई आते हैं। यह जानकर कि सीता अपना शील खो बैठी—सूर्यम् क्रोध और आवेश में उसकी हत्या कर देता है। केवल स्वयं व भाइयों को जीवित रखने के लिए वह आत्मसमर्पण करती है तब भी उसे व्यभिचारिणी एवं कुलटा कहता है स्वयं उसका भाई। सत्यम् के शब्दों में— "इस व्यभिचार का कारण क्या है ? वह केवल भूख मिटाने के लिए तुम्हें जेल से छुड़ाने के लिए तुम्हारा लायसेन्स फिर से दिलवाने के लिए...।"[54] "किन्तु वह अपनी वांछनाओं की सन्तृप्ति के लिए नहीं, सेक्स के लिए नहीं, केवल भूख मिटाने के लिए...उसी कारण जिसके लिए तुमने, चाहे बड़ी हो या छोटी, किन्तु चोरी की थी।"[55]

अगर किसी ने एक अपराध किया है तो उसे करने की परिस्थितियाँ क्या थीं ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। केवल सीता एक नारी होने के कारण बिना सोचे-समझे उसका भाई ही उसकी हत्या कर देता है। किन्तु यह नहीं सोचता कि उस पतन का कारण क्या है ?

ऐसी ही परिस्थिति की जटिलता के कारण हिन्दी की एक कहानी 'भूख' (लेखिका दीप्ति खण्डेलवाल) में सती नायिका एक ड्राइवर के सम्मुख आत्मसमर्पण करती है। वह भूख से बिलबिलाते अपने बच्चों और शय्याग्रस्त रोगी पति की तथा अपनी स्वयं की यातना को और अधिक सहन नहीं कर पाती। अत: विवश हो आत्मसमर्पण करती है।

ऐसी परिस्थितियाँ आज के युग की आर्थिक विषमता का अनिवार्य परिणाम हैं जिनका निराकरण अभी सम्भव नहीं प्रतीत होता। लेखक का उद्देश्य ऐसी जटिल परिस्थितियों के स्वाभाविक परिणाम की ओर संकेत कर पाठक में एक ओर सहानुभूति उत्पन्न करना होता है दूसरी ओर आर्थिक विषमताजन्य ऐसी परिस्थितियों के प्रति विद्रोह तथा शोषक वर्ग के प्रति घृणा का सृजन। नाटककार अपने उद्देश्य में सफल हुआ है।

2.5 अनमेल विवाह के कारण

परिस्थितियों तथा विवशताओं के कारण कभी-कभी कन्या का अनमेल विवाह हो जाता है। वर तथा वधू की आयु अथवा किसी भी प्रकार का मानसिक या भौतिक स्तरों का उल्लेखनीय अन्तर अनमेल विवाह माना जाना चाहिए। कन्या के माता-पिता अपनी मजबूरियों के कारण इस प्रकार के विवाह करने को बाध्य हो जाते हैं अथवा कभी न चाहने पर भी भिन्न रुचियों के वर-वधू परिणय सूत्र में बंध जाते हैं।

2.5.1 सगाई[56]

इस नाटक में अर्थाभाव के कारण समाज में प्रचलित अवस्था सम्बन्धी अनमेल विवाह का चित्रण किया गया है। वीणा विवाह योग्य युवती है जिसके पिता मुरलीधर एक मध्यम-वर्गीय गृहस्थ हैं। वीणा के विवाह के लिए जगह-जगह अपने हितैषी व्यावहारिकों से मुरलीधर ने बात चला रखी है। मगर अनुकूल घर-वर मिलने पर भी सौदा पटना मुश्किल हो जाता है। नकद दहेज के साथ-साथ अन्य खर्च के लिए इतना माँगा जाता है कि मुरलीधर निभा नहीं सकने के कारण सम्बन्ध की बातचीत रोक देता है। उसके मन में पिता

का स्नेह तथा वात्सल्य है किन्तु धन नहीं । शेखर एक धनी सेठ गोपालचन्द का भतीजा है । वीणा के गुणों का प्रशंसक है और उनके परिवार का हितैषी है । किन्तु जातीय बन्धन तथा सामाजिक रिवाज के कारण उस प्रेम में उलझनें हैं इसलिए मौन रहता है । गोकुल एक गंवार आदमी है जिसकी आयु लगभग 40-45 साल की है । वह वीणा से विवाह करने का इच्छुक है । यद्यपि वीणा मौन है किन्तु उसे यह सम्बन्ध पसन्द नहीं । मुरलीधर विवश होकर अपना मकान सेठ गोपालचन्द को बेचकर वीणा की शादी उसी गोकुल से कर देता है यद्यपि यह जानते हुए कि उनकी आयु में काफी अन्तर है । शेखर कुछ भी नहीं कर पाता ।[57]

लड़की सब प्रकार से योग्य है किन्तु वर के माता-पिता को उसकी योग्यता नहीं पैसे चाहिए । इसीलिए वीणा जैसी युवतियों का जीवन नष्ट हो जाता है ।

कभी-कभी वधू के माता-पिता ही धन या सम्पत्ति के लालच में भी अपनी कन्याओं का विवाह किसी भी पुरुष से करने के लिए तैयार हो जाते हैं । भले ही पुरुष उस कन्या के योग्य न हो ।

2.5.2 स्वर्गम्-नरकम्[58]

इस नाटक में ललिता एक युवा कन्या है, जिसके पिता उसकी शादी एक राय बहादुर से तय कर लेते हैं । यद्यपि रायबहादुर का यह चौथा विवाह है उन्होंने एक वेश्या को भी रखा है तथा आयु 65 वर्ष है । ललिता से शादी के लिए उसके पिता को वे दस हजार रुपये का लालच देकर उन्हें फँसा लेते हैं । रायबहादुर होते हुए भी कन्या को ही चाहते हैं । किसी अभागिन विधवा का उद्धार करने के लिए वे तैयार नहीं हैं । ललिता के पिता अपने इस कार्य की सफाई देते हैं, ''उनकी आयु बहुत ज्यादा भी है तो क्या ? दिखने में तो पच्चीस के लगते हैं । लखपती हैं, रायबहादुर की उपाधि है, सौ एकड़ से अधिक जमीन है, तीन-चार महल हैं, हमेशा 50 हजार से ज्यादा रुपये उनके पास रहते हैं । उससे अधिक और क्या चाहिए ।''[59]

रिश्ता अगर वर को पसन्द है तो ठीक है, कन्या का कुछ वश नहीं जब कन्या उसका विरोध करती है तो उसे बन्द ताले में सड़ जाना पड़ता है । ''वर ने तुम्हें पसन्द किया । बस, तुम उसे चाहो यह आवश्यक नहीं ।''[60]

आयु में बहुत अधिक अन्तर होने के कारण कन्याएँ बहुत छोटी-सी अवस्था में ही विधवा बन जाती हैं । इस पर भी उन्हें ही दोष दिया जाता है कि उनका ही बदनसीब है । पैसों के लालच में, जमीन-जायदाद के लालच में अनमेल विवाह कर देने के उदाहरण कई नाटकों में मिलते हैं—जैसे 'प्रेमालयमु'[61], 'संदेशमु'[62] नाटक । 'कलंक या वेश्या'[63] नाटक में राधा, जो इस अनमेल विवाह से बचने के प्रयत्न में आत्महत्या करने जाती है किन्तु बनती है वेश्या । इन सब दुष्परिणामों का कारण क्या है ? अनमेल विवाह । जमीन तथा जायदाद को अपनी पुत्री के सौभाग्य से अधिक महत्व दिया जाना ।

ऐसी स्थितियों की आज भी भारतवर्ष में कमी नहीं है । सम्भव है इस प्रकार का साहित्य समाज में जागृति उत्पन्न कर सके । युवक-युवतियों में विद्रोह की भावना जागृत

कर उन्हें आवश्यक सुधार की प्रेरणा दे सके। इस सुधार की स्वाभाविक प्रतिक्रिया होगी, विधवा-विवाह का प्रचलन जो अपने आप में भी एक महान् उपलब्धि होगी।

2.6 आर्थिक असमानता

स्वातन्त्र्योत्तर काल में भारत सरकार के सम्मुख प्रमुख समस्या आर्थिक असमानता है जिसे मिटाने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है। आर्थिक असमानता यक्ति के जीवन पर भी प्रभाव रखती है। धनिक वर्ग का व्यक्ति अपने को सबसे उन्नत समझ बैठता है तो मध्यम वर्ग का व्यक्ति उस ऊँचाई तक पहुँचने की कोशिश करता है। एक वर्ग के व्यक्ति को दूसरे वर्ग में आने नहीं दिया जाता।

उसका प्रभाव प्रेम तथा विवाह पर भी पड़ता है। युवक एवं युवती एक दूसरे को चाहते हैं, प्रेम करने लगते हैं किन्तु आर्थिक असमानता के कारण उनका विवाह सम्भव नहीं हो पाता। उसका प्रभाव कन्या पर अधिक पड़ता है। उसे अपना मन मारकर जीना पड़ता है। कभी-कभी वह आत्महत्या करने के लिए तैयार हो जाती है। इन सबके मूल में आर्थिक सूत्र काम करते रहते हैं। बहुधा इसी आधार पर रिश्ते टूटते हुए दिखायी देते हैं। यह स्थिति नाटककारों की प्रिय कथावस्तु रही है।

2.6.1 वारसुराल[64]

रमा डाक्टर नारायण राव की पुत्री है। उसकी माँ नहीं है। सुन्दरम् एक सामान्य बेरोजगार युवक है, जिसकी एक विधवा बहन है, उसके बच्चे हैं। रमा तथा सुन्दरम् एक दूसरे से प्यार करते हैं जो नारायण राव को पसन्द नहीं है। वे चाहते है कि उनकी बिटिया फूलों की सेज पर जीवन बिताये। अपनी पुत्री का मन बदलने के प्रयत्न में चार महीने के लिए शिमला ले जाते हैं। किन्तु सफल नहीं होते। रमा को अब शंका भी होने लगती है कि शायद पिताजी मुझसे घृणा करते हैं। नारायण राव सुन्दरम् को फटकारते हैं तथा अपनी पुत्री की उससे मिलने पर कड़ी निगाह रखते हैं। रमा तथा सुन्दरम् चुपचाप भागने के लिए तैयारियाँ करते हैं। रमा अपनी सारी सम्पत्ति छोड़ने के लिए तैयार है, किन्तु सुन्दरम् को यह उचित नहीं प्रतीत होता। वह चाहता है कि किसी तरह शादी के पश्चात् नारायण राव से क्षमा माँग लें तो सम्पति छोड़ने की जरूरत नहीं। पिता होने के नाते वे शायद क्षमा कर भी दें। जिस रात को वे घर से निकलना चाहते हैं, उस दिन सारी तैयारी कर रमा उसकी राह देखती रहती है, किन्तु सुन्दरम् का पता नहीं। रमा का दिल टूट जाता है। वह इस संसार के सभी व्यक्तियों से घृणा करने लगती है। पिता से इसलिए कि यह शादी करने से एक भी पैसा देने को तैयार नहीं। प्रेमी से इसलिए कि वह धन भी चाहता है और प्रेम भी, जो दोनों एक साथ सम्भव नहीं। एक वर्ष के पश्चात् सुन्दरम् रमा के पास आकर अपनी करुण कहानी सुनाता है कि तुम्हें सुखी रखने के लिए मैं नौकरी ढूँढ़ने बम्बई गया था किन्तु वहाँ से लौटने के लिए भी पैसे नहीं थे तो भीख माँगनी पड़ी। बहन का भी पोषण करना है। मैं तुम्हें अपने पिता की जायदाद से दूर कर कष्ट नहीं दे सकता था। मंजूर है तो अब चलो मेरे साथ। किन्तु रमा अपने दिल पर पत्थर रखकर उसे ठुकरा

देती है। अब वह निर्विकार हो जाती है—उसके मन में न प्रेम है न घृणा। स्तब्ध हो जाती है। वे सम्पत्ति के कारण एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखने लगते हैं। पिता के लिए पुत्री के सुख से ज्यादा सम्पत्ति है।

इस प्रकार नाटककार ने आर्थिक असमानता के कारण एक प्रेमी-युगल के जीवन के नष्ट होने का मार्मिक चित्रण किया है। नाटककार अपने उद्देश्य में सफल रहा है।

2.6.2 अधूरी आवाज[65]

रंजना सुशिक्षित सदाचार शील युवती है जो अपने ससुराल के सभी व्यक्तियों से हिल मिल जाती है। उसकी ननद की शादी राजेन्द्र नामक एक धनिक युवक से होती है। अकस्मात् रंजना की स्थिति बदल जाती है तथा वह अपनी प्रकृति के विरुद्ध राजेन्द्र से हँस-हँसकर बातें करने लगती है तथा सबकी दृष्टि अपनी ओर आकर्षित करती है। बाद में उसके पति तथा अन्य व्यक्ति यह जानते हैं कि उसे दौरा आ गया था।

उसकी बहन नीलिमा ने इसी राजेन्द्र से प्यार किया था। वह उसे बहुत चाहती थी। किन्तु राजेन्द्र की प्रवृत्ति धन संचय की ओर है। इसी धनी गरीब के भेदभाव के कारण उसने नीलिमा से विवाह करना अस्वीकार किया था। नीलिमा इस आघात को सहन न कर सकने के कारण आत्महत्या कर लेती है। किन्तु उसकी भटकती आत्मा अपनी छोटी बहन रंजना में प्रवेश कर उसे अपनी इच्छाओं के अनुकूल नचाती है। नाटककार ने इसमें मनोविज्ञान के द्वारा सामाजिक समस्या को प्रस्तुत किया है।

वास्तव में यहाँ भी मूल समस्या आर्थिक असमानता की है। श्री कमलेश्वर हिन्दी जगत के प्रसिद्ध एवं अति कुशल लेखक हैं। उन्होंने इस सामाजिक समस्या को बहुत सक्षमता से बहुत हृदयस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया। नाटक पाठक के हृदय पर अमिट छाप छोड़ता है।

2.6.3 पल्ले-पिल्ला[66]

कुमार नाम का एक पढ़ा-लिखा युवक पद्मा नाम की मछुए की कन्या से प्रेम करता है। कुमार के पिता समाज में एक प्रतिष्ठित धनी व्यक्ति होने के कारण कुमार का रिश्ता अपने ही वर्ग की लड़की शोभा से निश्चित कर लेते हैं। कुमार के कारण पद्मा गर्भवती हो जाती है। यह जानकर पद्मा का पिता उसे समझाता है कि इस समाज में हम जैसे निम्न वर्गों का सम्बन्ध धनिक वर्गों से नहीं हो सकता। जाति के सभी व्यक्ति मेरी हँसी उड़ा रहे हैं तथा तुम्हें कुलटा समझ रहे हैं। तुमको इन पैसेवालों के जाल में फँसना नहीं चाहिए क्योंकि उनके वचन विश्वसनीय नहीं होते। वे सिर्फ अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिए तुम जैसी युवतियों से खेलते हैं। किन्तु पद्मा का मन बदल नहीं पाता है।

कुमार भी अपने पिताजी को समझाने की कोशिश करता है किन्तु पिताजी उसे धमकी देते हैं कि अगर यह शादी नहीं हुई तो वे आत्महत्या कर लेंगे। विवश होकर कुमार शोभा से विवाह कर लेता है किन्तु पद्मा के प्रति प्रेम होने के कारण सुखी नहीं हो पाता। पद्मा को अपनी असमर्थता का परिचय देकर अपने को भूलने को कह वह चला

जाता है। पद्मा बेचारी के पिता का भी देहान्त हो जाता है। उसे जाति-बिरादरी से निकाला जाता है और वह अकेली दर-दर भटकने लगती है। बच्चे के साथ भीख माँगती हुई जाती है तो उसकी भेंट मधु से होती है जो कुमार का सहपाठी है। वह पद्मा से कहता है कि शादी-वादी का नाम न लेते हुए तुम मेरे साथ आ जाओ, मैं तुम्हें रख लूँगा। मधु समाज के इस प्रकार के व्यक्तियों का प्रतीक है जो अबला को रखैल बनाना चाहते हैं। कुमार से उसका मिलन होता है जिसे जानकर शोभा कुपित होती है और मधु के साथ पद्मा पर विष प्रयोग करने का उपाय रचती है। किन्तु गिलास के बदल जाने के कारण शोभा तथा मधु की ही मृत्यु हो जाती है। कुमार के पिता अब कुछ कर नहीं सकते। इसलिए वे कुमार तथा पद्मा को छोड़कर चले जाते हैं क्योंकि एक मछुए की लड़की को वह बहू के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते।

प्रस्तुत नाटक में संयोग व घटनाओं का आश्रय लेकर लेखक ने अन्त में आर्थिक स्तर व जात-पाँत में असमान युवक-युवती को मिला दिया है। यदि यह मिलन भावनाओं एवं विचारों के परिवर्तन के आधार पर होता तो अधिक प्रभावशाली बन जाता। यह सुधारवाद का एक सफल सोपान प्रतीत होता।

2.6.4 तिरस्कृति[67]

कालेज में पढ़नेवाली कामेश्वरी से मोहन नामक धनिक युवक प्रेम के बहाने अपनी वासनाओं की पूर्ति करता है। मोहन पियक्कड़ है, व्यभिचार करता है तथा लड़कियों के जीवन से खेलता है। उसी के शब्दों में, "पीना, मजा करना और उसे राम-राम कह देना। किन्तु प्रेम-व्रेम कुछ नहीं। ये लड़कियाँ भी अपने धन से मोटरगाड़ी, महल, बैंक-बैलंस से प्यार करती हैं।"[68] एक दिन कामेश्वरी आकर मोहन से कहती है कि जल्दी से तुम मुझसे शादी नहीं करोगे तो मुझे आत्महत्या ही करनी पड़ेगी क्योंकि मैं गर्भवती हूँ। मोहन इस पर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहता है कि मैं यह सब नहीं जानता। उसे वह ठुकरा कर चला जाता है। उसके पिता को मालूम है कि उसका लड़का आवारा है। मोहन कुछ पैसे देकर कामेश्वरी का पीछा छुड़ाना चाहता है। यह सब देखते हुए उसका दोस्त शेखर किसी भी तरह जबरदस्ती भी मोहन से कामेश्वरी की शादी करवाना चाहता है। अनजाने मोहन उस जगह आता है, जहाँ कामेश्वरी है। किन्तु अपनी गलती को वह नहीं मानता। जब शेखर उसे मारने के लिए तैयार है तो अन्त में कामेश्वरी कहती है—"मारपीट कर तुम इसका मुझसे विवाह कर सकते हो। किन्तु मुझे ही अब यह पसन्द नहीं। क्योंकि इस आवारा के साथ मेरी जिन्दगी कैसी रहेगी आप ही सोचिये। गरीबी में, इतने कष्ट सहते हुए इतने दिन जैसे जिये थे उसी प्रकार आगे भी जियेंगे। दुनियावाले मुझे ठुकरायेंगे—तो भी माता-पिता मेरी रक्षा कर सकेंगे।"[69] नाटककार ने इस प्रकार अबलाओं को सबल बनने का सन्देश दिया है।

उपसंहार

अन्त में यह सत्य सामने आता है कि हिन्दी तथा तेलुगु दोनों भाषाओं के नाटककारों

ने अपना विषय मुख्य रूप से प्रेम तथा उसके परिणामों को बनाया है। इसका कारण शायद यह है कि आज भी भारत की कन्याओं के लिए विवाह एक प्रमुख घटना है। लगभग शत प्रतिशत कन्यायें तथा उनके अभिभावक उनका विवाह कर घर बसा देना ही उचित समझते हैं। भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में अकेली स्त्री (सिंगल वूमेन) का प्रसंग अत्यन्त नवीन है। आधुनिक युग में शिक्षा पेशे आदि में आने के कारण तथा कुछ रूढ़ियों के कारण ही स्त्रियाँ अविवाहित रह जा रही हैं। उनकी कठिनाइयाँ भी कम नहीं जो हमें पिछले अध्ययन से ज्ञात हुआ है। इसीलिए विवाह को 'सोशली एक्सेप्टेबुल स्टेटस'[70] मानते हैं।

सन्दर्भ-संकेत

1. वूमन इन मनु एण्ड हिज़ सेवेन कामेण्टेटर्स—आर० एम० दास, पृ० 43
2. वही
3. हिन्दू सामाजिक संस्थाएँ—शिवस्वरूप सहाय, पृ० 134
4. जैन ग्रन्थों में नारी (लेख) राजमल जैन (संस्कृति-संचिका 53 से), पृ० 17
5. हिन्दू सामाजिक संस्थाएँ—शिवस्वरूप सहाय, पृ० 151
6. दि हिन्दू वूमेन, पृ० 157
7. कैद और उड़ान—व्याख्या—धर्मवीर भारती, पृ० 19
8. नाटककार—जगदीश शर्मा
9. विदाई नाटक—जगदीश शर्मा, पृ० 4
10. वही, पृ० 15
11. वही
12. वही, पृ० 55
13. नाटककार—जगदीश शर्मा
14. विधवा नाटक—जगदीश शर्मा, पृ० 49
15. वही
16. वही
17. वही, पृ० 3
18. तेलुगु नाटक—नाटककार—गन्पिशेट्टि वेंक्टेश्वर राव
19. नाटककार—गन्पिशेट्टि वेंक्टेश्वर राव, पृ० 35
20. वही, पृ० 32 तथा 34
21. शारदा –नाटककार—गन्पिशेट्टि वेंक्टेश्वर राव, पृ० 88-89
22. तेलुगु नाटक—नाटककार—सीतंराजु वेंक्टेश्वर राव
23. तेलुगु नाटक—नाटककार—बी० एन० सूरी

24. विधवा—नाटककार—जगदीश शर्मा, पृ० 4
25. नाटककार—डा० चन्द्रशेखर
26. त्रिकोण की भुजाएँ, पृ० 35
27. वही, पृ० 37
28. वही, पृ० 35
29. नाटककार—सा० नं० वि० रघुनाथ राव (तेलुगु नाटक)
30. आशा, पृ० 25
31. वही
32. वही
33. वही, पृ० 45
34. नाटककार—सा० जोगिराजु (तेलुगु नाटक)
35. अनामकुलु—नाटककार—सा० जोगिराजु, पृ० 66
36. वही, पृ० 35
37. नाटककार—विमला रैना
38. न्याय—विमला रैना, पृ० 50
39. वही
40. वही, पृ० 51
41. वही, पृ० 49
42. वही, पृ० 55-56
43. नाटककार अश्क—संकलनकर्ता—कौशल्या अश्क, पृ० 38
44. नाटककार—उपेन्द्रनाथ अश्क
45. हिन्दी नाटक कोश—दशरथ ओझा, पृ० 66
46. कैद और उड़ान—नाटककार अश्क, पृ० 152
47. वही, पृ० 151
48. वही, पृ० 153
49. वही, पृ० 154
50. वही, पृ० 159
51. नाटककार अश्क—संकलन, कौशल्या अश्क, पृ० 227
52. नाटककार—पिनिशेट्टी श्रीराममूर्ति (तेलुगु नाटक)
53. अन्ना चेल्लेलु—नाटककार, पिनिशेट्टी श्रीराममूर्ति, पृ० 99
54. वही, पृ० 114
55. अन्ना चेल्लेलु—नाटककार—पिनिशेट्टि श्रीराममूर्ति, पृ० 115
56. शम्भुदयाल सक्सेना
57. हिन्दी नाटक कोश—दशरथ ओझा, पृ० 560-61
58. तेलुगु नाटक—नाटककार—पी० बी० आचार
59. स्वर्गम्-नरकम्—पी० बी० आचार, पृ० 43

60. ईडू-जोडू—ममिडिपाटि कामेश्वर राव, पृ० 16
61-63. इनका अगले अध्यायों में विस्तार से विचार किया गया है।
64. तेलुगु नाटक—नाटककार—शिवम्
65. नाटककार—कमलेश्वर
66. नाटककार—सीतंराजु वेंकटेश्वर राव (तेलुगु नाटक)
67. नाटककार—राचकोंड विश्वनाथ शास्त्री
68. तिरस्कृति—नाटककार—राचकोंड विश्वनाथ शास्त्री, पृ० 26-28
69. वही, पृ० 66-98
70. दि हिन्दू वूमन—मार्गरेट कोरमाक

तृतीय अध्याय

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटकों में चित्रित विवाहिता की समस्याएँ

"युगों के अनवरत प्रवाह में बड़े-बड़े साम्राज्य वह गये, संस्कृतियाँ लुप्त हो गयीं, जातियाँ मिट गयीं, संसार में असम्भव परिवर्तन सम्भव हो गये, परन्तु भारतीय स्त्रियों के ललाट में विधि की वज्र लेखिनी से अंकित अदृश्य लिपि नहीं घुल सकी।"[1] हर युग की भाँति इस युग की नारी के सामने भी अनेक समस्याएँ हैं, जिनमें से प्रमुख विवाह तथा परिवार से सम्बन्धित हैं। इसका कारण यह है कि इस युग में भी स्त्री के जीवन में विवाह एक महत्वपूर्ण मोड़ है तथा उसका सम्पूर्ण भविष्य इसी पर आश्रित है। "हिन्दू नारी का घर और समाज इन्हीं दो से विशेष सम्पर्क रहता है। परन्तु इन दोनों ही स्थानों में उसकी स्थिति कितनी करुण है। इसके विचारमात्र से ही किसी भी सहृदय का हृदय काँपे बिना नहीं रहता। अपने पितृगृह में उसे वैसा ही स्थान मिलता है जैसे किसी दूकान में उस वस्तु को प्राप्त होता है, जिसके रखने और बेचने, दोनों ही में दूकानदार को हानि की सम्भावना रहती है।···पतिगृह जहाँ इस उपेक्षित प्राणी को जीवन का शेष भाग व्यतीत करना पड़ता है, अधिकार में उससे कुछ अधिक परन्तु सहानुभूति में उससे बहुत कम है इसमें सन्देह नहीं।"[2] अधिकतर उसकी शादी उसी समय की जाती है जबकि वह विवाह के बारे में सोच भी नहीं सकती। वर को चुनने में भी उसके मत का कुछ भी मूल्य नहीं रहता। विवाह के पश्चात् पति की पूजा करने का पाठ ही उसे पढ़ाया जाता है।

एंगेल्स के अनुसार, "जब इतिहास में पहले-पहल एक विवाह प्रथा प्रकट हुई तो वह स्त्री और पुरुष के समझौते के रूप में नहीं आयी·· एक विवाह प्रथा का आरम्भ पुरुष द्वारा स्त्री को पराधीन बना लेने में हुआ।"[3]

"एक ओर वर्गवादी संस्कृति ने पुरुष के हाथ में संचित सम्पत्ति के लिए एक उत्तराधिकारी पुत्र की आवश्यकता पैदा की, जिसके लिए एक धर्मपत्नी की आवश्यकता हुई और विवाह का आर्थिक आधार या कम-से-कम विवाह सम्बन्धों में आर्थिक पहलू का महत्त्व बढ़ा, दूसरी ओर पुरुष ने स्त्री को भी मानवता की सीमा से बहिष्कृत कर एक जड़ वस्तु समझा।"[4]

पुरुष की महानता बढ़ने के कई कारण हैं। पहले अवस्था प्राप्त अर्थात् प्रौढ़ विवाह की परम्परा थी। परन्तु पीछे यह स्थिति समाप्त होती गयी।.....''इसका परिणाम यह हुआ कि पति का जो स्थान उन्होंने पहले आँका था, वह क्रमशः ऊँचा होता गया। वैदिक काल में तथा बौद्ध काल तक दोनों एक पथ के दो सहचर पथिक के रूप में स्वीकार किये जाते थे। परन्तु 600 ई० पू० के बाद स्त्री की विवाह की अवस्था कम कर दी गयी और यह कहा गया कि बारह वर्ष के लगभग कन्या का विवाह कर दिया जाना चाहिए। इसलिए कन्या का विद्यालय का अध्ययन समाप्त हो गया। अब उनका विद्यालय उनका पति-गृह, गुरु—पति तथा पाठ्यक्रम पति के गृह का काम बन गया। पाश्चात्य देशों में भी स्थिति कुछ विशेष अच्छी नहीं रही है। स्मृतिकारों ने आगे कहा कि आठ और दस वर्ष के भीतर ही विवाह कर देना चाहिए।''[5]... ''अतएव उनके लिए ज्ञान का, धन का, शिक्षा का तथा कल्याण का एकमात्र माध्यम पति बन गया। अतएव अब पति ने देवता का-सा स्थान—आदर और श्रद्धा में—अपनी पत्नी के हृदय में बना लिया। वही स्थान तब से आज तक किसी-न-किसी रूप में पति का पत्नी के हृदय में व्याप्त है।''[6]

प्राचीन काल से वैवाहिक बन्धन का एक आधार आर्थिक है। स्त्री बच्चों को पैदा करती है, सृष्टि को आगे बढ़ाती है तथा पुरुष धन कमाता है। समय के साथ-साथ अपनी आर्थिक स्वतन्त्रता के कारण पुरुष अधिक स्वच्छन्द बनकर स्त्री पर कठिन-से-कठिन बन्धन लगाने लगा। ''पुरुष सदैव ही स्त्री के प्रति असहिष्णु रहा है। मानो समाज ने उसे अत्याचार का और नारी को सहनशीलता का अधिकार दे रखा है।''[7] जैसाकि जयशंकर प्रसाद जी ने 'कंकाल' उपन्यास में कहलाया है—''पुरुष सदैव स्त्रियों पर अत्याचार करते हैं। कहीं नहीं सुना गया कि अमुक स्त्री ने अमुक पुरुष के प्रति ऐसा ही अन्याय किया, परन्तु पुरुषों का यह साधारण व्यवसाय है—स्त्रियों पर आक्रमण करना।''[8]

आज की वैवाहिक प्रथा एकोन्मुख है। ''पुरुष अच्छा हो या बुरा—नारी को स्वीकार करना ही पड़ता है। मानो किसी भी परिस्थिति में उसकी इच्छा अनिच्छा का कोई प्रश्न ही नहीं। किन्तु नारी सर्वगुण-सम्पन्न और पवित्र होने पर भी पुरुष के निकट प्रार्थिनी है और पुरुष उसे अस्वीकार करने लिए स्वतन्त्र।''[9] फलस्वरूप नारी को घर की चारदीवारी के बीच पुरुष पर निर्भर रहना पड़ता है। यद्यपि आज की विवाहिता नारी भी अपने को आर्थिक रूप से स्वतन्त्र बनाती हुई दिखायी दे रही है किन्तु इसमें भी सफलता तभी प्राप्त हो सकती है जब पुरुष उसे अपने समकक्ष देखने को तैयार है। किन्तु नारी की कमाई, उसका धन, उसके बच्चे ही नहीं वरन् उसकी स्वतन्त्रता भी अपनी नहीं होती। ''वास्तव में नारी का प्राकृतिक स्वरूप एवं पुरुष का अहम् उसे कभी भी वास्तविक समानता देने को तैयार नहीं है।''[10]

निम्न वर्ग की नारियों से मध्यम वर्ग की नारियों की कठिनाइयां अधिक हैं। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ आवश्यकतानुसार अपनी रोटी स्वयं कमा सकती हैं तथा विवाह विच्छेद कर दूसरा विवाह भी आसानी से कर सकती हैं। किन्तु मध्मय वर्ग की नारी कई सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक बन्धनों के कारण वैवाहिक बन्धन न तोड़ना पसन्द करती है, न तोड़ सकती है और अपने घर से बाहर कदम भी आसानी से नहीं रख सकती।

इसीलिए पुरुष पर हमेशा-हमेशा के लिए उसे आश्रित रहना पड़ता है। "मध्यमवर्ग में आज भी पुरुष चाहता है कि नारी उसके इशारों पर चले।···मानसिक दृष्टि से वह अभी भी पुरुष की गुलाम है।"[11] भारत में पितृ सत्तात्मक परिवार व्यवस्था के कारण पुरुष ही अपना शासन रखना चाहता है।

"पहले नारी का परिचय था कभी कन्या के रूप में, कभी भगिनी के रूप में, कभी पत्नी के रूप में और कभी माता के रूप में तथा प्रत्येक स्थान में उसका निस्सहाय रूप था। ···यह युग नारी स्वतन्त्रता का युग है।···कार्य शक्ति की दृष्टि से देखा जाय तो नारी आज दुहरे दायित्व को वहन कर रही है।···घर में गृह स्वामिनी, बहन, पुत्री आदि के रूप में जहाँ वह गृह कार्य सम्हालती है, वहीं बाहर कार्य कर अर्थोपार्जन में भी सहयोग देती है। फिर भी जो कृतज्ञता, सम्मान एवं सद्व्यवहार उसे मिलना चाहिए वह नहीं मिलता। ···पत्नी नौकरी करना चाहे तो पति की आज्ञा से कहीं जाना चाहे तो पति की आज्ञा से।"[12]

विवाहिता नारी को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आज की नारी अपने आपको आर्थिक रूप से स्वतन्त्र बनाने के प्रयत्न में रहती है जिसे पुरुष अपने अहम् के कारण पसन्द नहीं करता। "आज की सामाजिक परिस्थितियों ने नर और नारी के सम्बन्धों में एक विकृति पैदा कर दी है। न तो पुरुष ही नारी को संगिनी के रूप में देखना चाहता है और न रूढ़िग्रस्त संस्कारों में पीड़ित नारी का दमित व्यक्तित्व संगिनी बनने का साहस करता है।"[13]

दूर तक फैली हुई ग्रामीण नारियाँ अशिक्षित होने के कारण पिछड़ेपन के अन्धकार में पड़ी हुई हैं। धार्मिक आडम्बरों तथा अन्धविश्वासों एवं पुरानी रूढ़ियों के कारण उन्हें पुरुष और भी दबाते हैं। इन समस्याओं का चित्रण साहित्य में किया गया है।

स्वातन्त्र्योत्तर नाटक साहित्य में विवाहिता की विभिन्न समस्याओं का चित्रण है, जिनका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

समस्या	हिन्दी नाटक	तेलुगु नाटक
1. पति से सम्बन्धित समस्याएँ		
1. बौद्धिक स्तर की समस्या	बिना दीवारों का घर	—
2. पति का सन्देह	—	पोरपाटु
3. पति का दुर्व्यवहार	अन्धा कुँआ	—
	मंगलसूत्र	—
4. पति का दुश्चरित्र	नर्स	मंगलसूत्र
2. अनमेल विवाह के दुष्परिणाम की समस्या	कैद और उड़ान	चिल्लर कोट्टुचिट्टेम्मा
	कन्या का तपोवन	कलावती
3. बाल विवाह की समस्या	डॉक्टर	व्यामोहम्
4. विवाह में अस्वतन्त्रता	अलग-अलग रास्ते	—
5. परित्यकता की दशा	सुहाग बिन्दी	पंजरम्
	नारी की साधना	—
6. वैवाहिक जीवन में सुरक्षा	—	अनुबन्धालु

3.1 पति से सम्बन्धित समस्याएँ

जीवन को अगर एक रथ समझें तो पति-पत्नी उसके दो पहिये हैं, जिनका महत्व समान है। एक चक्र भी अगर लँगड़ाये तो जीवन रथ उलट जाने की सम्भावना है। किन्तु बहुधा होता यह है कि पुरुष के सामने नारी को नम्र, झुका हुआ जीवन बिताना पड़ता है। इतना होने पर भी असन्तुष्ट पुरुष अपनी पत्नी को शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार से सताता है। इसीलिए आज की नारी घुटन अनुभव कर रही है।

3.1.1 बौद्धिक स्तर की समस्या

वाह्य रूप से पति-पत्नी दोनों पढ़े-लिखे समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान रखे हुए रहते दिखायी देते हैं। किन्तु अन्दर-ही-अन्दर उनके पारिवारिक जीवन में खोखलापन नजर आता है। इसका कारण यह है कि एक ओर "पुरुष अपना शासन रखना चाहता है तथा दूसरी ओर नौकरी करने के कारण नारी आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्र एवं आत्मनिर्भर हो जाती है जो एक बड़ी हद तक उसे सामाजिक स्वातन्त्र्य के लिए भी उकसाती है। अतः ऐसी दशाओं में पति-पत्नी के बीच तनाव आना विशेष आश्चर्य की बात नहीं।"[14]

अनेक बार पति और पत्नी में किसी को दोषी ठहराना कठिन हो जाता है। दोनों में ही किंचित अहम् होता है अथवा रुचि, मानसिक स्तर, जीवन रूपी दृष्टिकोण आदि में इतना अन्तर होता है कि बीच की खाई को पाटना असम्भव हो जाता है। फिर भी यदि दोनों एक-दूसरे की विवशता को समझने का प्रयत्न करें तो सम्भव है खाई पट सके। पर वह सन्तुलन का अभाव जीवन को असह्य बोझ बना देता है।

3.1.2 बिना दीवारों के घर[15]

नाटककार ने इस नाटक में स्त्री स्वातन्त्र्य से पुरुष के अहम् की टकराहट का चित्रण किया है। विवाह के समय शोभा (पत्नी) दसवीं पास लड़की थी। उसे अजित (पति) ने पढ़ाया, संगीत में पारंगत किया तथा खुशी के साथ समारोहों में ले जाने लगा। अजित को घमण्ड हो गया कि शोभा—आज जिस स्थिति में है उसका श्रेय उसे स्वयं को है यानी वह 'अजित मेड' है। पर शोभा का व्यक्तित्व निखरने लगा तो अजित ईर्ष्या का शिकार बनकर उसके गायन नृत्य पर रोक लगाने लगा। शोभा के स्वतन्त्र अस्तित्व को पसन्द नहीं कर सका।

शोभा अजित के अभिन्न मित्र जयन्त की मदद से एक कालेज की प्रिंसिपल नियुक्त हो गयी। इससे अजित के अहम् को ठेस लगी। वह बात-बात पर उसे रोकने का प्रयत्न करने लगा है। वह कहता है—"यह जयन्त है कि झूठ-मूठ तुम्हें रात-दिन आसमान पर चढ़ाने की कोशिश करता है।" तो शोभा चिढ़कर कहती है, "और तुम हो कि मुझे रात-दिन धरती पर घसीटने की कोशिश करते हो।"[16]

शोभा यद्यपि एक गौरवनीय पद पर है किन्तु अजित का उसके प्रति आज भी वही व्यवहार है जो दस साल पहले था। वह यह समझने का प्रयत्न नहीं करता कि आज उसका

अपना अलग व्यक्तित्व बन चुका है। उसमें प्रतिभा है और इस बात को वह खूब अच्छी तरह जानती है।[17] शोभा को मानसिक रूप से अशान्ति देना ही उसका मुख्य लक्ष्य बन जाता है। यद्यपि घर में पूरी व्यवस्था है फिर भी वह सन्तुष्ट नहीं। शोभा को वह मिसेज अजीत की तरह देखना चाहता है, किन्तु श्रीमती शोभा देवी की तरह नहीं। शोभा शिकायत करती है, "कभी मेरी भावनाओं को भी समझने की कोशिश की है ? मेरी अपनी भी कुछ आकांक्षाएँ हैं, अपने जीवन का कोई स्वप्न है ! इस घर की चहारदीवारी के परे भी मेरा अपना कोई अस्तित्व है, व्यक्तित्व है···"[18]

इसी तनावपूर्ण वातावरण में अजीत नौकरी छोड़ देता है। पल-पल पर व्यंग्य कसता है। अन्त में अजित को जयन्त की गुप्त सहायता के कारण एक दूसरी नौकरी मिल जाती है। परन्तु अजित को यह पता नहीं रहता है कि इस नौकरी में जयन्त सहायक रहा है। जब उसे एक पार्टी में मित्रों से मालूम होता है कि नौकरी के पीछे जयन्त की सहायता है तो वह शोभा से बुरी तरह लड़ पड़ता है क्योंकि उसे जयन्त का इस प्रकार सहायता करना पसन्द नहीं आता है। शोभा महसूस करती है "लगता है, जैसे जितना-जितना ऊपर से बढ़ती जा रही हूँ, भीतर से उतनी ही मेरी जड़ें कटती जा रही हैं, मैं अपनी धरती से उखड़ती जा रही हूँ।"[19]

परिणामस्वरूप शोभा अपनी पुत्री को साथ लेकर उस घर से बाहर जाना चाहती है। किन्तु अजित पुत्री को अपने पास ही रख लेता है। बच्ची के बीमार पड़ने पर भी वह शोभा को बुलाना अपने गौरव का ह्रास समझता है। न वह अपनी बच्ची को माँ के पास भेजना चाहता है न वह अपनी पत्नी को बुलाना चाहता है। पत्नी एवं पुत्री से अधिक उसे अपना हठ महत्वपूर्ण लगता है। लाचारी के कारण शोभा ने अपने पति से अलग होना ही उचित समझा है क्योंकि उस जैसी सुशिक्षिता, माननीय नारी इस मजबूरी को सहन नहीं कर सकती। इसीलिए "जहाँ मैंने अपने भीतर की पत्नी को मारा है, वहीं अपने भीतर की माँ को भी मार दूँगी।"[20] अन्तत: वह घर छोड़कर चली जाती है। आधुनिक नारी यह अनुभव करती है—"अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व तथा पेशे को एक ओर तथा अपने वैवाहिक जीवन को एक ओर—इन दोनों में किसी एक को चुनना पड़ता है।"[21]

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या गर्व केवल अजित को होता है ? यदि उसे कुछ गर्व का आभास होता है कि शोभा अजित मेड है तो क्या यह असत्य है ? क्या वास्तव में शोभा को भी अपनी प्रतिभा पर गर्व नहीं हो जाता ? सम्भवत: यदि दोनों ही अपने-अपने गर्व के ताजमहल से बाहर आ जाते तो नाटक दुखान्त न होता।

अत: आवश्यकता इस बात की है कि पति पत्नी दोनों को सद्भावना पर स्थिर रहना चाहिए। एक-दूसरे पर शासन न कर एक-दूसरे को प्रेम देना चाहिए।

डा० प्रमिला कपूर ने इस समस्या का बहुत उपयुक्त उपाय बताया है। उनके शब्दों में, "सुखी विवाहित जीवन वह है जिसमें पति और पत्नी एक-दूसरे को आजीवन अपनाकर एक-दूसरे की रुचि-अरुचि, सुविधा-असुविधा, भावनाओं, आवेगों को समझते हुए एक-दूसरे के साथ तन-मन से सामंजस्य स्थापित करें और परस्पर सन्तोष ग्रहण करें।"[22]

3.2.1 पति का सन्देह

दाम्पत्य सम्बन्ध की आधारशिला है पारस्परिक विश्वास।[23] यह स्वस्थ दाम्पत्य जीवन के लिए अनिवार्य है। वैवाहिक जीवन में पारस्परिक सन्देह भी कभी-कभी बड़ा भयानक रूप धारण कर लेता है। साधारणतया यदि पत्नी को पति के आचरण आदि पर सन्देह होता है तो कुछ न कर सकने के कारण कुण्ठाग्रस्त हो जाती है। लोक साहित्य में 'सौतिया डाह' वह प्रसिद्ध है। परन्तु पति का सन्देह उग्र रूप धारण कर भयानक बन जाता है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि एवं नाटककार शेक्सपियर के औथेलो की दुःखात्मकता का यही कारण है।

हिन्दी के एक जनप्रिय दुखान्त सिनेमा-चित्र 'अन्दाज' (निर्देशक : महबूब, कलाकार : दिलीपकुमार, राजकपूर, नर्गिस) में इस सन्देह की समस्या का सुन्दर चित्रण किया गया था। एक अन्य सुखान्त सिने-चित्र 'चल-चल रे नौजवान' (निर्देशक : शशिधर मुखर्जी, कलाकार : अशोककुमार, नसीम) में भी समस्या का सफल निरूपण था।

पति-पत्नी को एक-दूसरे पर यह विश्वास रहना चाहिए। पति-पत्नी एक-दूसरे से एकनिष्ठा की अपेक्षा रखते हैं। जब इसमें फर्क आता है तो जीवन का रथ टूट जाता है। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि अकारण ही पति अपनी पत्नी के प्रति सन्देह करने लगता है। पति की सन्देहात्मक प्रवृत्ति के कारण पत्नी न उठ-बैठ सकती है न बाहर जा सकती है न किसी से वार्तालाप ही कर सकती है। यदि अन्य पुरुष से बिना किसी कुत्सित भावना के बोलती भी है तो उसे पति द्वारा यातनायें दी जाती हैं। कवि पंत अपने 'लोकायतन' में कहते हैं—

"मधु ने कल पत्नी को पीटा
उसे रात-भर घर-घर बाहर
मेले में हँस बोल रही थी
रामलला को कह वह देवर।"[24]

यदि एक बार मन में सन्देह का बीज उग आता है तो वह महावृक्ष बन सारे जीवन को नष्ट किये बिना नहीं छोड़ता। पति के सन्देह की डोरियों में बँधी नारी को मुक्ति कहाँ। अतः दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है कि जहाँ तक हो सके ऐसे सन्देह उत्पन्न ही न हों। यदि किसी कारण हो जायें तो उनका तुरन्त निराकरण किया जाना चाहिए। ऐसे सन्देहों के निराकरण का किसी को बुरा न मानना चाहिए। इस प्रकार की सदाशयता के अभाव में भयंकर परिणाम होते हैं। उदाहरणार्थ एक नाटक प्रस्तुत है—

3.2.1 पोरपाटु[25]

सरला एक पढ़ी-लिखी युवती है जिसके अपने बाबा के अलावा और कोई नहीं। सरला का विवाह कमल कुमार से हो जाता है जो एक भावुक चित्रकार है तथा सरला के प्रति अगाध प्रेम रखता है। पति-पत्नी खुशी से जीवन बिताते रहते हैं। सरला का पड़ोसी वेणु उसे अपनी बहन के रूप में देखता है। बचपन के साथी होने के कारण सरला तथा वेणु एक-दूसरे के घर आते-जाते हैं। एक बार जब कमलकुमार मद्रास जाता है तो वहाँ

का एक सम्बन्धी कमल के मन में यह सन्देह उत्पन्न करता है कि वेणु तथा सरला एक-दूसरे को प्रेम करते हैं। कमलकुमार के मन में सन्देह पैदा हो जाता है। वह जब घर लौटता है तो सरला वेणु के घर में होती है। उनका सम्भाषण सुन कमलकुमार इस निश्चय पर आता है कि वे दोनों एक-दूसरे से प्यार करते हैं और वह घर छोड़कर चला जाता है। उस समय वेणु की बीमारी के कारण सरला उसका उपचार कर रही थी। इसी को कमल-कुमार गलत समझकर चला जाता है। कलकत्ते में 'रेणु' नाम की युवती के घर उसे आश्रय मिलता है। इधर सरला पति की याद में दिन-रात रोती हुई समय बिताती है। सरला के बाबा किसी तरह उसका पता लगाकर कलकत्ता जाते हैं और कमलकुमार को समझाने की चेष्टा करते हैं कि सरला निर्दोष है। किन्तु अपने सन्देह के कारण कमलकुमार सरला को एक वेश्या, कुलटा, नीच आदि कहता है। इसी समय रेणु पूछती है कि आप मुझे किस दृष्टि से देख रहे हैं? तो कमलकुमार कहता है कि मैं तुम्हें बहन मानता हूँ। रेणु उससे कहती है कि हम दोनों के बारे में भी दुनियावाले क्या सोचते होंगे? "अपने बारे में दुनिया क्या सोचती होगी आपने कभी सोचा? अगर अपने बारे में सोचनेवाली दुनिया के दोनों आँखें नहीं हैं तो सरला के बारे में नीच सोचनेवाले आपको मानसिक नेत्र भी नहीं हैं।"[26]

रेणु का तर्क काम नहीं देता है। कमलकुमार का सन्देह बना रहता है। अन्त में वेणु स्वयं आकर सन्देह का निवारण करता है और पति-पत्नी में मेल करा देता है। नाटककार ने मित्र के प्रयत्न से समस्या का निराकरण कर नाटक सुखान्त कर दिया है। जीवन और साहित्य में यह एक ज्वलन्त समस्या के रूप में अनेक प्रकार से देखने में आती है।

3.3.1 पति का दुर्व्यवहार

समाज के नियमों को देखने पर यह अनुभव होता है कि मानो पुरुष को स्त्री पर विशेष-कर पत्नी पर अत्याचार करने के लिए सम्पूर्ण अधिकार दिये गये हैं। 'कंकाल' उपन्यास में प्रसादजी इसी तथ्य को प्रस्तुत करते हैं—"पुरुष स्त्रियों पर सदैव अत्याचार करते हैं। कहीं नहीं सुना गया कि अमुक स्त्री ने अमुक पुरुष के प्रति ऐसा ही अन्याय किया, परन्तु पुरुषों का यह साधारण व्यवसाय है—स्त्रियों पर आक्रमण करना।"[27] विवाह के पश्चात् पति एक भी क्षण के लिए भूलना नहीं चाहता कि पत्नी को नाना प्रकार की शारीरिक व मानसिक यातना देने के लिए उसे अधिकार है। बेचारी पत्नी को इन कष्टों को झेलने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं रहता। यह स्थिति इस वैज्ञानिक युग में भी मध्यम तथा निम्न वर्ग की स्त्रियों में विशेष रूप से देखी जाती है। निम्न वर्ग में पुरुष पत्नी के जीवित रहने पर भी दूसरा विवाह कर लेता है। उनके अज्ञान के कारण पुरुष लाभ उठा रहा है। युगों के अनवरत प्रवाह में बड़े-बड़े साम्राज्य बह गये, संस्कृतियाँ लुप्त हो गयीं, जातियाँ मिट गयीं, संसार के अनेक असम्भव परिवर्तन सम्भव हो गये, परन्तु भारतीय स्त्रियों के ललाट में विधि की वज्र लेखनी से अंकित अदृष्ट लिपि नहीं धुल सकी।"[28] पति के साथ जीवन का अधिकांश भाग बिताया जाता है किन्तु पत्नी को रत्तीभर भी सहानुभूति प्राप्त नहीं होती उसका जीवन बंदिनी की तरह बिताया जाता है। इसीलिए "चाहे वह स्वर्ण पिंजरे की

बंदिनी हो चाहे लौह पिंजरे की परन्तु बंदिनी तो वह है ही और ऐसी कि जिसके निकट स्वतन्त्रता का विचार तक पाप कहा जायेगा।"[29] बाह्य जगत से उसका सम्बन्ध रहना, स्वतन्त्र विचार रखना, स्वावलम्बिनी बनने का प्रयत्न करना, पति तथा ससुराल के अन्य व्यक्तियों की दृष्टि में अक्षम्य हैं। पत्नी पढ़ी-लिखी हो या अनपढ़ किन्तु उसे शारीरिक-मानसिक या दोनों प्रकार की यातनाओं से बाहर निकलने का प्रयत्न करने पर भी नारी चारों ओर से बँधी ही जा रही है।

कुछ नाटकों में शिक्षित नारी के प्रति पति के दुर्व्यवहार का चित्रण है तो कुछ नाटकों में अनपढ़, ग्रामीण नारियों की स्थिति का चित्रण है जो मूक रूप से जीवन बिताती हैं और चेष्टा करने पर भी अपना उद्धार नहीं कर सकतीं।

3.3.1 अन्धा कुआँ[30]

यह एक दुखान्त नाटक है जिसकी कथावस्तु एक ग्रामीण स्त्री की दर्द भरी कहानी है। सूका एक ग्रामीण स्त्री है, जो अपने पति भगौती के कारण सदा कष्ट पाती है। इस नरक से मुक्ति पाने के लिए वह अपने प्रेमी इन्दर के साथ भागने का प्रयत्न करती है तो पकड़ी जाती है। भगौती सूका को कचहरी में मुकदमा लड़कर इसलिए छुड़ा लाता है क्योंकि यह उसकी इज्जत का सवाल है। भगौती को सूका से यदि कुछ प्रेम भी रहा होगा तो वह इस घटना के बाद समाप्त हो जाता है। अब सूका को पल-पल मारपीट सहनी पड़ती है। भगौती के चारों ओर के मित्र बन्धु-बान्धव तथा उसकी बहन सदा उसे पत्नी के प्रति भड़काते रहते हैं जिसके कारण उसकी प्रवृत्ति राक्षसों जैसी बन जाती है। वह पत्नी को न खाने को, न पीने को, न पहनने को देता है और न उसे चैन से सोने ही देता है। इन शारीरिक और मानसिक यातनाओं से ऊबकर सूका आत्महत्या करने के लिए कुएँ में कूद जाती है। किन्तु कुआँ भी अन्धा निकलता है। वह घर लाई जाती है और दिन-रात उसे रस्सी से बाँधकर रखा जाता है। इस प्रकार उसकी पीड़ाएँ दुगुनी-तिगुनी बन जाती हैं। उसकी स्थिति दिन-प्रतिदिन गिरती जाती है। उसके शब्दों में—"ब्याह कर जब इस घर में लायी गयी तब इस घर ने मुझे 'रखैल' कहा, कचहरी से लौटकर जब मैं इस घर में आयी तब इस घर ने मुझे 'भगैल' कहा और आज जब इस घर में खींचकर लायी गयी तब से यह काला घर मुझे 'चुड़ैल' कह रहा है।"[31]

उसका प्रेमी इन्दर एक रात चोर की तरह आकर उसे बन्धनों से मुक्त करना चाहता है तो सूका ठीक कहती है—"इन रस्सियों को तैयार करनेवाले और इनसे गाँठ बनानेवाले जब तक वे हाथ मौजूद हैं, तब तक केवल इन रस्सियों को काटने से कुछ न होगा।"[32] इन्दर उसे अपनाना चाहता है किन्तु सूका उसके पीछे जाने को तैयार नहीं क्योंकि इन्दर समय पर कभी काम न आया था। जब वह जानवरों की तरह पीटी जा रही थी, जब पुलिस उसे गिरफ्तार कर रही थी तो इन्दर केवल दूर से देख रहा था। सूका अब जान गयी है कि उसमें साहस नहीं है। उस कायर के पीछे जाने से अच्छा किसी तरह इसी घर में मरना है।

इसी बीच भगौती दूसरा विवाह कर लेता है ताकि सौत सूका के सिर पर बैठे। किन्तु सौत निकली देवी। सूका की सहायता से उसकी सौत अपने प्रेमी के साथ भाग जाती

है क्योंकि यह विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध किया गया था। इस घटना के कारण सूका के कष्ट और भी बढ़ जाते हैं। भगौती और इन्दर का एक दिन आमना-सामना हो जाता है और भगौती बहुत घायल हो जाता है। इतने कष्ट देने पर भी सूका उसकी सेवा करती है। भगौती अपनी इस हीन दशा में भी सूका को दुनिया भर की गालियाँ देता है। एक रात इन्दर भगौती को मारने के लिए आता है, किन्तु सूका भगौती को बचाने के लिए स्वयं वार सहन कर मर जाती है। इस प्रकार मरने के बाद ही वह स्वतन्त्र हो पाती है। उसके जीवन में कठिनाइयों एवं यातनाओं के अलावा और कुछ न रहा। उसका कहना ठीक ही है "अन्धा कुआँ यही है, जिसके संग मैं ब्याही गयी हूँ, जिसमें एक बार गिरी और ऐसी गिरी कि फिर न ऊबरी। न कोई मुझे निकाल पाया, न मैं खुद निकल सकी—और न कभी निकल ही पाऊँगी। बस धीरे-धीरे इसी में घुटकर मर जाऊँगी।"[33] यही सच निकला।

इस प्रकार 'अन्धा कुआँ' सूका की दर्द भरी यातना यात्रा है। सूका साधारण ग्रमीण बाला है। वह सहज मानवीय दुर्बलताओं से युक्त है पर एक अति साधारण जीवन पाने के लिए संघर्ष करती है। सारे प्रयत्नों का फल यही होता है कि उसका अन्धा कुआँ और अधिक अन्धा और गहरा होता जाता है। न भगौती उसे ठीक से स्वीकार कर पाता है और न इन्दर उसका उद्धार कर पाता है। मृत्यु ही उसे मुक्ति दे पाती है। ऐसी आँसुओं से भीगा जीवन भारत की अधिकतर ग्राम बालाएँ काटती हैं। यही उनकी नियति है। सूका उनका यथार्थ प्रतिनिधित्व करती है।

3.3.2 मंगलसूत्र[34]

अलका बी०ए० पास एक सुशिक्षिता युवती है। उसके पिता रोहन उसका विवाह कुन्दन-लाल नामक युवक से कर देते हैं। कुन्दन के पिता, पीताम्बर प्रकट रूप से दहेज न लेने का ढोंग रचते हुए रोहन से पाँच हजार रुपये ले लेते हैं। कुन्दनलाल का अपना कुछ विशिष्ट व्यक्तित्व नहीं है। कई पुरुषों की तरह कुन्दन विवाह के पश्चात् क्षण-भर के लिए भी यह भूलना नहीं चाहता कि अलका पर उसका सम्पूर्ण अधिकार है और उसे जो चाहे वह कर सकता है। अलका ससुर और पति दोनों से चिढ़ती है क्योंकि विवाह के बाद उसे चैन नहीं मिलता। अलका एक आधुनिक नारी है जो यह सोचती है कि स्त्री को ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे वह स्वावलम्बी बनना सीखे। कुन्दन को अलका के ये स्वतन्त्र विचार पसन्द नहीं। वह सोचता है कि स्वावलम्बी बनने पर स्त्री पुरुष के सिर पर चढ़ जायेगी। इस प्रकार के कई मतभेद उन दोनों के बीच पलते रहते हैं। इतनी पढ़ी-लिखी होने पर भी अलका को कुन्दन की मारपीट आये दिन सहन करनी पड़ती है। उसके मन में सन्देह बना रहता है कि पढ़ायी के समय अलका किन-किन के साथ फिरी होगी। इन यातनाओं के कारण ही अलका कहती है—"मेरे बाप के पाँच हजार रुपयों के साथ आपका ब्याह हुआ है मेरे साथ नहीं। मेरे बाप ने अपनी गाढ़ी कमाई के पाँच हजार रुपये भी फेंके और मुझको चूल्हे में झोंक दिया।"[35]

अलका अपने मायके चली जाना चाहती है क्योंकि यहाँ की प्रतिदिन की मारपीट उसे असह्य है किन्तु उस पर कड़ी निगाह रखी जाती है। अलका के पिता रोहन से भी

पिता-पुत्र (पीताम्बर और कुन्दन) झगड़ा कर अलका को मायके जाने नहीं देते। उस पढ़ी-लिखी लड़की को पल-पल पर मानसिक-शारीरिक यातनाएँ देते हुए, न जीने देते हैं न बाहर जाने देते हैं। ससुर तो अलका का अन्त ही करना चाहता है और इसलिए उसे घर में बन्दी बना देता है। अलका अपनी इस दशा को बताती है—"वे जैसे हैं, मुझको कहने में लाज आती है। मुझको जब चाहे तब गाली दिया करते हैं। मैं कुछ नहीं कहती। आज अकारण ही उन्होंने छड़ी से इतना मारा है कि मेरी खाल उधड़ गयी है और रक्त की धार बह निकली है। छड़ी टूट तक गयी है।"[36] इस पर पीताम्बर का कहना है—"कैसी शील संकोच की बहू घर में आयी है कितना बकती चली जा रही है।"[37]

नाटककार ने अन्त में समाज के सामने एक आदर्श भी प्रस्तुत किया है। रोहन अपने पड़ौसियों की सहायता पाकर अलका को उस कैद से छुड़ा लाते हैं और अलका के मन पसन्द व्यक्ति से विवाह कर देते हैं। अलका का जीवन सुधर सका क्योंकि समाज के कुछ व्यक्तियों ने उसका साथ किया। इस प्रकार की यातनाओं को सहनेवाली कितनी स्त्रियों को इस प्रकार का अवसर मिलता है ?

नारी का इस प्रकार यातनाओं को सहने का मूल कारण है उसकी आर्थिक अस्वतन्त्रता। जब तक वह स्वावलम्बिनी नहीं बनेगी तब तक इस प्रकार की पीड़ाओं को सहन करना ही पड़ेगा। आज के प्रगतिशील वैज्ञानिक समाज में भी पत्नी की इस स्थिति को देख मन द्रवित होता है। एक ओर पुरुष के साथ प्रत्येक क्षेत्र में अपनी कुशलता दिखाने वाली नारी अपनी क्षमता का प्रमाण देती है दूसरी ओर पति, सास-ससुर आदि के अंकुश तथा नियन्त्रण में जीवन बितानेवाली नारी अपनी सहनशीलता सिद्ध करती है। क्षमता होते हुए भी यातना उसकी नियति है।

3.4 पति का दुश्चरित्र

भारतीय समाज में युगों से चली आ रही प्रथा यह है कि पुरुष अपने अहं के कारण अपने को सब कुछ करने का अधिकारी समझता है। वह अपने मन के अनुसार कहीं भी कैसे भी जा सकता है किन्तु पत्नी को घर के बाहर झाँकने की भी इजाजत नहीं दे सकता। इसके अतिरिक्त पत्नी को दुनिया भर के कष्ट देने में भी वह पूर्ण स्वतन्त्र रहता है। बेचारी पत्नी की स्थिति यह रहती है कि चाहे वह पढ़ी-लिखी, सम्पत्ति रखे, किन्तु पति के हाथों नाना प्रकार के कष्ट सहती है। द्रष्टव्य हैं ये शब्द—"तुम मर्द हो। औरत तुम्हारे लिए एक खिलौना है। एक खत्म हुआ तो दूसरा हाजिर है। पुरुष इस पृथ्वी को भोगने के लिए पैदा होता है। धन, ऐश्वर्य और स्त्री उसका जन्मसिद्ध अधिकार है और वह इसका भोग बार-बार करता है। यहाँ नहीं तो वहाँ, यह नहीं तो वह, एक नहीं तो दूसरी।"[38] पति के दुश्चरित्र के कारण पत्नी को जो कष्ट सहने पड़ते हैं उनका उदाहरण निम्न नाटकों में मिलता है।

3.4.1 नर्स[39]

उषा एक सीधी-सादी युवती है, जो हर शाम मन्दिर में भगवान के कीर्तन में बिताती है।

उसी समय उसे कमल नाम का युवक देखता है जो मन्दिर केवल युवतियों को देखने आता है। वह अपने दोस्त से कहता है, "आज देवी का पता चला है, कल उपासना करेंगे, परसों विनय और चौथे दिन अनशन सहित अखण्ड तपस्या। अरे भक्ति के पीछे तो भगवान तक नंगे पाँव दौड़ आते हैं।"[40] वह अपनी बदतमीजी के कारण एक दिन उषा के हाथ का थप्पड़ खाता है। कमल एक शराबी, आवारा युवक है। संयोगवश कमल का विवाह उषा से हो जाता है। वह अपना परिचय इस प्रकार देता है—"इधर-उधर घूमना बिल्कुल पसन्द नहीं। कभी-कभी दर्शनों के लिए शिवमन्दिर। यह मौका है किसी औरत से यह बातें करने को, दिल धड़क रहा है।"[41] किन्तु घूँघट उठाने पर उषा का मुख देख वह चौंक जाता है। कमल का दोस्त विनोद भी उषा को देख चौंक जाता है। अपने पति के बारे में उषा उससे सवाल करती है, "अगर इनकी जगह मैं होती तो आज क्या दशा होती मेरी? दाग देकर निकाल न दिया जाता इस घर से?"[42] इसका उत्तर विनोद के पास कहाँ है?

कमल का लड़कियों के साथ घूमने पर कुछ नियन्त्रण न होने के कारण अब वह उन्हें घर ही लाने लगता है, जिसे देख उषा को मन में बहुत बुरा लगता है। कमल अपनी पत्नी के सामने एक प्रेयसी लता से यह कहने में नहीं हिचकिचाता है कि शादी होने पर भी मुझ पर कोई बन्धन नहीं है। मैं तुम्हारा था, तुम्हारा ही रहूँगा। किन्तु लता समझ जाती है—"कितना खूबसूरत धोखा है इन तुम्हारी बातों में? सिर्फ नारी को छलने के लिए।"[43] उषा के प्रति कमल का व्यवहार दिन-ब-दिन कठोर होता जाता है। वह उसके पाँव पड़कर रोती है, "दुनिया भर की सुख-सम्पत्ति और स्वर्ग भी नारी के कदमों में बिखेर दिया जाय तो उसे वह खुशी नहीं होगी जो दिन-रात भूखे तड़पने के बाद पति के प्यार भरे दो शब्दों में होती है।"[44] इसके उत्तर में उसे एक लात भी मिलती है। कमल की बहन माला को भी अपने भाई का यह व्यवहार पसन्द नहीं और वह भाभी से कहती है कि तुम थोड़ा-सा कठोर रहो क्योंकि अब आँसुओं से काम नहीं चलेगा। आखिर औरत यह सब क्यों सहती है? "अगर औरत में यह कमी न होती तो आज इसकी इतनी दीन दशा न होती। औरत अपनी कोमलता के ही कारण तो कुचली जाती है।"[45] पुरुष का चाहे कैसा भी बर्ताव क्यों न हो किन्तु वह विद्रोह नहीं करती। वरन् आँसुओं से ठीक रास्ते पर लाने का प्रयत्न करती है क्योंकि वह सृष्टि की माँ है।

कमल को उषा जैसी सीधी-सादी पत्नी पसन्द नहीं आती। उसे चाहिए "पत्नी के बजाय वाइफ। एक सोशल वाइफ, जो मुझे डार्लिंग कह सके, डीयर कहकर पुकार सके। फ्रेंक बिलकुल फ्रेंक। जिसका आँचल मुख से खिसक-खिसककर कन्धों पर आ गिरा हो।"[46] कमल एक दिन एक नर्स को, एक दिन एक देहाती औरत को और इसी प्रकार किसी-न-किसी को अपने साथ घर ले जाता है और पत्नी के ही सामने उनसे प्यार की बातें करने लगता है। उसे सुधारा नहीं जा सकता। तंग आकर उषा जहर पीकर आत्महत्या कर लेती है। कमल जैसे कामी पुरुष को सुधारना किसी के बस की बात नहीं। नर्स होने के नाते सन्ध्या उससे स्नेहपूर्वक व्यवहार करती है तो कमल गलत समझ बैठता है और जब वह प्यार की बातें करने लगता है तो सन्ध्या फटकारती है "सन्ध्या तुम जैसे कामी पुरुषों पर

थूकती भी नहीं। मैं तुमसे घृणा करती हूँ।'''घर की इन वीरान दीवारों में टक्करें मारो, तड़पो, रोओ और चीख-चीखकर मर जाओ।''[47] कामी पुरुष को इससे भी कठिन दण्ड मिलने से भी क्या लाभ, जब उसके बुरे चाल-चलन के कारण एक बेचारी का जीवन का दुखों से अन्त ही हो गया।

3.4.2 मंगल सूत्र[48]

कल्याणी व मधु का विवाह बचपन में हो जाता है। मधु एक वेश्यागामी पति है जो अपने पिता से प्राप्त सम्पत्ति में से हजारों रुपये वेश्या पर खर्च करता है। मधु का सारा समय वेश्या तथा शराब में ही गुजर जाता है। उसे न कल्याणी से शादी ही पसन्द है न उसका मुख ही देखता है—क्योंकि कल्याणी के साथ अपने विवाह को वह विवाह ही नहीं मानता। उसके चारों ओर का वातावरण भी उसे कल्याणी के प्रति घृणा की प्रेरणा देता है। मधु के पिता विजयरामय्या तथा कल्याणी दोनों उसके इस बुरे चाल-चलन से अत्यन्त दुखी हैं किन्तु कर भी क्या सकते हैं। पुत्र से तंग आकर पिता अपनी सारी सम्पत्ति बहू के नाम पर लिखकर पुण्य क्षेत्र देखने चले जाते हैं तथा वहाँ पर मरने का नाटक रचते हैं। मधु को यह बात खटकती है कि पिता को उसके ऊपर विश्वास नहीं। साथ ही अब स्वतन्त्र होने के कारण वह कल्याणी को धमकी देने लगता है। एक दिन वह कल्याणी की हत्या करने पर उतावला होता है। कल्याणी ने उसके पहले ही सारी सम्पत्ति उसके नाम पर लिख दी थी। अब एक ओर वेश्या तथा दूसरी ओर मधु के चाचा उनकी सम्पत्ति पर अधिकार पाने के लिए मधु को उकसाते रहते हैं। स्वयं पतित होने के कारण मधु कल्याणी तथा अपने चचेरे भाई के बीच नीच सम्बन्ध जोड़ने में भी पीछे नहीं हटता। सारी जायदाद से भी असन्तुष्ट वेश्या, मधु को कल्याणी के गहनों के लिए भेजती है, चाहे कल्याणी की हत्या भी क्यों न हो जाये। इस प्रकार से कल्याणी चारों ओर से निस्सहाय बन जाती है। वह अकेली है, उसे सम्पत्ति का मोह नहीं, फिर भी पति उसकी हत्या करने के लिए तैयार है। किन्तु विजयरामय्या की चतुराई के कारण मधु की आँखें खुल जाती हैं। वह अपने चाचा तथा वेश्या का अनुचित सम्बन्ध जानकर कल्याणी से क्षमा याचना करता है।

3.4 अनमेल विवाह के दुष्परिणाम

परिस्थितियों के कारण अनमेल विवाह हो जाते हैं तो उसके परिणाम बुरे निकलते हैं। युवती हमेशा अपने से समवयस्क, प्रेम करनेवाले पति को चाहती है, चाहे वह निर्धन ही क्यों न हो। मानसिक अन्तर को भी इसी के अन्तर्गत रख सकते हैं। माता-पिता कभी-कभी मजबूरी के कारण या किसी लालच में, या अपना वादा निभाने के लिए अपने पुत्र पुत्री की अनसुनी कर इस प्रकार का विवाह करते हुए दिखायी देते हैं। ऐसी स्थिति में नारी न जी सकती है, न मर सकती है। कभी-कभी इस स्थिति में उसका पतन भी हो जाता है।

यों तो अनमेल विवाह स्त्री पुरुष दोनों के लिए ही घातक होते हैं पर इसमें स्त्री

की स्थिति बहुत अधिक जटिल हो जाती है। पुरुष के लिए प्रेम (और विवाह) उसके जीवन का एक अंग होता है परन्तु स्त्री के लिए वह सम्पूर्ण अस्तित्व होता है।।[49] सामाजिक स्थिति की कठोरता के कारण उसकी दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है।

3.5.1 कैद[50]

अप्पी बेहद चंचल, हँसमुख, हवाओं के झोंके में लहरानेवाली मासूम कली जैसी युवती है जो कवि दिलीप के प्रति स्नेह, प्यार, श्रद्धा, आदर रखती है। किन्तु उसके जीवन में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ आ गया। उसकी बहन दिप्पो की शादी प्राणनाथ से हुई थी, दो बच्चे थे, किन्तु उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के बाद उसके माँ-बाप अप्पी की शादी प्राणनाथ से कर देते हैं और अपनी बड़ी बहन की गृहस्थी तथा बच्चों को सँभालने का गुरुतर भार उसके कन्धों पर आ पड़ता है। "वह प्रकाश की मंजुल दीप शिखा हमेशा के लिए निस्पन्द और मलिन हो जाती है।"[51] प्राणनाथ एक आदर्श पति हैं और अप्पी के प्रति अत्यन्त स्नेह भाव रखते हैं, यह जानते हुए भी कि अप्पी मन से उनकी नहीं है। अप्पी एक घुटन सा अनुभव करती है। उसे न गृहस्थी सँभालने का शौक है, न बच्चों से प्रेम। हमेशा मरीज की तरह लेटी रहती है क्योंकि उसके मन में जो पीड़ा है वह शरीर पर असर दिखाती है। उसे चारों ओर शिथिलता ही प्रतीत होती है। एक दिन प्राणनाथ के मुख से दिलीप के आगमन की सूचना सुनकर उसे प्रसन्नता होती है। दिलीप आकर उससे कहता है कि तुमने अपने लिए एक घर, एक पति, दो बच्चे—इनका एक छोटा-सा स्वर्ग बसा लिया तो वह निर्लिप्त भाव से कहती है—"न टूटनेवाली बेड़ियाँ मेरे पाँवों में बँधती चली गयीं।"[52] जब दिलीप उससे पूछता है कि तुम खुश नहीं हो? तो वह उत्तर देती है—"मुझे कभी-कभी ऐसा लगता है, जैसे यह अखनूर मेरा काला पानी है और मैं यहाँ आजीवन बन्दी बना दी गयी हूँ।"[53] और "तुम कभी आओगे—शायद मैं इसी आशा पर जिन्दा थी।"[54]

"कभी-कभी मुझे लगता है जैसे यह अन्धकार मुझे, मेरी इच्छाओं, अभिलाषाओं, आकांक्षाओं, सपनों, स्मृतियों—सबको निगल जायेगा और मैं उस लाश की तरह पड़ी रह जाऊँगी जिसका सारा रक्त कभी न तृप्त होनेवाली किसी जोंक ने चूस लिया हो।"[55] अप्पी अपने जीवन को एक कैद समझती है। अप्पी, 'अपनी आत्मा की मंजिल से और अपने सपनों के देवता से दूर, पारिवारिक बन्धनों और सामाजिक रूढ़ियों में आबद्ध, वह चट्टानों पर सर पटकती हुई, पछाड़ें खाती हुई जल धारा की तरह टूट-टूटकर बिखर रही है।"[56] दिलीप जब वहाँ से चला जाता है तो वह फूट पड़ती है और अनुभव करती है कि केवल उसकी लाश ही रह गयी है। चारों ओर सुन्दर प्रकृति, एक आदर्श पति, अच्छा परिवार, सुन्दर बच्चे—कुछ भी उसके मानसिक घुटन को दूर कर नहीं सकते। बस, वह जीवन को घसीटने का ही प्रयत्न करती है।

नाटककार ने वस्तुस्थिति का यथार्थ एवं जीवन्त चित्रण कर दिया है। न उसे आदर्श रूप देने का प्रयत्न किया है, न कोई उपाय ही सुझाया है। वस्तुस्थिति का मार्मिक चित्रण ही नाटककार की उपलब्धि है।

एक अति जनप्रिय सिने-चित्र गुमराह (निर्देशक : बी० आर० चोपड़ा, कलाकार : अशोककुमार, माला सिन्हा) में बिलकुल इसी स्थिति का चित्रण है। पर वहाँ नायिका संघर्ष करती है।

3.5.2 कन्या का तपोवन[57]

इस नाटक में अनमेल विवाह के दुष्परिणामों की ओर संकेत किया गया है। इन्दुमती सुशिक्षित आधुनिक युवती है। उसका विवाह मदन मोहन से हो जाता है जो धनी किन्तु अशिक्षित है। वह पुरानी रूढ़ियों और परम्पराओं से जकड़ा होने के कारण विवेकहीन हो दूसरों की बातों पर शीघ्र ही विश्वास कर लेता है। उसका चाचा लीलाधर उसकी इसी कमजोरी का लाभ लठाता है और उसका दाम्पत्य जीवन टूट-टूटकर बिखर जाता है। किन्तु इन्दुमती धैर्य और सहिष्णुता को नहीं छोड़ती और अन्त में अपने आदर्श के कारण अपनी गृहस्थी को पुनः बसा लेती है।

प्रस्तुत नाटक का 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' पक्ष सराहनीय है। नाटककार ने अनमेल विवाह के परिणामों का यथार्थ चित्रण कर इन्दुमती के धैर्य एवं सहिष्णुता के कारण टूटे हुए घर को पुनः बसाकर एक स्वस्थ प्रेरणात्मक अन्त प्रस्तुत कर दिया है। वास्तव में एक स्त्री सूझ-बूझ, त्याग एवं धैर्य से अनेक समस्याओं का निराकरण कर घर में सुख-शान्ति बरसा सकती है। प्रस्तुत नाटक में एक सुन्दर उदाहरण द्वारा इस तथ्य को प्रमाणित किया गया है।

3.5.3 चिल्लर कोट्टु चिट्टेम्मा[58]

अनमेल विवाह के दुष्परिणामों का अच्छा उदाहरण यह नाटक है। इसकी नायिका 'चिट्टेम्मा' एक सामान्य परिवार की कन्या है। विवाह से पूर्व वह एक युवक से प्रेम करती है, जो धनिक वर्ग का व्यक्ति है। उनका विवाह सम्भव न हो सका क्योंकि चिट्टेम्मा के माता-पिता अधिक दहेज देने में असमर्थ थे। अतः उसका विवाह उसके बहनोई 'सीतय्या' से कर दिया जाता है। अधेड़ सीतय्या को अपनी दूसरी पत्नी से प्रेम है किन्तु शराब के नशे में वह उसे मारता है। चिट्टेम्मा को अपने पति के प्रति नहीं किन्तु शराब के प्रति घृणा है। अतः वह मानसिक रूप से रोगग्रस्त रहती है। उसकी एक छोटी-सी दूकान है जहाँ विभिन्न प्रकार के व्यक्ति आते-जाते हैं। चिट्टेम्मा अपनी सहज प्रवृत्ति के अनुसार सभी से हँसकर वार्तालाप करती है। दुर्भाग्यवश कुछ व्यक्ति उसके हँसमुख स्वभाव को अन्यथा समझकर उससे प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करने लगते हैं। इनमें से एक उसका पुराना प्रेमी भी है। रात-दिन वह चिट्टेम्मा के पास आकर रट लगाता है— मुझे मेरी पत्नी के कारण सुख नहीं, इसलिए थोड़े ही दिनों में उसे तलाक दे दूँगा। तुम भी इस अधेड़ व्यक्ति से खुश नहीं दीखती हो। अतः तुम भी तलाक दे दो। हम दोनों मद्रास जाकर विवाह कर लेंगे और आनन्द से सिनेमा में काम करेंगे। वह सदा चिट्टेम्मा के मन में यह भाव लाने का प्रयत्न करता है कि अधेड़ व्यक्ति के कारण वह सुखी नहीं है और इस प्रकार अपनी वासना की तृप्ति करने का प्रयत्न करता है। तभी गाँव में भी एक

अफवाह फैलती है कि इन दोनों में कुछ अवैध सम्बन्ध है। सीतय्या के कानों तक यह चर्चा पहुँच जाती है। उसे अपनी पत्नी के प्रति सम्पूर्ण विश्वास होने के कारण वह इन बातों को अनसुनी कर देता है। उस दूकान में आनेवाले अन्य व्यक्ति भी चिट्टेम्मा को धन, आभूषण आदि का लालच देकर उससे प्रेम सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। किन्तु चिट्टेम्मा उन्हें बिलकुल प्रोत्साहन नहीं देती है। एक दिन वह प्रेमी उसके पास आकर कहता है कि चलो आज रात ही हम दोनों मद्रास चले जायें। अन्दर से यह बात सुन सीतय्या भ्रम में आ जाता है कि चिट्टेम्मा भी उससे प्रेम करती है। उसे गाँववालों की चर्चा याद आ जाती है और उसका सन्देह दृढ़ हो जाता है। वह भावावेश में बिना कुछ सोचे-समझे पीछे से आकर अपनी पत्नी के सिर पर वार कर उसकी हत्या कर देता है। बेचारी चिट्टेम्मा को अपनी सफाई देने का भी अवसर नहीं मिलता। उसके मरण को देख प्रेमी यह बताता है कि चिट्टेम्मा पवित्र है। मैं ही उसे वश में लाने का प्रयत्न कर रहा था। यह सुन सीतय्या बहुत दुखित होता है किन्तु "अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गयी खेत।"

प्रस्तुत नाटक में सुयोग्य नाटककार ने दहेज प्रथा व अनमेल विवाह के दुष्परिणामों पर प्रकाश डाला है। साथ ही अफवाहमूलक सन्देह के स्वाभाविक परिणाम का चित्रण भी किया है। दहेज की व्यवस्था न होने के कारण नायिका अपने प्रेमी को पा नहीं सकी, उसका अधेड़ व्यक्ति से विवाह हुआ। उसके पवित्र रहने पर भी पति के सन्देह की वेदी पर उसकी वलि हो गयी।

यथार्थ स्थितियों का चित्रण कर नाटककार ने, दुखान्त कर मानो हमारी आँखें खोलने का सफल प्रयत्न किया है। वह हमें इन स्थितियों के प्रति सचेत कर देता है यही नाटककार की सफलता है।

3.4.5. कलावती[59]

प्रभा एक प्रौढ़ युवती है, जिसकी शादी उसके मामा धन के लालच में रघुनाथ नाम के वृद्ध से करवाते हैं। रघुनाथ बहुत सम्पत्तिशाली है और अपनी दूसरी पत्नी को सुखी रखने का प्रयत्न सदा करते रहते हैं। किन्तु प्रभा इस धन-दौलत से, बूढ़े पति से तथा सारे वातावरण के प्रति असंतृप्त होकर निस्सार जीवन बिताती है। दुर्भाग्यवश प्रभा की इस मानसिक स्थिति का कालीप्रसाद नाम का युवक लाभ उठाता है। अपनी मीठी-मीठी बातों से उसे अपनी ओर आकर्षित कर लेता है और प्रभा समझने लगती है कि कालीप्रसाद के बिना उसका जीवन सूना है। कालीप्रसाद प्रभा को अपने साथ मद्रास भगा ले जाता है जहाँ वे एक स्वर्ग बसाने की कल्पना करते हैं। थोड़े ही समय में प्रभा के साथ लाये हुए आभूषण तथा धन का व्यय हो जाता है। कालीप्रसाद जीविका का कोई साधन नहीं खोज पाता है। कालीप्रसाद का प्रभा से मन भर जाता है और धन भी समाप्त हो जाता है। अतः वह प्रभा से बिना कहे उसे छोड़कर चला जाता है। प्रभा को अकेली पाकर घर का मालिक बलात्कार करने का प्रयत्न करता है। प्रभा न उस घर में रह सकती है, न अपने पति रघुनाथ के पास जा सकती है। कालीप्रसाद की खोज में वह घर छोड़कर बाहर आती है। दर-दर भटकती हुई उसे ढूँढ़ लेती है। किन्तु कालीप्रसाद उसे पहचानना भी अस्वीकार

कर देता है। अन्त में वह प्रभा की हत्या कर स्वयं भी मर जाता है।

यदि प्रभा का विवाह उसके योग्य युवक से हो जाता तो न वह घर ही छोड़ती और न उसका अन्त इतना दयनीय होता। अनमेल विवाह उसके बुरे रास्ते पर चलने का कारण हुआ। इसमें न उसका दोष है न वृद्ध पति का। केवल दोष है सामाजिक व्यवस्था का। यदि वृद्ध अथवा विधुर व्यक्तियों के लिए केवल योग्य विधवाओं से विवाह की सामाजिक व्यवस्था हो जाय तो इस प्रकार की सारी दुर्घटनाएँ समाप्त हो जायें। विधुरों और विधवाओं का जीवन एक स्वस्थ सामंजस्य से सहनीय हो जाये।

3.6 बाल विवाह की समस्याएँ

भारत में इस प्रथा का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ मालूम नहीं। किन्तु यह अनुमान लगा सकते हैं कि वैदिक काल में बाल-विवाह नहीं किये जाते थे। उस समय विवाह की परम्परा थी। "संस्कृत नाटकों तथा पुराणों से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में विवाह वयस्क स्त्री पुरुष में ही सम्पन्न होते थे तथा अपने जीवन संगी को चुनने में उन्हें पूरी स्वतन्त्रता थी। पुराण तथा वेदों में युवावस्था प्राप्त युवती-युवकों के विवाहों के उदाहरण मिलते हैं, जो कभी-कभी अपने माता-पिता की इच्छाओं के विरुद्ध भी कर लेते थे। स्वयंवर प्रथा से भी यही स्पष्ट होता है कि लड़की अपने वर को स्वयं चुन सकती है, जो प्रथा राजपूतों में ई० सदी दस या बारह तक थी।"[60]

बाल विवाह प्रथा का प्रारम्भ कुछ यवन आक्रमणों से मानते हैं, कुछ मुसलमानी आक्रमणों से मानते हैं। "धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार सोलह वर्ष से कम अवस्था की कन्या 'बाला' कहलाती है और सोलह वर्ष की अवस्था से पहले सम्पन्न विवाह बाल-विवाह कहा कहा जाता है।"[61] मनु के अनुसार साधारण आयु परिमित बारह वर्ष होना चाहिए। कुछ आधुनिक शास्त्रों के अनुसार बाल-विवाहों से लाभ हैं—विवाह जबकि छोटी-सी आयु में ही सम्पन्न हो जाता है तो पति-पत्नी के बीच समझौता आसानी से हो जाता है। किन्तु इस लाभ से अधिक हानियाँ ही दिखायी देती हैं। "शीघ्र विवाह हो जाने के कारण युवती शीघ्र ही माँ बन जाती है जो आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार माँ और बच्चे दोनों के लिए हानिकारक है। कभी-कभी उसकी मृत्यु भी हो जाती है।"[62]

सामान्य रूप से जिनका छुटपन में ही विवाह हो जाता है वे बड़े होने के पश्चात एक-दूसरे को अपने अनुरूप न पाकर असंतृप्त रहते हैं। कभी-कभी उनमें विवाह विच्छेद हो जाता है। अगर सामाजिक नियमों के विरुद्ध जाने का साहस न हो तो पति-पत्नी के बीच की खाई बढ़ती जाती है। "यदि किसी का विवाह कम अवस्था में किसी सामान्य पढ़ी लिखी स्त्री के साथ सम्पन्न हो गया है और बाद में वह पढ़-लिखकर किसी बड़े पद का अधिकारी हो जाता है तो अपने उन्नत सामाजिक स्तर के अनुरूप अपनी पत्नी को न पाता हुआ उसे त्याग कर किसी अन्य पढ़ी-लिखी लड़की से विवाह कर लेता है।"[63] इसके उदाहरण निम्नलिखित नाटकों में प्राप्त हैं—

3.6.1 डाक्टर[64]

सतीशचन्द्र शर्मा का जब कि वे विद्यार्थी ही थे, एक सामान्य पढ़ी-लिखी लड़की मधुलक्ष्मी से विवाह हो जाता है। पढ़ाई समाप्त कर वह एक इंजीनियर के उच्च पद पर प्रतिष्ठित होते हैं। वे अब मधुलक्ष्मी को अपने सामाजिक स्तर के अनुरूप नहीं पाते हैं क्योंकि वह सोसायटी में घूम-फिर नहीं सकती है, उठ-बैठ नहीं सकती है, खा-पी नहीं सकती है। इसीलिए वे उसका त्याग कर एक और पढ़ी-लिखी लड़की से विवाह कर लेते हैं। पति परित्यक्ता मधुलक्ष्मी के मन में प्रतिशोध की गहरी प्रतिक्रिया होती है। वह अपने दादा माधव के सहयोग से डाक्टरी का अध्ययन कर अब 'अनीला' के नाम से नर्सिंग होम चलाती रहती है। एक दिन वही सतीशचन्द्र शर्मा अपनी दूसरी पत्नी को लाते हैं। उसे देख अनीला के मन में द्वन्द्व भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। किन्तु दादा तथा डाक्टर केशव के कारण अपने मन को सन्तुलित कर वह शल्य चिकित्सा करती है। दादा के शब्दों में अब केवल डाक्टर ही बचा है न मधुलक्ष्मी न अनीला।

यद्यपि अनीला अपने मन को संयमित करने के लिए अपना पूरा मन लगाकर यन्त्रवत् काम करती रहती है किन्तु उसके मन में डाक्टर केशव के प्रति प्रीति-तन्तु जुड़ जाते हैं। इसीलिए उसे लगता है, "यह कैसी बात है कि कुछ बातें मैं दादा से साफ-साफ नहीं कह सकती, पर डाक्टर केशव से कह देती हूँ। कुछ भी नहीं छिपा पाती। दादा अपने हैं—पर केशव तो जैसे···।"[65] लोक-लाज के भय से अनीला केशव के वैवाहिक प्रस्ताव को ठुकराती रहती है।

"पुरुष की अनुदारता के प्रति नारी के विद्रोह, स्वावलम्बन और चुनौती का आलोच्य नाटक में अन्तश्चेतना मूलक यथार्थवादी चित्रण किया गया है। मधुलक्ष्मी पति के तिरस्कार को एक चुनौती के रूप में लेती है और एक सफल डाक्टर बनकर अपने पैरों पर खड़ी होती है।"[66]

3.9.2 व्यामोहम्[67]

नाटककार ने बाल-विवाह के प्रभाव का इस नाटक में चित्रण किया है। सुशीला तथा कुटुम्ब राव की शादी उनके छुटपन में ही हो जाती है। 10-15 वर्ष के पश्चात् कुटुम्बराव बी०ए० पास कर वापस लौटता है किन्तु अपनी पत्नी को जो उसी शहर में रहती है न देखने जाता है, न लाना ही चाहता है। कुटुम्बराव के मन में सुशीला के प्रति असंतृप्ति है क्योंकि वह अनपढ़ है। छुटपन में हुए उस विवाह को वह विच्छिन्न कर एक अंग्रेजी पढ़ी-लिखी युवती से विवाह करना चाहता है जो उसके साथ सोसायटी में घूम-फिर सके, अंग्रेजी में बात कर सके। सुशीला एक सीधी-सादी युवती है, जो बाहरी ठाट-बाट नहीं जानती है। अंग्रेजी पढ़ी न होने पर भी वह एक व्यवहार कुशल युवती है। उन्हें जब यह ज्ञात होता है कि कुटुम्बराव उनसे सम्बन्ध तोड़ना चाहता है तो पिता तथा पुत्री दोनों दुखी होते हैं। पिता स्वयं जाकर दामाद से मिलते हैं किन्तु वह सुशीला को ले जाने से इन्कार कर देता है।

सुशीला की सहेली पारिजातम् एक सुशिक्षित युवती है, जो सुशीला की यह दशा देख चिन्तित होती है। अपनी कुशलता के कारण सुशीला को थोड़े-बहुत अंग्रेजी के शब्द सिखला कर उसका बाहरी परिवेश बदलकर अपने साथ क्लब में ले जाती है, जहाँ कुटुम्बराव से सुशीला का परिचय एक आधुनिक पढ़ी-लिखी नारी के रूप में देती है। सुशीला का नाम न बताकर वह पारिजातम् नाम बताकर परिचय देती है। कुटुम्बराव सुशीला को पहचान न सकने के कारण उसे पारिजातम् ही समझ उसकी सुन्दरता, कुशलता पर मुग्ध होकर उसकी ओर आकर्षित होता है। कुछ ही दिनों के पश्चात उसे मद्रास ले जाकर सिविल मैरेज कर लेता है। इसके पश्चात् भेद खुलता है कि वह सुशीला ही है। किन्तु अब उससे पूर्णतया सन्तुष्ट होने के कारण कुटुम्बराव सुशीला को स्वीकार कर लेता है।

अतः यह स्पष्ट है कि युवती और युवक को अपनी रुचि के अनुरूप जीवन साथी को चुन लेने की स्वतन्त्रता मिलना ही उचित है। यह तभी सम्भव है जब दोनों अवस्था आदि की दृष्टि से समझदार हो गये हों तथा अपनी इच्छा अनिच्छा को पूर्णतः जानते हों। कच्ची अवस्था में विवाह (अथवा बाल-विवाह) आगे जाकर अनेक अन्याय, यातना एवं विवशता का कारण बन जाता है।

बाल विवाह का एक दुष्परिणाम और है जो कम भयानक नहीं है और जो जीवन में तो बहुत देखने में आता है। वह है युवक पर बहुत शीघ्र ही गृहस्थी का भार पड़ जाना। यानी आजीविका का प्रश्न का उसके सम्मुख दैत्य बनकर प्रकट हो जाना, दूसरी ओर युवती पर मातृत्व का बोझ पड़ जाना। बहुत से गृहस्थ जीवन इस कारण असह्य बोझ बन जाते हैं। युवक एवं युवती अपनी रुचि के अनुरूप पढ़ाई-लिखाई नहीं कर पाते न जीवन में उचित व्यवसाय तलाश पाते हैं। जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ इतनी शीघ्र जुटानी पड़ती हैं कि जीवन का श्रीगणेश ही व्यवस्थित एवं सुचारु रूप से नहीं हो पाता है। यह पक्ष पहले साहित्य में बहुत आया है। स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य में कम ही आया कारण अपेक्षाकृत बाल-विवाह कम हो गये हैं, जो होते हैं वे अधिकतर रूढ़िग्रस्त अनपढ़ परिवारों में। दूसरा कारण यह है कि इस पर पहले के साहित्य में पर्याप्त प्रकाश पड़ चुका है अतः इस समस्या में नवीनता नहीं बची है। अतः उस पर लिखना पिष्ठप्रेषण ही होता है।

3.7 विवाह में अस्वतन्त्रता

भारत में कन्या अपने वर को स्वयं नहीं चुन सकती। उसके माता-पिता ही कन्या का विवाह अपने उद्देश्यों के अनुसार कर देते हैं। वर से अधिक उसके कुल, उसकी सम्पत्ति को महत्व दिया जाता है। अगर इनसे सन्तुष्ट हो गये तो बस विवाह सम्पन्न हो जाता है। वे यह जानने की चेष्टा नहीं करते कि वर किस प्रकार का है, उसकी प्रवृत्तियाँ क्या हैं या वधू उससे विवाह करना चाहती है या नहीं। "ब्याह तो आजकल अँधेरे में तीर मारने के बराबर है। निशाने पर लग गया तो ठीक, नहीं हाथ से निकला तीर तो वापस आता ही नहीं।"[68] आज की वैवाहिक पद्धति एकोन्मुख ही है। साधारणतया युवती को बोलने की स्वतन्त्रता नहीं दी जाती है। कभी-कभी इसके परिणाम बहुत बुरे निकलते हैं। पति लोभी हो सकता है जो अपने ससुराल से प्राप्त दहेज या अन्य वस्तुओं के आधार पर

ही अपनी पत्नी से प्रेम करता है। कभी-कभी युवक-युवती का प्रेम किसी अन्य युवक या युवती से होता है और अन्य से विवाह होने के कारण वे जीवन-भर घुटन का अनुभव करते हैं। दोनों स्थितियों में उसके मन में शान्ति नहीं रहती।

3.0.1 अलग-अलग रास्ते[69]

इस नाटक में "विवाह की समस्या अपनी सारी उलझनों के साथ विद्यमान् है। अपने इस नाटक में अश्कजी ने मध्यमवर्गीय धारणाओं पर बड़े जोरदार प्रहार किये हैं। जहाँ यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है, वहाँ आधुनिक नारी का मार्ग-निर्देश भी कर दिया है।"[70]

रूढ़िवादी पिता ताराचन्द के तीन सन्तान—रानी, राज और पूरन हैं। रानी एक स्वाभिमानिनी एवं प्रगतिशील विचारोंवाली आधुनिक युवती है। ताराचन्द इसका विवाह त्रिलोक से कर देते हैं। क्योंकि वे त्रिलोक के घर-बार और उनके पिता की प्रतिष्ठा और परिवार की सम्पन्नता को ही सबकुछ मानते हैं। किन्तु त्रिलोक क्या है, वह किस मिट्टी का बना हुआ है और उसकी प्रवृत्तियाँ कैसी हैं इस ओर वे ध्यान नहीं देते। अच्छा कुल ही सबकुछ है, अपने इस विश्वास के आधार पर वे त्रिलोक को चुन लेते हैं[71] इसका कारण यह है कि वे हिन्दू विवाह को एक सामाजिक संस्था मानते आये हैं और इसीलिए उसमें व्यक्ति की इच्छा-अनिच्छा का उतना स्थान नहीं जितना पारिवारिक महत्ता का।

कुछ दिनों बाद रानी अपने पिता के घर लौट आती है क्योंकि उसका पति त्रिलोक लम्पट और लोभी है। वह चाहता है कि ताराचन्द उसे एक मकान और मोटर और दें। इसी कारण वह रानी की उपेक्षा करता रहता है। किन्तु रानी जैसी आधुनिक नारी "अपने स्वाभिमान को तिलांजलि एवं निजी व्यक्तित्व को दमित कर धन-लोलुप प्रेम-शून्य हृदयवाले पति, त्रिलोक की उपेक्षा और भर्त्सना सहते हुए कुलवधु की मर्यादा के नाम पर दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने को प्रस्तुत नहीं है।"[72] वह उस घर में रह नहीं सकती जहाँ वह उपेक्षित है।

कुल मर्यादा और शील सदाचार के प्रति प्राचीन दृष्टिकोण रखनेवाले ताराचन्द रानी के इस कर्म से सन्तुष्ट नहीं हैं। रानी की गृहस्थी पुनः बसाने के लिए ताराचन्द त्रिलोक को मोटर और मकान देने को तैयार हैं, जिसका विरोध रानी करती है—"मैं उस व्यक्ति के साथ दो वर्ष तक रही हूँ और जितना मैं उसे जानती हूँ आप या चाचाजी नहीं जानते। एक मकान के लोभ में वह मुझे ले जायेगा, वह मेरी प्रशंसा और खुशामद भी करेगा किन्तु क्या इतना मूल्य देने के बाद इस खरीदे हुए पति को मैं पसन्द कर सकूँगी?"[73] रानी अपने पिता के मोटर और मकान के बल पर नहीं, अपनी योग्यता के बल पर मान पाना चाहती है। वह अपनी बहन से कहती है—"मैं लाख प्यार करती हूँ पर इस अपमान के बाद कभी वहाँ न जाती।"[74] पिता को यह पसन्द नहीं अतः वे रानी से कहते हैं—"तू अपने पति के साथ जायेगी या इस घर में भी नहीं रहेगी।"[75] रानी का उत्तर है—"मैं इस घर को भी नमस्कार करती हूँ।"[76]

राज का वैवाहिक जीवन भी विफल है। उसका विवाह प्रोफेसर मदन से हुआ है

जो अपनी सहपाठिनी सुदर्शना का प्रेमी है। जाति भेद के कारण उनका विवाह नहीं हो सका। ताराचन्द को यह सब नहीं मालूम था। उन्होंने मदन को इसलिए चुना कि मदन "प्रकृति से हंसमुख, आदर्शवादी और कुशाग्र बुद्धि है, जिसके जीवन में बड़ी सम्भावनाएँ छिपी हैं, जो कल एक प्रतिष्ठित व्यक्ति बननेवाला है, यद्यपि वह एक गरीब पुरोहित का लड़का है।"[77] रानी के विवाह के बाद उनके इस विश्वास पर धक्का लगा कि अच्छा कुल ही सबकुछ है। राज से विवाह होने पर भी मदन सुदर्शना को विस्मृत नहीं कर सका। राज अपने विफल वैवाहिक जीवन का परिचय रानी को देती है— "जब कभी मैं कहती हूँ आप जिसे चाहे शौक से प्यार करें, पर मुझे भी न ठुकराइए, तो वह मुझे बाँहों में भीच लेते हैं, पर साफ लगता जैसे मन से नहीं, सिर्फ मेरे रोने से मजबूर होकर प्यार करते हैं। और कभी-कभी इस तरह प्यार करते-करते अपने बाल नोचने लगते, कहते हैं 'मैं कायर हूँ कायर'।"[78]

परन्तु राज एक परम्पराभीरु की पत्नी है। कुण्ठित होने पर भी उसके मन में पति के प्रति विद्रोह का भाव जागृत नहीं होता। राज जैसी असंख्य पत्नियाँ अपने पति के मन में थोड़ी-सी जगह चाहती हैं। वे प्राचीन परम्पराओं को, शृंखलाओं को तोड़कर बाहर आने का साहस नहीं कर सकती। इसीलिए श्वसुर उसे बुलाने आते हैं तो राज उनके साथ जाने के लिए तैयार हो जाती है यद्यपि रानी और भाई पूरन उसे रोकने का प्रयत्न करते हैं।

श्री कमलेश्वर के अनुसार, "रानी और राज के जीवन की विषमताओं का कारण उनका या उनके पतियों का दोष न होकर वह दृष्टिकोण है जिससे प्रेरित होकर ताराचन्द अपनी पुत्रियों का विवाह कर देते हैं।"···हिन्दू विवाह को एक सामाजिक संस्था मानते आये हैं और इसीलिए उसमें व्यक्ति की इच्छा-अनिच्छा का उतना स्थान नहीं रहा है, जितना पारिवारिक महत्ता का।"[79] इसीलिए राज तथा रानी दोनों के विवाह के लिए पतियों को चुनते समय ताराचन्द "उन हाड़-मांस के पुतले वरों से एक बात भी नहीं करते, न उनकी इच्छा आकांक्षाओं को जानने का प्रयत्न करते हैं।"[80] इसके परिणाम राज और रानी पर स्पष्ट दिखायी देते हैं।

निःसन्देह अश्कजी का उद्देश्य उस "दृष्टिकोण जिससे प्रेरित होकर ताराचन्द अपनी पुत्रियों का विवाह कर देते हैं" पर आक्षेप करना है। केवल परिवार देखकर या जन्मपत्रियाँ मिलाकर अथवा केवल दहेज तय कर आज भी बहुत से विवाह होते हैं। इस प्रकार 'व्यक्ति की इच्छा एवं अनिच्छा' पर ध्यान न देकर विवाह-बन्धन में बाँध देना अत्याचार है। परन्तु श्री कमलेश्वर का कथन कि उनका या उनके पतियों (राज और रानी तथा उनके पति) का दोष नहीं है, अनुचित है। त्रिलोक तो लोभी और लम्पट है ही जिसके लिए वह सारी भर्त्सना एवं दण्ड का अधिकारी है। मदन में भी पुरुषोचित साहस का अभाव है। उसका सुदर्शना से प्रेम करते हुए राज से विवाह कर लेना किसी भी प्रकार उचित नहीं ठहरता। इसी प्रकार चारित्रिक दृष्टि से राज और रानी का औचित्य नहीं स्वीकार किया जा सकता। हाँ, यह अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि मदन, राज और रानी में चरित्र की स्वाभाविक दुर्बलता है, उनमें समाज और परिस्थितियों से लड़ने का असाधारण साहस नहीं है। ऐसा साहस दुर्लभ है अतः इनके चरित्र स्वाभाविकता

के घेरे में समा जाते हैं।

अश्कजी को एक यथार्थवादी सहज स्वाभाविक नाटक लिखने में तथा कुछ मानवीय चरित्रों का निर्माण करने में अवश्य सफलता मिली है। उन्होंने प्रचलित विवाह सम्बन्धी रूढ़ियों पर सुन्दर प्रकाश डाला है जो समाज की आँखें खोलने का सफल प्रयास है।

3.8 परित्यक्ता की दशा

प्राचीन काल से पुरुष शास्त्र तथा नियमों का निर्माता होने के कारण अपने आपको अधिक से अधिक स्वच्छन्द तथा नारी को अधिक से अधिक बंदिनी बनाता आया है। इसके कारण नारी का स्थान सदा उसके चरणों में समझा जाता रहा। उसके हृदय में उसे स्थान न मिल सका। चरणों में होने के कारण पुरुष एक लात मारकर उसे कभी भी हटा सकने का अधिकारी समझा जाता रहा। अतः भारत में आदिकाल से यह समझा जाता है, "पुरुष अच्छा हो या बुरा नारी को स्वीकार करना ही पड़ता है। मानो किसी भी परिस्थिति में उसकी इच्छा अनिच्छा का कोई प्रश्न नहीं। किन्तु नारी सर्वगुण सम्पन्नमयी और पवित्र होने पर भी पुरुष के निकट प्रार्थिनी है और पुरुष उसे अस्वीकार करने के लिए स्वतन्त्र है।"[81] जिस नारी को पति ठुकराता है, उसे पितृगृह में भी स्थान मिलना अत्यन्त कठिन होता है। सुख हो या दुःख उसे पति के पास ही रहना पड़ता है। इसके विपरीत उसे अपने गृह से बाहर जाना पड़ता है तो उसे समाज के व्यक्ति जीने नहीं देते। उसे कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। परित्यक्ता होने के कारण आसपास के सभी व्यक्ति उसे सन्देह की दृष्टि से ही देखते हैं। इस परित्याग के कारण भी बहुधा बहुत छोटे होते हैं। पुरुष अपने संदेह के कारण स्त्री को ठुकरा देता है। घर से बाहर कदम रखते ही नारी नाना प्रकार की जटिलताओं में फँस जाती है। कभी वह किन्हीं बुरे व्यक्तियों के जाल में आ जाती है तो कभी स्वयं उसका पतन हो जाता है। परित्यक्ता नारी की दुर्दशा का चित्रण नाटकों में अत्यन्त मार्मिक ढंग से किया गया है।

3.8.1 सुहाग बिन्दी[82]

प्रस्तुत नाटक की नायिका विजया गंगा स्नान के समय गुण्डों द्वारा अपहृत होती है। विजया को बेहोश कर मोटर में गुण्डे ले जाते हैं। उसी समय दुर्घटना हो जाती है। घायल बेहोश विजया अस्पताल में रखी जाती है। होश में आने पर अपनी स्थिति को देख वह आत्महत्या करना चाहती है, किन्तु डाक्टर उसे बचा लेता है।

विजया अस्पताल से छुट्टी पाकर पास ही रहनेवाले अपने पिता के घर जाती है। पिता उसे पहचानना भी अस्वीकार करते हैं। इस एक महीने की अवधि में विजया के पति कुमार ने उसे मृतक घोषित कर दूसरी शादी कर ली। अतः पिता की दृष्टि में वह विजया बेटी नहीं, उसकी भूत है। पिता विजया का कुछ भी कहने-सुनने के लिए तैयार नहीं और उनकी दृष्टि में वह पतित है। "उसका वेश, उसके आने का ढंग, उसके पति का पत्र, ये सब साक्षी हैं।...वह प्रेत होती तो कदाचित् मैं उसे आश्रय दे देता। वह उससे भी भयानक

हो गयी—वह पतित हो गयी। उसके दर्शन में पाप, छाया में विष और साँस में कीटाणु हैं।"[83] पिता के लिए ही नहीं समाज के लिए भी विजया मर चुकी है जिसके श्राद्ध कर्म हो गये थे। पिता विजया को अपने घर के अन्दर कदम रखने नहीं देते और रात्रि के अन्धकार में उस रोती कलपती असहाय अबला को बाहर ढकेलकर ताला बन्द कर लेते हैं।

समाज में अकेली स्त्री पर सभी व्यक्तियों की कुदृष्टि पड़ती है। असहाय और बीमारी की स्थिति में विजया के सारे आभूषण चोरी हो जाते हैं। विवश हो वह एक महिला आश्रम में भर्ती होती है। वहाँ का मैनेजर उस पर कुदृष्टि रखता है। वह किसी तरह वहाँ से भाग निकलती है। अपने पति के घर पहुँचती है तो कुमार उसे पगली कहकर भगा देना चाहते हैं। विजया अपने पति के सम्मुख अपनी निर्दोषिता को सिद्ध करना चाहती है और प्रार्थना करती है कि इस घर में एक पत्नी का स्थान नहीं तो एक दासी का स्थान ही उसे दिया जाये। "अपने चरणों में स्थान दो। तुम्हारी छाया भी अगर देखने को मिल जायेगी तो मैं सबके मुख से विजया मर गयी यह सुनना पसन्द करूँगी। यही नहीं मैं स्वयं भी यही कहना आरम्भ करूँगी विजया मर गयी—।"[84] किन्तु पति भी उसे ठुकरा देता है और घर से बाहर निकाल देता है। आखिर इस परित्याग का कारण क्या है? बहुत छोटा, विजया के ही मुख से—"इतना ही कि मैं अकेली ही चली गयी थी गंगा स्नान को। उनकी अकेले जाने की अनुमति न थी।"[85] इस छोटी-सी भूल का दण्ड इतना भयानक।

विजया की सौत रेवा एक सहृदय महिला है जो उसकी कथा सुन द्रवित होकर उसे अपने घर में स्थान देती है। अपने पति के आँखों से छुपी रहने के लिए विजया एक काली-कोठरी को चुनती है क्योंकि पति की दृष्टि में गिर जाने पर फिर उजाला कहाँ? रेवा उसे निर्दोष मानती है परन्तु समाज की दृष्टि से वह परित्यक्ता है। स्वयं के शब्दों में "पति द्वारा तिरस्कार पाकर फिर कहीं आदर नहीं मिलता। मैं कल अपने पीहर गयी थी।···पिताजी ने एक क्षण के लिए भी मुझे शरण देना स्वीकार नहीं किया।"[86] कुमार यह अनुभव करने पर भी कि शायद विजया निर्दोष है समाज के भय के कारण अपनाना नहीं चाहता। एक दिन रेवा विजया को अपने पति से मिलाना चाहती है, इसलिए उसका श्रृंगार करती है। इसी बीच विजया को एक साँप डस लेता है, जो एक फाँस कहकर वह टाल लेती है। "पति द्वारा किये गये एक सती नारी के तिरस्कार से अधिक सह्य और अधिक मधुर था।"[87] वह सर्प दंश। जब तक पति आकर अपना पश्चाताप प्रकट करता है, तब तक विजया जीवित ही नहीं रहती। इस प्रकार विजया का जीवन एक छोटी-सी भूल के कारण नष्ट हो जाता है।

परित्यक्ता नारी को अबला और असहाय जान समाज के नीच एवं दुष्ट व्यक्ति उसका पीछा करते हैं। इस समाज में पति के बिना वह जीवित नहीं रह सकती। "पति का अभाव नारी के लिए मृत्यु का आह्वान है। परित्यक्ता के लिए कहीं आश्रय नहीं। सत्य भी तो है नारी की समस्त शक्ति और प्रचण्डता तो उसके पति के रूप में साकार हो उठती है।"[88]

इस प्रकार श्री पंतजी ने इस नाटक में एक निर्दोष परित्यक्ता की दयनीय स्थिति

का यथार्थ चित्रण किया है। कथा-वस्तु, चरित्र-चित्रण आदि की दृष्टि से नाटक प्रभावित करता है।

3.8.2 पंजरम्[89]

इस नाटक में ज्योति नाम की एक परित्यक्ता की कहानी है। ज्योति का पति मोहनराव उसे कुछ किम्वदन्तियों के कारण परित्याग कर देता है। मोहनराव ज्योति से बहुत प्यार करता था और अपने साथ समाज में घुमाता था, अपनी पत्नी को काफी स्वातन्त्र्य देता था। किन्तु उनके इस सुखी जीवन को भंग करने के लिए समाज के कुछ व्यक्ति ज्योति के प्रति मोहनराव के मन में शंका उत्पन्न करते हैं। परिणामस्वरूप अपनी पत्नी के हर कदम को वह सन्देह की दृष्टि से ही देखने लगता है। ज्योति का किसी बन्धु, मित्र से बात करना अथवा किसी से पत्र व्यवहार करना आदि बातों को वह सन्देह की दृष्टि से देखने लगा। अन्त में एक कायर की तरह वह ज्योति को घर से निकाल देता है। समाज सदा डरनेवालों को और भी डराता है। समाज के भय के ही कारण उसने पत्नी का परित्याग किया। ज्योति को मायके में भी शान्ति नहीं मिलती है। बन्धु मित्र सभी उसे पतिता मानने लगते हैं और उससे दुर्व्यवहार करने का प्रयत्न करने लगते हैं। अपने मायके में भी न रह सकने के कारण ज्योति अपना नाम 'छाया' रख लेती है और घर से निकल जाती है। किन्तु समाज में वह न अपने को कन्या बता सकती है न परित्यक्ता इसीलिए अपने सुहाग के चिह्न निकालकर एक विधवा की तरह नर्स बनकर रोगियों की सेवा में अपने को सौंप देती है। उसी समय उसकी भेंट एक व्यक्ति से होती है जो अपना परिचय डाक्टर श्री राम के रूप में देता है। झूठी बातों से बहका कर वह छाया को अपने साथ ले आता है। किन्तु धन उपार्जन के लिए उसके बुरे मार्ग पसन्द न कर सकने के कारण छाया अपने को पिंजरे में बंदिनी समझती है। श्रीराम उससे विवाह करने का वादा करता है। इसी समय उस बने हुए डा० श्रीराम के पास मोहनराव एक मरीज के रूप में आता है और छाया को देख, समझ जाता है कि वह किस प्रकार बंदिनी का जीवन बिता रही है। छाया को श्री-राम बंदूक के सहारे चार दीवारों में बन्द रखता है। प्रयत्न करने पर भी वह बाहर निकल नहीं सकती। सबसे वह पगली कहता है। मोहनराव ज्योति से क्षमा याचना कर श्रीराम के कैद से छुड़ाता है। वह कहता है—"उसके पतन का कारण मैं ही हूँ। अकारण मेरे परित्याग देने के कारण उसका पतन हुआ।"[90] ज्योति की स्थिति कुछ दुविधा में है। "तब मैं पतिता नहीं थी, जब उन्होंने घर से बाहर निकाल दिया था, अब मैं पतिता हूँ या नहीं मैं नहीं कह सकती—कुछ अजीब स्थिति है।"[91]

समाज में अकेली जीवन बिता न सकने के कारण ज्योति दूसरा विवाह करना चाहती है। किन्तु वह व्यक्ति भी क्रूर, धोखेबाज, कपटी निकलता है। समय पर उसका पति न आता तो ज्योति राह भटक गयी होती। मोहनराव यह अनुभव करता है कि "मेरी जीवन 'ज्योति' परिस्थितियों के कारण छाया किस तरह बन गयी अब मैं समझ सका।"[92]

नाटककार ने समाज में स्त्री की दयनीयता और विवशता का यथार्थपरक चित्रण किया है। अन्त में मोहनराव में विवेक उत्पन्न कर नाटक को आदर्शोन्मुख अन्त दे दिया

है। नाटककार का प्रयास सफल है। नाटक एक ओर यथार्थ के प्रति हमें सचेत करता है दूसरी ओर एक आदर्श प्रस्तुत कर प्रेरणा तथा उत्साह प्रदान करता है।

3.8.3. नारी की साधना[93]

पत्नी को त्यागने के लिए किसी पति को बहुत बड़े कारण की आवश्यकता नहीं होती है। पत्नी का अपने मन पसन्द की न होना अथवा कोई एक छोटा-सा बहाना बनाकर एक पति अपनी पत्नी को अकेली छोड़ देता है, जिसे अनेक प्रकार की परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है।

करुणा एक पतिपरायण पत्नी है जो अपने पति को देवता मानती है। किन्तु दुर्भाग्य-वश उसका पति राजन एक आधुनिक विलासी पुरुष है जो अपनी पत्नी के मुख से स्वामिन की जगह डार्लिंग कहलाना पसन्द करता है। राजन करुणा को हर छोटी-सी बात पर पीटता रहता है। एक दिन राजन अकारण ही करुणा को अकेली छोड़ घर से चला जाता है। अब करुणा जीविकोपार्जन करने के लिए विवश हो जाती है। उसकी इस असहाय स्थिति का लाभ उठाने का प्रयत्न हर कोई करता है। घर का मालिक उससे पुनर्विवाह करने का प्रस्ताव रखता है तो करुणा क्रुद्ध होती है—"मैं परित्यक्ता हूँ। कुलटा नहीं। पुनर्विवाह का विचार करने से पहले इस सृष्टि से उठ जाऊँगी। सेठ जी! मैं आपकी ऋणि हूँ, पर इसका यह भी तो तात्पर्य नहीं कि आप मुझे अबला और असहाय जानकर अपनी दुराकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए उतावले हो उठें।"[94] असल में विवाह के नाम पर सेठ करुणा को अपने हाथ की कठपुतली बनाना चाहता है क्योंकि वह किराया नहीं चुका सकी। अगर उसकी दुराकांक्षा की पूर्ति कर दे तो किराया चुकाने की आवश्यकता नहीं।

इतना ही नहीं, राजन का एक घनिष्ट मित्र कौल जो सदा इनके घर आता था, पीछे से करुणा को किसी तरह समझाने का प्रयत्न करता है कि राजन को तुम छोड़ दो। अब समय पाकर वह उस निसहाय अबला के साथ बलात्कार करने का प्रयत्न करता है। करुणा अपनी सहेलियों की सहायता लेकर जीविका चलाती है। करुणा को उपदेश दिया जाता है कि तुम्हें स्वप्न से जागना चाहिए। अपने आपको पहचानना चाहिए। तुम अकिंचन व अबला नहीं हो। चिरकाल से पुरुष के आश्रित रहकर तुम स्वयं अबला बन गयी हो। कर्तव्य क्षेत्र में कूद पड़ो। अपने हृदय का अपरिमित स्नेह एक ही व्यक्ति तक सीमित न रखकर विश्व के प्राणी मात्र में बाँट दो।[95] इसी मूल मन्त्र से प्रेरित एवं उत्सा-हित होकर करुणा जीवित रहती है। उसके धन का अपहरण करने के लिए कुछ गुण्डे भी उसे घेर लेते हैं।

करुणा एक भारतीय आदर्शों में पली स्त्री होने के कारण पति की रुग्णावस्था का समाचार सुन उसकी सेवा करने आ जाती है। वह इस क्रूर पति को चाहती तो छोड़ सकती किन्तु वह नहीं छोड़ती, क्योंकि वह मानती है "पति का अभाव नारी के लिए मृत्यु का आह्वान है। परित्यक्ता के लिए कहीं भी आश्रय नहीं। सत्य भी तो है नारी की समस्त शक्ति और प्रचण्डता तो उसके पति के रूप में साकार हो उठती है।"[96] वास्तविकता यह है कि भारत में औरत विशेषकर पत्नी पुरुष के प्रति कठोर नहीं रह सकती। वह अपने

संस्कारों के कारण विवश है। कितने ही कष्ट क्यों न सहने पड़ें किन्तु पति को निःसहाय देख वह पिघल ही जाती है और सेवा सुश्रुषा में कोई कसर उठा नहीं रखती है। "अगर औरत में यह कमी न होती तो आज इसकी इतनी दीन दशा न होती। औरत अपनी कोमलता के ही कारण तो कुचली जाती है।"[97] कविवर श्रीजयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में इसी तथ्य की ओर संकेत किया है—

"मैं दुर्बलता में नारी हूँ
अवयव की कोमलता से हारी हूँ।"

करुणा भी अपने पति के कुकर्मों को भूल उसे क्षमा कर सेवा करने लगती है।

जिन नाटकों की चर्चा हुई है उनमें परित्यक्ता नारी की दीन दशा के विभिन्न पक्षों का सजीव चित्रण प्राप्त होता है। उसे जीने के लिए संघर्ष करना पड़ता है और विभिन्न प्रकार की जटिल परिस्थितियों में गुजरना पड़ता है। उसे न व्यक्तियों की सहानुभूति मिलती है और न समाज की। हर परिस्थिति में उसी को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है, उस पर आरोप लगाये जाते हैं तथा उसकी विवशता का लाभ उठाने का प्रयत्न किया जाता है। वह या तो टूट जाती है या मृतक की भाँति जीवन घसीटती है। फिर भी कुछ नाटकों में पुरुष वर्ग में विवेक उत्पन्न कर एक प्रेरणात्मक एवं उत्साहवर्धक संकेत दिया गया है। अभी इस प्रकार के साहित्य की आवश्यकता है, तभी सम्भव है समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन आये।

3.9 वैवाहिक जीवन में सुरक्षा

युगों से चली आ रही रूढ़ि के कारण वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी को समान अधिकार नहीं दिये जाते हैं। पुरुष अपने को अधिक से अधिक स्वच्छन्द रहकर नारी पर विभिन्न प्रकार के बन्धन लगाता है। इतना ही नहीं, आर्थिक रूप से भी अस्वतन्त्र रहने के कारण नारी का जीवन पुरुष की दया पर निर्भर रहता है। इसीलिए "पुरुष अच्छा हो या बुरा नारी को स्वीकार करना ही पड़ता है। मानो किसी भी परिस्थिति में उसकी इच्छा अनिच्छा का कोई भी प्रश्न नहीं। किन्तु नारी सर्वगुण सम्पन्नमयी और पवित्र होने पर भी पुरुष के निकट प्रार्थिनी है और पुरुष उसे अस्वीकार करने के लिए स्वतन्त्र।"[98] इसी सम्बन्ध में मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियाँ सही मालूम पड़ती हैं—

"नर कृत शास्त्रों के बन्धन हैं सब नारी ही को लेकर
अपने लिये सभी सुविधाएँ पहले ही कर बैठे नर।"[99]

पुरुष जब चाहे तब कोई बहाना बनाकर अथवा अकारण ही पत्नी को लात मारकर बाहर निकाल देने की स्वतन्त्रता रखता है। अतः नारी को वैवाहिक जीवन में भी सुरक्षा कहाँ मिलती है? एक अज्ञात भय, एक अपरिभाषित शंका और एक अकथनीय असुरक्षा उसे सालते रहते हैं। तेलुगु नाटक 'अनुबंधालु' एक सुन्दर उदाहरण है।

3.9.1 अनुबंधालु[100]

रमा तथा मधु दो युवा प्रेमी हैं। दोनों एक दूसरे से विवाह करना चाहते हैं। शेखर रमा का फुफेरा भाई है जो रमा से विवाह करना चाहता है।[101] किन्तु रमा को मधु के प्रति आकर्षित देख एक पत्र लिखता है जिसमें रमा का सम्बन्ध शेखर से जोड़ा जाता है। इस पत्र को देख मधु को रमा के प्रति सन्देह उत्पन्न होता है और वह वहाँ से दूर चला जाता है। इस स्थिति में पिता के हठ के कारण रमा का विवाह कुमार से हो जाता है। रमा अपने बीते दिनों को भूलकर पति को ही सर्वस्व मान सन्तोष एवं सुख से दिन बिताती रहती है। कुछ समय के पश्चात् मधु का वहाँ आगमन होता है। रमा और मधु दोनों ही मन से पुरानी यादें भुला चुके हैं। मधु कुमार और रमा में औपचारिक मित्रता रहती है।

उनके इस प्रशान्त जीवन में शेखर का पुनः प्रवेश होता है। वह अभी भी रमा को भूल न पाया था। उसका मोह द्वेष में परिणत हो जाता है। वह पहले की भाँति फिर कुटिलता करता है। वह कुमार के मन में भी शंका के बीज बो देता है कि रमा तथा मधु में अपवित्र सम्बन्ध है और वे अब भी एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। कुमार तिलमिला उठता है और रमा पर आरोप लगाता है—"प्यार मधु से और विवाह मुझसे कर कितना विश्वासघात किया तुमने।"[102] रमा वास्तविकता समझाते हुए कहती है कि इस समाज में प्रेम होना और विवाह सम्पन्न न होना एक दुर्भाग्य है। बहुत कम स्त्रियों के लिए यह सम्भव है कि जिससे उनका प्रेम हो उसी से विवाह हो। वह अपने पति कुमार को बहुत समझाने का प्रयत्न करती है कि उन दोनों में कोई अपवित्र सम्बन्ध नहीं है, जिसका उसे सन्देह है। किन्तु पति उसे लात मारकर घर के बाहर निकाल देता है।

वह मायके जाती है। वहाँ भी उस परित्यक्ता को आश्रय नहीं मिलता। पिता कहता है, "पति से ठुकरायी जाकर तुम पीहर नहीं आ सकती हो। भारतीय नारी के लिए पति ही देवता है। वही उसका आधार है। यह बन्धन नहीं टूट सकता। तुम अपने-आपको निष्कलंक मानती हो तो तुम्हें वहीं रहना चाहिए। इस स्थिति में तुम मेरे पास आओगी तो समाज हमें जीने नहीं देगा।"[103]

रमा गर्भवती है। फिर भी पति उसे कहीं डूब मरने का आदेश देता है और पिता लोकलाज के कारण घर आने नहीं देता। एक ओर शेखर पीछे लगा हुआ है। इस स्थिति में मधु समझ जाता है कि यह सारी शेखर की करतूत है। इसलिए वह कुमार को समझाने का प्रयत्न करता है। वह रमा को पवित्र प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है। उसका यह भी प्रयत्न रहता है कि स्वयं शेखर वास्तविकता स्वीकार कर ले। कुमार मधु की बातों पर विश्वास करने लगता है तभी शेखर की बन्दूक की गोली से कुमार की मृत्यु हो जाती है। कुमार मरने से पहले रमा से क्षमा याचना कर उसका हाथ मधु के हाथ में सौंप देता है।

नाटककार ने वैवाहिक जीवन की यथार्थ स्थिति के साथ-साथ समाज के सामने रमा के पुनर्विवाह का आदर्श प्रस्तुत किया है। नाटककार अपने प्रशंसनीय प्रयास में, सफल रहा है। समाज में शेखर जैसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जिनके कुटिल कुचक्र के

कारण कितने 'कुमार' अन्याय कर बैठते हैं। पर नाटककार ने मधु जैसे आदर्श पर व्यावहारिक चरित्र को रच कुमार के मन का सन्देह दूर करवा दिया। कुमार के विश्वास और सदाशयता की पराकाष्ठा है कि वह स्वयं रमा को मधु को सौंप देता है। इस प्रकार नाटककार ने पवित्र प्रेम, सदाशय पूर्ण प्रयत्न की जीत एवं कुटिलता की हार दिखाकर विधवा विवाह का आदर्श प्रस्तुत किया है। नाटक का अन्त सद्प्रेरणा एवं सद्प्रभाव का संचरण करता है।

3.10 माता की समस्यायें

भारतीय संस्कृति में माता को मूर्धन्य स्थान दिया गया है। मानव की प्रथम गुरु माता ही है, जो सभी आचार्यों से पिता से, महान् घोषित की गयी है। माता का ऋण चुकाने में सन्तान असमर्थ होती है।[104] मानव संस्कृति के प्रथम सोपान की नींव माता ही डालती है।

किन्तु समय की गति के साथ उसकी स्थिति बदलती गयी है। बचपन में पिता, यौवन में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र को उसका संरक्षक मानकर 'नस्त्री स्वातन्त्र मर्हति' कह दिया गया है। इसीलिए आधुनिक समाज में माताओं की समस्याओं की संख्या कम नहीं है। अपनी वृद्धावस्था में उन्हें अपने बच्चों की, बहुओं की दया पर जीविका चलानी पड़ती है। न वे कहीं जा सकती हैं, न वहाँ उनका उचित परामर्श ही लिया जाता है। विदेशों की तरह भारत में वृद्धों के लिए कुछ व्यवस्था सरकार की ओर से भी नहीं है। इसी कारण उन्हें विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों में भी उनके बाहर जाने का प्रश्न नहीं उठता। स्वतन्त्र रूप से जीना उनकी दूर की बात है। कुछ नाटकों में इस समस्या का संकेत मिलता है।

3.10.1 पार्वती[105]

इस नाटक में परमानन्द एक निर्धन परिवार का व्यक्ति है जिसको उसकी गरीब माता ने बड़े कष्टों से पाला-पोसा है। उसकी पत्नी गुलाब के एक बड़े घर की बेटी होने के कारण दोनों के संस्कारों में विरोध है। गुलाब अपनी महानता के दर्प एवं आधुनिकता के दम्भ में अपनी सास को अपमानित कर घर से निकाल देती है। किन्तु रिश्वत लेने के सन्दर्भ में पकड़े जाने के कारण परमानन्द को नौकरी से अलग होना पड़ता है। इसी समय गुलाब को वास्तविकता का ज्ञान होता है और उसे अपनी सास पार्वती के अपमान करने का बड़ा पश्चाताप होता है। अन्त में वह ठीक रास्ते पर आ जाती है और उसका पारिवारिक जीवन सुखी बन जाता है।

3.10.2 शिक्षार्हुलु[106]

इस नाटक में माता जानकी के प्रति स्वयं पुत्र चन्द्रम् के सन्देह की कहानी है। चन्द्रम् के माता-पिता का विवाह अन्तर्जातीय था अतः उनके कोई सम्बन्धी नहीं रहते हैं। उन्हें बिरादरी से निकाल दिया जाता है। जानकी के भाई अपनी बहन को उसी शहर में देखकर

भी अपना सम्बन्ध बता न सकने के कारण मन-ही-मन दुखी रहते हैं। एक बार उन दोनों भाई-बहन को एक-दूसरे से बात करते हुए देख उनके बीच अवैध सम्बन्ध जोड़ा जाता है। चन्द्रम् को अपनी माता के प्रति इस लांछन को सुन क्रोध आ जाता है और बिना कुछ सोचे-समझे वह अपनी माँ व अपने मामा की हत्या करने के लिए तैयार हो जाता है। इसी बीच जानकी के भाई की हत्या एक अन्य व्यक्ति से सम्पत्ति के कारण हो जाती है। अन्त में भेद खुलने पर चन्द्रम् पाश्चाताप करता है।

इस नाटक में जानकी की दुविधापूर्ण स्थिति का मार्मिक ढंग से चित्रण हुआ है। एक ओर अपने भाई से मिलना चाहती है जो सहज है, किन्तु दुनिया तथा बच्चों के सामने अपना रिश्ता प्रकट नहीं कर सकती है। दूसरी ओर स्वयं अपने पुत्र के ही मुख से कुलटा, नीच, कलंकिनी आदि सुनकर तिल-तिल घुलकर मरती रहती है। किन्तु नारी होने के कारण अपने होंठ सी लेती है। इन सबका मूल कारण है—यौवन के दिनों में अपने मन पसन्द व्यक्ति से अन्तर्जातीय विवाह कर लेना।

उक्त दोनों नाटकों में माता की समस्या का चित्रण है। अनेक नाटकों में प्रधान पात्र के रूप में न होकर सहायक पात्रों के रूप चित्रण मिलता है, जहाँ उनकी विषम स्थिति पर कुछ प्रकाश पड़ता है। मुंशी प्रेमचन्द की दो प्रसिद्ध कहानियों में (पंचपरमेश्वर, बूढ़ी काकी) मार्मिक चित्रण है। इस प्रकार हम देखते हैं कि माता के रूप में भी स्त्री की दशा कम दयनीय नहीं है।

उपसंहार

विवाहिता नारी की इन समस्याओं के अध्ययन के पश्चात् यह अनुभव करते हैं कि क्या नारी के लिए सुखी जीवन मिलना असम्भव है? मिल सकता है, अगर पुरुष उसकी सहायता करे तो। "स्त्री का स्वातन्त्र्य केवल उसी का नहीं वरन् दोनों का है। पुरुष कदाचित यह भूल जाता है कि नारी को सम्मानजनक स्थान न देकर वह अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहा है।"[107] प्रसादजी 'कामायनी' में कहते हैं—"तुम भूल गये पुरुषत्व के मोह में कुछ सत्ता है नारी की।" सच है। पति तथा पत्नी दोनों के सम्मिलित शक्ति के ही कारण जीवन आगे बढ़ सकती है। प्रगति सम्भव है। पत्नी के बिना पति असम्पूर्ण ही रह जाता है। नारी का उद्धार केवल उस वर्ग का उद्धार ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण जाति का है। नारी अपनी दया, क्षमा, ममता के कारण सम्पूर्ण विश्वप्रेम का आधार बनती है। नारी की समस्याओं का चित्रण कर नाटककारों ने समाज के सामने यथार्थ स्थिति रखने के साथ-साथ समाधान प्रस्तुत कर समाज को आदर्श की ओर मार्ग निर्देशन करते हुए दिखायी दे रहे हैं, जिसका स्वागत है।

सन्दर्भ-संकेत

1. शृंखला की कड़ियाँ—श्रीमती महादेवी वर्मा, पृ० 20
2. वही, पृ० 36-37
3. परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राजसत्ता की उत्पत्ति
4. कैद और उड़ान—व्याख्या—धर्मवीर भारती, पृ० 17
5. हिन्दू सामाजिक संस्थाएँ—शिवरत्न सहाय, पृ० 115
6. वही
7. छायावादी कवियों की नारी भावना—प्रतिभा गर्ग, पृ० 514
8. वही
9. वही
10. आधुनिक भारत में नारी का स्थान (लेख) शम्सुद्दीन—संस्कृति-संचिका 53, पृ० 25
11. वही
12. वही, पृ० 24-25
13. नाटककार अश्क—संकलन कौशल्या अश्क, पृ० 227
14. सामाजिक संस्थाएँ और विघटन—प्रो० रांगेय राघव तथा प्रो० श्याम शर्मा, पृ० 40
15. मन्नू भण्डारी—नाटककार।
16. बिना दीवारों के घर—मन्नू भण्डारी, पृ० 43
17. वही, पृ० 49
18. वही, पृ० 60
19. वही, पृ० 63
20. वही, पृ० 118
21. अवर काज—संकलन श्यामकुमारी नेहरू, पृ० 14
22. संस्कृति-संचिका-52, पृ० 43
23. दृष्टव्य, "परस्पर विश्वास सारे सम्बन्धों की आधार शिला है।" डा० प्रोमिला कपूर
24. लोकायतन—सुमित्रानन्दन पंत, पृ० 66
25. नाटककार—वी० भास्कर राव (तेलुगु नाटक)
26. पोरपाटु—वी० भास्कर राव, पृ० 88
27. छायावादी कवियों की नारी भावना—प्रतिभा गर्ग—(अमुद्रित शोधप्रबन्ध) पृ०514
26. शृंखला की कड़ियाँ—महादेवी वर्मा, पृ० 20
29. वही, पृ०37
30. नाटककार—लक्ष्मीनारायण लाल

31. अन्धा कुआँ—लक्ष्मीनारायण लाल, पृ॰70
32. वही, पृ॰68
33. वही, पृ॰ 129
34. नाटककार—वृन्दावनलाल वर्मा
35. मंगलसूत्र—वृन्दावन लाल वर्मा,पृ॰32
36. वही, पृ॰ 40
37. वही
38. ज़हर—नाटककार—कणादि ऋषि भटनागर, पृ॰ 73-74
39. नाटककार—जगदीश शर्मा
40. नर्स—नाटककार—जगदीश शर्मा, पृ॰ 14
41. वही, पृ॰ 29
42. वही, पृ॰ 32
43. वही, पृ॰ 37
44. वही, पृ॰ 39
45. वही
46. वही, पृ॰ 42
47. वही, पृ॰ 61
48. नाटककार—सीतंराजु वेंकटेश्वर राव (तेलुगु नाटक)
49. दृष्टव्य—"Man's love is of Man's life a thing a part 'This Woman's whole existence." (Lord Byron)
(पुरुष के लिए प्रेम उसके जीवन का एक अंग होता है पर स्त्री के लिए उसका सम्पूर्ण अस्तित्व ही।)
50. नाटककार—उपेन्द्रनाथ अश्क
51. कैद और उड़ान—व्याख्या—धर्मवीर भारती, पृ॰ 23
52. कैद और उड़ान—नाटककार—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ॰ 64
53. वही, पृ॰ 72
54. वही, पृ॰ 81
55. वही, पृ॰ 91
56. कैद और उड़ान—व्याख्या—धर्मवीर भारती, पृ॰ 14
57. नाटककार—रामनरेश त्रिपाठी।
58. तेलुगु नाटक—नाटककार—दासं गोपाल कृष्णा
59. नाटककार—सी. वेंकट शास्त्री—(तेलुगु नाटक)
60. एर्ली मैरेज (लेख)—रामेश्वरी नेहरू—पृ॰ 256 (अवर काज—संकलनकर्ता श्यामकुमारी नेहरू)
61. थ्री सोशल ईविल्स—सुन्दर बाई मुक्तांकर, पृ॰ 213 (अवर काज़—संकलनकर्ता श्यामकुमारी नेहरू)

62. वही, पृ० 214
63. हिन्दी समस्या नाटक—मांधाता ओझा, पृ० 153
64. नाटककार—विष्णु प्रभाकर।
65. वही
66. हिन्दी समस्या नाटक—मांधाता ओझा, पृ० 156
67. नाटककार—वेदमु वेंकट राव शास्त्री (तेलुगु नाटक)
68. अलग-अलग रास्ते—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० 65
69. वही
70. नाटककार अश्क—संकलनकर्ता—कौशल्या अश्क, पृ० 38
71. अलग-अलग रास्ते—व्याख्या, कमलेश्वर, पृ० 32
72. हिन्दी समस्या नाटक—मांधाता ओझा, पृ० 150
73. अलग-अलग रास्ते—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० 146
74. वही
75. वही
76. वही, व्याख्या—कमलेश्वर, पृ० 32
77. उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० 84
78. वही, पृ० 84
79, वही, पृ० 32
80. वही, पृ० 33
81. छायावादी कवियों की नारी भावना—डॉ० प्रतिभा गर्ग, पृ० 515
82. नाटककार—गोविन्दवल्लभ पन्त।
83. सुहाग-बिन्दी—गोविन्दवल्लभ पन्त, पृ० 77
84. वही, पृ० 83
85. वही, पृ० 123
86. वही, पृ० 106
87. वही, पृ० 129
88. नारी की साधना—अभयकुमार यौधेय, पृ० 37
89. नाटककार—अवसराल सूर्याराव (तेलुगु नाटक)
90. पंजरम्—अवसराल सूर्याराव, पृ० 101
92. वही, पृ० 63
92. वही, पृ० 106
93. नाटककार—अभयकुमार यौधेय।
94. नारी की साधना—अभयकुमार यौधेय, पृ० 37
95. वही, पृ० 42
96. वही, पृ० 37
97. नर्स—जगदीश शर्मा, पृ० 39

98. छायावादी कवियों की नारी भावना—अमुद्रित शोध प्रबन्ध—डॉ० प्रतिभा गर्ग, पृ० 515
99. हिन्दी निबन्ध—शिवकुमार मिश्र के आधार पर, पृ० 191
100. तेलुगु नाटक—नाटककार—ऑटेल सिद्धेश्वर
101. आन्ध्र प्रदेश में कन्या का अपने फुफेरे भाई से विवाह सम्पन्न किया जा सकता है।
102. अनुबन्धालु—औण्टेल सिद्धेश्वर, पृ० 70
103. वही, पृ० 71
104. औलाद चाहे पूरे ब्रह्माण्ड की स्वामी क्यों न हो, लेकिन माँ के उपकारों का बदला नहीं चुका सकती।—मुंशी प्रेमचन्द।
105. नाटककार—उदयशंकर भट्ट
106. तेलुगु नाटक—नाटककार, कोप्पुल वसन्त राव।
107. हिन्दी निबन्ध—शिवकुमार मिश्र, पृ० 191

चतुर्थ अध्याय

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटकों में विधवाओं की समस्याएँ

"वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीप शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा-सी
वह टूटे तरु की छूटी लता-सी दीन,
दलित भारत की ही विधवा है।"

महाकवि निराला इन शब्दों में हिन्दू विधवा का दयनीय रूप हमारे सामने रखते हैं अपनी 'विधवा' कविता में।

भारतीय नारी के लिए वैधव्य एक क्रूर अभिशाप है क्योंकि पति के मरने के बाद नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय बन जाती है। श्रीमती दास के शब्दों में "विधवायें पुर्नविवाह नहीं कर सकती हैं, अन्य पुरुष का नाम भी नहीं ले सकती हैं। वे सिर्फ दिन में एक ही बार खाकर, जमीन पर सोकर समस्त अलंकारों का त्यागकर हर पन्द्रह दिन में एक बार उपवास कर अपना जीवन काटती हैं। उन्हें दावतों में, विवाह आदि शुभ अवसरों पर दूर रखा जाता है और उनका सामने आना ही अपशकुन माना जाता है।"[1]

वास्तव में प्राचीन काल में विधवाओं की स्थिति उतनी बुरी नहीं थी। उन्हें पुनर्विवाह और नियोग दोनों की छूट थी।[2]

नियोग प्रथा का अर्थ है, "जब स्त्री का पति बिना पुत्र उत्पन्न किये ही मर जाता है तब उस स्त्री के सतीत्व की रक्षा के लिए, मानसिक सन्तुलन के लिए, काम वृत्ति की शान्ति के लिए, भावी जीवन के संरक्षण के लिए विधानतः उसे यह अधिकार दिया गया है कि वह इस प्रथा द्वारा पर सम्पर्क से पुत्र प्रजानित कर सकती है।"[3]

"अथर्ववेद में यह वर्णन मिलता है कि एक स्त्री दूसरी बार अपना विवाह कर रही है।···धर्म सूत्रकारों ने पुनर्विवाह की मान्यता को और अधिक बल दिया।···जातक कथाओं में भी विभिन्न कथायें मिलती हैं जिनसे सिद्ध होता है कि व्यावहारिक जीवन में भी विधवा विवाह की प्रथा थी। इसका केवल सैद्धान्तिक महत्व ही नहीं था।"[4]

पर 300 ई० पू० के बाद जन रुचि इस प्रथा के विरोध में होने लगी ।

शायद मनु के समय 'सती' प्रथा समाज में नहीं थी, इसीलिए मनुस्मृतियों में इसका उल्लेख नहीं मिलता । मनु इतना ही कहते हैं कि विधवा को पातिव्रत्य तथा आत्म-निग्रह के साथ शेष जीवन बिताना चाहिए । उनका कहना है—"मरण के पश्चात् भी जो साध्वी स्त्री अपने पति के साथ रहना चाहती है उसे अपने पति को (चाहे मरे हों या जीवित) अप्रिय लगनेवाले कर्म नहीं करने चाहिए । अपने मरण तक उसे कठिनाइयों का सामना करते हुए आत्मनिग्रह तथा पातिव्रत्य के साथ अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए ।"[5] तत्कालीन समाज में उसे अशुभ नहीं माना गया था, उस पर किसी प्रकार का लांछन या कलंक नहीं लगाया गया था । अत: कुटुम्ब के अन्य सदस्यों के ही समान वह भी अपना साधारण जीवन बिता सकती थी ।[6]

किन्तु समय के परिवर्तन के साथ-साथ विधवाओं पर कठिन-से-कठिन नियम लगाये जाने लगे । शायद सातवीं शताब्दी से सती प्रथा प्रारम्भ हुई होगी । पिछली शताब्दी तक विधवा को सती-प्रथा ही श्रेष्ठतम् बताकर उसके मरे हुए पति के साथ उसे भी जला दिया जाता था ।

अंग्रेजी शासकों के साथ देशी समाज सुधारकों के कठिन परिश्रम के पश्चात् देश में सती-प्रथा का निर्मूलन हुआ । सती-प्रथा का तो निर्मूलन हो गया किन्तु विधवाओं की स्थिति कुछ भी अच्छी नहीं हो सकी क्योंकि पुराने समय में वह शारीरिक रूप से सती होती थी, जो अब मानसिक रूप से होती दिखायी दे रही है ।

यदि दुर्भाग्य से सती के मस्तक का सिन्दूर धुल गया तो मानो सारा संसार ही उसके लिए नष्ट हो गया ।" "वह ऐसा अपराध है जिसके कारण उसे मृत्युदण्ड से भी भीषणतर दण्ड भोगते हुए तिल-तिल घुलकर जीवन के शेष युग बन जानेवाले क्षण व्यतीत करने होते हैं ।"[7]

"पति के मरने में उनका कोई दोष नहीं होता है किन्तु उन्हें समस्त आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, शारीरिक अधिकारों से वंचित किया जाता है । उनको मनुष्य ही नहीं समझा जाता ।"[8]

इन सबका कारण यह है कि भारतीय समाज में पुरुष तथा स्त्री दोनों के लिए एक ही न्याय का उपयोग नहीं किया जाता है । शास्त्र तथा सामाजिक नियमों का निर्माण कर पुरुष अपने आपको अधिक से अधिक स्वच्छन्द तथा स्त्री को कठिन से कठिन बन्धन में रखने में समर्थ हो गया । इसीलिए पति के मरते ही पत्नी को सभी सुखों को त्याग कर सभी आशाओं को अन्धकार में परिवर्तित कर आँसुओं में डूबकर मृत्यु की राह देखते रहना चाहिए । किन्तु पुरुष के लिए किसी भी प्रकार के प्रतिबन्ध नहीं । हिन्दू विधवाओं के प्रति इस अमानवीय व्यवहार की सभ्य तथा विवेकी पुरुषों ने निन्दा की है, क्योंकि मानवता की दृष्टि से यह प्रताड़ना किसी भी प्रकार क्षम्य नहीं है ।

पुरुष के लिए द्वितीय विवाह करने में कोई बाधा नहीं । किन्तु पति की मृत्यु के बाद विधवा को दर-दर भटकना पड़ता है और नाना प्रकार की परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है, क्योंकि पति के न रहने पर श्वसुर गृह भी नारी के लिए शून्य हो जाता है जिसे

वह अपना घर मानती है। "प्रायः उन्हें अपने माता-पिता या भाई का सहारा लेना पड़ता है जहाँ वे भार स्वरूप ग्रहण की जाती हैं। किन्हीं-किन्हीं परिवारों में दो-दो या चार-चार विधवाएँ हो जाती हैं और उनका पालन-पोषण करनेवाला एक ही व्यक्ति होता है। इन परिवारों में वे पुरुष की कृपा या दया का पात्र बनकर रहती हैं तथा बहुत दीन-हीन जीवन व्यतीत करती हैं।"[9]

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने 1855 में विधवा पुनर्विवाह के प्रति एक आन्दोलन शुरू किया तथा इसके फलस्वरूप यद्यपि विधवा पुनर्विवाह के सम्बन्ध में कानून 1856 में ही बन गया था, किन्तु आचरण में बहुत कम दिखता है, जिसका कारण भारतीय समाज में फैले हुए रूढ़िवाद हो सकते हैं।[10] परन्तु "वैदिक काल में विधवा-विवाह निषिद्ध नहीं था। तैत्तरीय संहिता, अथर्ववेद आदि ग्रन्थों में विधवा पुनर्विवाह सम्बन्धी कुछ श्लोक मिलते हैं। किन्तु समय के परिवर्तन के साथ शायद इस पर निषेध लगाया गया होगा—इसीलिए बाद में आनेवाले गृहासूत्र इस विषय पर मौन हैं।"[11]

मनु महाराज तो विधवा विवाह के कट्टर विरोधी दिखते हैं। वे कहते हैं—"द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते।"[12] अर्थात् साध्वी स्त्री के लिए दूसरा पति नहीं हो सकता। इस पुनर्विवाह से उत्पन्न पुत्र को भी वे पुत्रों के क्रम में सबसे नीचा स्थान देते हैं, जिसे पिता की सम्पत्ति का अधिकारी नहीं मानते हैं सिर्फ एक सम्बन्धी मानते हैं। कुछ अन्य सूत्रकारों ने संतानवती विधवा को पुनर्विवाह निषिद्ध माना था।[13]

परम्परा रूप से चली आ रहे इन धार्मिक और सामाजिक अन्धविश्वासों के कारण आज के युग में न्यायशास्त्र के सामने अड़चन न होते हुए भी विधवा विवाहों की संख्या बहुत कम दिखायी पड़ती है। सर्वप्रथम कोई भी पुरुष चाहे वह विधुर ही क्यों न हो किन्तु विधवा से विवाह करने के लिए आगे नहीं आता है। अगर कोई व्यक्ति आगे बढ़ता भी है तो समाज के अन्य व्यक्ति उसके मार्ग में यथा सम्भव अड़चन डालने का प्रयत्न करते हैं।

पति की जायदाद में भी प्राचीनकाल में विधवा को भाग नहीं था। मनु तथा अन्य शास्त्रकारों ने पति के मरने पर किसी अन्य पुरुष सम्बन्धी को ही सम्पत्ति का अधिकारी माना है किन्तु विधवा को नहीं।[14] आर्थिक रूप से परतन्त्र विधवा की स्थिति कितनी दयनीय होगी। स्वतन्त्रता के बाद उसे भी पति की सम्पत्ति में भाग दिया गया किन्तु कई बन्धन भी लगाये गये। हाल ही में विधवा की इस स्थिति में सुधार किये जा रहे हैं।

यह रही विधवा की सामाजिक स्थिति। समाज और साहित्य एक-दूसरे को आगे बढ़ाते हैं तथा अन्योन्याश्रित हैं। अतः समकालीन हिन्दी तथा तेलुगु नाटककार अपने नाटकों में विधवाओं की दीन दशा का चित्रण करते हुए दिखायी देते हैं। कुछ नाटकों में विभिन्न समस्याओं के साथ-साथ समाधान भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटकों में चित्रित विधवाओं की समस्याओं का वर्गीकरण निम्न रूप से कर सकते हैं—

समस्या	हिन्दी नाटक	तेलुगु नाटक
1. विधवाओं की समाज में दशा	फैसला सुहागिन देवर-भाभी	—
2. विधवा विवाह	—	प्रेमालयम् संदेशम्
3 सन्तानवती विधवा	खण्डहर	—
4. बाल-विधवा	हिन्दू विधवा	—

4.1 विधवाओं की समाज में दशा

पति के मरण में अपना कुछ भी दोष न होते हुए भी विधवा नारी समाज के तथा परिवार के व्यक्तियों से कोसी जाती है। रात-दिन खरी-खोटी सुनाई जाती है। जिन्दगी काँटों से भरी रहती है। कोई उसका मुँह देखना पसन्द नहीं करते। यन्त्रवत उसे परिवार के व्यक्तियों की सेवा करनी पड़ती है। किन्तु उसे सहानुभूति देनेवाले व्यक्ति होते ही नहीं। इस यथार्थ का चित्रण निम्न नाटकों में किया गया है।

4.1.1 फैसला[15]

राधा नाम की युवती चोखेलाल तथा चमेली की विधवा पुत्रवधू है, जिसका बीमार पति विवाह के तुरन्त बाद ही मर जाता है। अब उसका जीवन राधा के ही शब्दों में कितना दुःख भरा है—"सास जिसे डायन कहे, आरोप लगावे कि आते ही मेरे लाल को खा गयी, ससुर जिसे चुड़ैल समझे कि घर का नाश करके ही छोड़ेगी, ननद जिसे नीच कहकर पुकारे कि कुल घात करेगी—इसी का नाम जिन्दगी है।"[16]

यद्यपि वह घर का सारा काम करे, केवल पेट की आग बुझाने के लिए मुट्ठी भर खाना खाये, न भी खाये, किन्तु कोई उससे सन्तुष्ट नहीं। उस पूरे परिवार में चोखेलाल का भतीजा बिहारी ही राधा से सहानुभूति रखता है। इसी कारण दोनों पर अवैध सम्बन्ध का लांछन लगा दिया जाता है। बिहारी को दवाई खिलाकर पागल बना दिया जाता है। इसी बहाने राधा को बाहर निकालने के लिए पंचों को बुलाते हैं। पंच चोखेलाल की ही अंगुलियों पर नाचते हैं, फैसला देते हैं कि उसके बदचलन के कारण राधा को बिरादरी से, घर से बाहर भेज दिया जाये। किंतु राधा जैसी नारी उससे पहले ही आत्महत्या कर लेती है क्योंकि "नेक बहुओं की घर की चौखट से अर्थी ही निकलती है, पाँव नहीं।"[17]

विधवा जीवन की व्यथा का सशक्त चित्र एक और नाटक 'सुहागिन' में मिलता है।

3.1.2 सुहागिन[18]

कथावस्तु—इस नाटक की नायिका शकुन्तला इतनी ही देर की दुल्हन बनी थी कि पति के हाथों केवल उसके मुख से आँचल ही उठाया गया था। इतने में ट्रक एक्सीडेण्ट होकर उसका पति मर गया और शकुन्तला विधवा बन गयी। सास तो पहले ही असंतृप्त है क्योंकि बहू अपने मायके से बहुत भारी दहेज नहीं लायी और अब ऊपर से लड़का भी मर गया, तो अब क्या? बस वह डायन बनकर शकुन्तला को कष्ट देती रहती है। सास को शकुन्तला के प्रति ही नहीं, वरन् उसके मायके के प्रति भी इतना द्वेष है कि शकुन्तला के इकलौते भैया के लिए कहती है,—"घी के दिये जलाऊँगी जिस दिन उसकी मौत की खबर सुनूँगी।"[19]

मानसिक ही नहीं वरन् शारीरिक कष्ट भी दिये जाते हैं और बीमार पड़ जाने पर न खाने को दवाई न पीने को पानी मिलता है और ऊपर से घर का पूरा काम करना पड़ता है। इतने कष्टों को सहने पर भी वह उनके जुल्मों के प्रति आवाज नहीं उठाती और आत्महत्या कर लेती है।

दोनों नाटककारों ने विधवा के दैनिक जीवन की घटनाओं का मार्मिक वर्णन कर, उसकी स्थिति का सजीव चित्रण किया है। अबला तथा निस्सहाय होने के कारण परिवार के या बाहरी व्यक्ति उस पर अत्याचार करने का प्रयत्न करते हैं। किंतु उसका दोष न होते हुए भी विधवा को ही कोसा जाता है कि वह नीच है कलंकित है, पतित है। जैसे 'फैसला' नाटक में चमेली का भांजा रमेश है वैसे ही 'सुहागिन' नाटक में किशोर है जो शकुन्तला की ननद का प्रेमी है। ये समाज के उन व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो छुपे रूप से स्त्री के साथ आनन्द ले सकते हैं, किंतु खुलकर व्याह नहीं कर सकते। विधवा का जीवन पल-पल पर कष्टों से भरा रहता है। इसीलिए शकुन्तला कहती है, "संसार के भाग्य विधाता। तूने नारी जीवन को बहुत सुंदर बनाकर भी दूसरों के अधीन कर दिया है। नारी अपनी इच्छा से एक पल भी जिंदा नहीं रह सकती। नारी का सुख-चैन, मरण-जीवन जो कुछ भी है, उसका पति है।"[20] लाख निर्दोष होने पर भी दुनिया उसे ही कलंकिनी कहती है।

आखिर इन कष्टों का कारण क्या है? शायद उसका दोष यही है कि वह एक हिंदू विधवा है, जिसका पति मर गया किंतु वह जीवित रह गयी। "हिंदू विधवा! जिसने अत्याचार सहने सीखे हैं, उफ करनी नहीं सीखी। जिसने बदनाम होना सीखा है, बदनाम करना नहीं सीखा। जिसने समाज की चक्की में पिस जाना सीखा है, बगावत करना नहीं सीखा। जिसने परवाने की तरह जल जाना सीखा है, जलाना नहीं सीखा। आखिर यह सब किसलिए? समाज के इन झूठे ठेकेदारों की आन कायम रखने के लिए उनकी वासना का शिकार होने के लिए। हिंदू विधवा धर्म बदलकर बदला ले सकती है, वेश्या बनकर इंतकाम ले सकती है, वह भोली-भाली संन्यासिन बनकर लाखों घर उजाड़ सकती है, लेकिन वह ऐसा नहीं कर रही है इसलिए नहीं कि वह निर्बल है, बल्कि इसलिए कि उसे जाति के सम्मान का ध्यान है। आर्य जाति की शान का मोह है।[21] इसीलिए वह अपने होंठ हिलाती नहीं।

4.1.3 देवर-भाभी[22]

इस नाटक में भी विधवा बहू मनोरमा की कठिनाइयों का चित्रण है। केवल उसका देवर ही मनोरमा से सहानुभूति रखता है। मनोरमा को सास-ससुर सभी कई प्रकार के कष्ट देते हैं। ''किंतु देवर प्रदीप कुमार के कारण घर के अन्य सदस्य अपने कर्मों पर पश्चाताप करते हैं।[23]

4.2 विधवा पुनर्विवाह

विधवा जीवन की एक और समस्या उसका पुनर्विवाह है। इसमें उत्पन्न होनेवाली समस्याओं का चित्रण भी नाटकों में मिलता है जिसका उदाहरण हम एक तेलुगु नाटक 'प्रेमालयमु' से ले सकते हैं।

4.2.1 प्रेमालयमु[24]

राधा और मधु में प्रेम है किंतु मधु की अनुपस्थिति में राधा का विवाह एक बूढ़े जमींदार से इसलिए कर दिया जाता है कि राधा के पिता जमींदार का ऋण चुका नहीं सके। इसमें मधु के मामा का भी स्वार्थ है क्योंकि वे अपनी पुत्री की शादी मधु से करना चाहते हैं। किंतु राधा के दुर्भाग्यवश जमींदार की मृत्यु शादी के तुरंत बाद हो जाती है। जमींदार का पुत्र राधा की अवस्था का है। राधा निस्सहाय थी। मधु उसे कोसता है कि धन के लालच में उसने शादी के लिए स्वीकृति दे दी। जब राधा उसे अपने विश्वास की कहानी सुनाती है तो मधु उससे पुनर्विवाह करने के लिए तैयार हो जाता है। किंतु राधा को अबला होने के कारण समाज का भय है। साथ ही साथ मधु के मामा तथा जमींदार का पुत्र उस पर पहरा रखते हैं। उनके उद्देश्य में स्त्री को इतनी सारी सम्पत्ति पाकर संतुष्ट हो जाना चाहिए तथा कुल की मर्यादा की रक्षा के अपने आपको जमींदारी बंधनों में बाध लेना चाहिए। राधा सच पूछती है, ''आज मेरी इस स्थिति को क्या आप अपनी बेटी के लिए सोच भी सकते हैं? नारी तो हमेशा अपने मंगलसूत्र को इस सम्पत्ति से अधिक समझती हैं।''[25] सौतेला पुत्र उसे जब पतिता कहता है तो उसका दिल टूट जाता है और आत्महत्या का प्रयत्न करती है, किंतु बचायी जाती है। तब तक आत्मग्लानि का अनुभव कर जमींदार का पुत्र राधा तथा मधु की शादी के लिए हाथ मिला देता है। समाज में बहुत कम व्यक्ति ऐसे मिलते हैं जो सच्चे मन से उनका उद्धार करने का प्रयत्न करते हैं।

4.2.2 सन्देशमु[26]

कमला एक विधवा युवती है, जिसकी आयु केवल बीस साल है। उसके पिता धन के लालच में उसकी शादी एक बूढ़े से कर देता है जो पियक्कड़ होने के कारण शादी के कुछ ही दिनों पश्चात् मर जाता है। इसका दोष कमला को ही लगाया जाता है और उसे मनहूस घोषित कर दिया जाता है। बेचारी कमला अपने पिता के ही साथ रहने लगती है। उसके पिता ने स्वयं यह विवाह किया था किन्तु वह भी पल-पल पर कमला को खरी-

खोटी सुनाता है कि वह बदनसीब युवती है। पिता ने पुत्री के सौभाग्य से जमीन-जायदाद को अधिक महत्त्वपूर्ण समझा। केवल कमला के बाबा को उसकी इस स्थिति पर दया आती है। कमला के मामा शंकर एक समाज सेवी हैं। शंकर के समझाने पर बाबा कमला के पुनर्विवाह के लिए राजी हो जाते हैं। किन्तु पिता नहीं राजी होते। वे कमला को पति के कारण मिली हुई जमीन जायदाद देख खुश होने का उपदेश देते हैं। इस प्रकार कमला का जीवन जो उसी समय नष्ट हो गया था जबकि उसे ज्ञान ही नहीं था और व्यर्थ ही बना रहता है। शंकर से मन-ही-मन वह प्रेम करती है। किन्तु उसकी ब्रह्मचर्य व्रत के कारण विवाह सम्भव नहीं। उससे प्रभावित होकर अपनी सम्पत्ति समाज सेवा के लिए उपयोग करने का प्रण लेती है और शंकर के मार्ग में चलने का निश्चय करती है।

4.3 सन्तानवती विधवा

अपने आपको पति के मरने के पश्चात् अकेली पाकर नारी घबरा जाती है और किसी एक सहारे की आवश्यकता अनुभव करती है। अपने बच्चों के साथ दूसरे घर में रहना उसके लिए मजबूरी हो जाती है। किन्तु पल-पल पर वह घुटन अनुभव करती है। क्योंकि वह घर मायका ही क्यों न हो, किन्तु विवाह के पश्चात् पराया ही है। हर समय उसे परिवार के व्यक्ति चाहे ससुराल के हों, चाहे मायके के यह याद दिलाते हैं कि उसका जीवन दूसरों पर निर्भर है। इस अस्वतन्त्र जीवन में न अपने बच्चों की खुशियाँ पूरी कर सकती है न स्वयं कुछ निर्णय ले सकती है। चारों ओर से बन्धन-ही-बन्धन लगाये जाते हैं।

4.3.1 खँडहर[27]

इस नाटक में बच्चोंवाली विधवा की समस्याओं का चित्रण मिलता है। रजनी 30-35 साल की अवस्था में ही अपने पति को खोकर बब्बू तथा छोनी (पुत्र और पुत्री) के साथ अपने जेठ के घर आ जाती है। "बिजली गिर पड़ी थी उस आधार पर जिससे लिपट वह जीवन की अँगड़ाई में झूम रही थी।...और वह मुरझाई-सी इन बिखरी हुई दो कलियों को समेटे जीवन की काली आँधियों के भय से काँपती-सी, जाने कौन-सी आशा के बल, किसी दिन का बाट जोह रही है।"[28] उसके जेठ-जिठानी यद्यपि उसे ठीक ही देखते हैं किन्तु पल-पल पर झिझक ही अनुभव करती है क्योंकि वहाँ उसे किसी बात की स्वतन्त्रता नहीं। पल-पल पर याद दिलाया जाता है कि वह दूसरों की दया पर जी रही है। "वैसे आजकल के जमाने में कौन पूछे हैं किसी को? हमने घर की लाज रखने को तुम्हें यहाँ रखा। अपने बच्चों का पेट काटकर तुम्हारे बच्चों का भर रहे हैं।"[29] वह अपने बच्चों के मनोरंजन के लिए कुछ पैसे खर्च नहीं कर सकती है— "बेचारे लल्ला के खून-पसीने की कमाई सिनेमा थियेटर में गँवा दोगी तो आड़े-गाढ़े कौन काम आयेगा?"[30] इस स्थिति में उसके मनोरंजन की बात तो कोसों मील दूर है। जब उनके दोस्त कर्नल साहब सिनेमा जाने को कहते हैं तो वह ऐसा घबरा जाती है मानो किसी का खून करने कर दिया है। वास्तव में, "समाज के नियमों का, हमारे आदर्शों का, कुल की लाज का...बहुत से खून कर्नल साहब।"[31] दिन-ब-दिन घर में उनकी स्थिति गिरती जाती है। इतना कि आखिर नौकर भी बात कहने लगते

हैं। इन परिस्थितियों में कर्नल साहब उसे सलाह देते हैं कि "तुम नौकरी ढूँढ़ लो, क्योंकि घर में ये रोज-रोज के छोटे-छोटे किस्से तुम लोगों के बीच एक ऐसी भयंकर खाई बना देंगे जिसे पार करना तुम दोनों के लिए असम्भव हो।"[32]

थोड़े दिनों के बाद रजनी को नौकरी ढूँढ़कर अलग रहना ही पड़ता है। बच्चे बड़े हो गये। दुनियावालों को उनके घर राजू जो बचपन से उन्हें जानता है तथा कर्नल का आना पसन्द नहीं और वे व्यंग्य करते हैं। राजू छोनी से विवाह करने को तैयार है। दो साल बाद बब्बू पढ़ने के लिए होस्टल चला जाता है, छोनी तथा राजू अपना घर अलग बसा लेते हैं। अब रजनी अकेली है। उसके आँखों में हमेशा भय दिखायी देता है। इसी कारण वह 35 साल की उम्र में ही शिथिल-सी दिखायी देती है। हमेशा वह एकान्त में ही रहना पसन्द करती है क्योंकि, "मेरे लिए सब जगह आँखें होती हैं।···मुझे कहीं जाना अच्छा नहीं लगता···ऐसा लगता है सब मेरी ओर घूर रहे हैं। उँगली उठा रहे हैं। मुझे अच्छा नहीं लगता।"[33] दुनियावाले उस पर व कर्नल पर कीचड़ उछालते हैं। इसलिए वह बब्बू को भी अपने पास बुलाने की हिम्मत नहीं कर सकती। कर्नल उसे सलाह देते हैं कि समाज अब विधवा विवाह के विरुद्ध नहीं है इसलिए हमसे शादी कर लो। किन्तु रजनी पन्द्रह साल के अपने सुख, सन्तोष को भूलकर शादी नहीं कर सकती। दुनिया के लिए झूठा ढोंग रचा नहीं सकती। कर्नल साहब से जो स्नेह का नाता जोड़ा है उसे दुनिया जान नहीं सकती। किन्तु वह उनसे शादी अपने लिए ही नहीं वरन् बच्चों के लिए भी नहीं कर सकती। "मेरे बच्चे अपने पिता के नाम से सम्बोधित हों और मैं उनकी माँ, दूसरे नाम से"[34] सम्भव नहीं। उसकी स्थिति अब ऐसी है कि न वह अकेली रह सकती है न दुनिया के लाँछन को सह सकती है। "कोई सुन्दर विशाल भवन होता तो इन लोगों की बातों से डरता कि कहीं गिर न पड़े। पर मैं तो एक खँडहर हूँ। इस खँडहर को कितना भी गिरायेंगे तो भी खँडहर ही रहेगा।"[35]

विधवा नारी की स्थिति इतनी दयनीय रहती है कि उसके हर कदम पर दुनिया की कड़ी नजर रहती है। वह जी खोलकर हँस भी नहीं सकती। "जरा-सी हँसी का कितना मूल्य चुकाना पड़ा। उन लोगों के लिए जरा-सी बात थी, जरा-सा मजा···अब अपने घर जा अपने-अपने काम में लगेंगे, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। और यहाँ वह हँसी रात-भर आँसुओं में तुलेगी।···आँसू बढ़ते जावेंगे पर उस हँसी का भार न घटेगा।···कितनी निर्दयी, कितनी स्वार्थी, कितनी नीच है यह दुनिया।"[36]

इस प्रकार खँडहर नाटक एक ससन्तान विधवा की करुण कहानी का यथार्थ मार्मिक चित्र प्रस्तुत करता है। लेखिका मानवीय चरित्रों के सहज चित्रण में सफल रही है। रजनी एक अविस्मरणीय पात्र है।

4.4 बाल विवाह की समस्या

'हिन्दू विधवा'[37] नाटक में बाल विधवा की समस्या का चित्रण किया गया है। विधवा कमला परिस्थितियों के कारण वेश्या बन जाती है अपनी कहानी इस प्रकार कहती है—
"मैं एक दरिद्र हिन्दू की लड़की हूँ। पाँच वर्ष की उम्र में मेरा विवाह हुआ। 6 मास के

उपरान्त पति स्वर्गलोक सिधार गये। समाज ने मुझे पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं दी। मैं दरबदर ठोकरें खाती फिरी। मेरे गाँव के जमींदार के लड़के ने मुझे कलकत्ते में रखा।

गाना-बजाना, पढ़ना-लिखना सिखाया। जब यह लड़की सरस्वती पैदा हुई तो निराधार छोड़कर चला गया।...मैंने पुत्री से सबकुछ छिपाने के लिए ही उसे बोर्डिंग हाउस में रखा था।"[38]

समकालीन नाटकों में ही नहीं वरन् साहित्य के सभी क्षेत्रों में विधवाओं की सभी समस्याओं का चित्रण किया जा रहा है, जिनमें से ऊपर कुछ का उल्लेख किया गया है।

'अलका' उपन्यास में निरालाजी विधवा के बारे में सच कहते हैं—"क्या विधवा जैसी दुखी विधाता की दूसरी भी सृष्टि होगी? जो सखियों में भी खुले प्राणों बातचीत नहीं कर सकती। भोग सुख वाले संसार के बीच में रहकर भी भोग सुख से जिसे विरत रहना पड़ता है, आँख के रहते भी जिसे चिरकाल तक दृष्टिहीन होकर रहना पड़ता है।"[39]

विधवा को अपने कष्टों के प्रति रोना भी मना है क्योंकि परिवार के अन्य सदस्य उसे अशुभ मानते हैं।

शायद इन कठिनाइयों के कारण ही भारत की हर नारी अपने पति से पहले सुहागन के रूप में मर जाना चाहती है क्योंकि विधवा का जीवन बिताना पल-पल पर मरना ही है।

सन्दर्भ-संकेत

1. दि हिन्दू वूमेन—मार्गरेट कारमाक, पृ० 164
2. भारतीय सामाजिक संरचना और संस्कृति—शम्भुरत्न त्रिपाठी, पृ० 86
3. हिन्दू सामाजिक संस्थायें—शिवस्वरूप सहाय, पृ० 126
4. वही, पृ० 181
5. वूमेन इन मनु एण्ड हिज सेवेन कमेंटेटर्स—आर० एम० दास, पृ० 221
6. वही, पृ० 221
7. शृंखला की कड़ियाँ—श्रीमती महादेवी वर्मा, पृ० 37
8. भारतीय सामाजिक संरचना और संस्कृति—शंभुरत्न त्रिपाठी, पृ०88
9. वही, पृ०89
10. विस्तार के लिए देखिये—अवर काज—(संकलन कर्ता—श्यामकुमारी नेहरू) पृ०272
11. वूमैन इन मनु एण्ड हिज सेवेन कमेंटेटर्स—आर०एम० दास, पृ० 223
12. मनुस्मृति, 5-162

13. वूमैन इन मनु एण्ड हिज सेवेन कमेंटेटर्स—आर०एम० दास, पृ० 226
14. वूमैन इन मनु हिज सेवेन कमेंटेटर्स के आधार पर
15. नाटककार रमेश मेहता
16. फैसला—नाटककार—मेहता, पृ० 8
17. वही, पृ० 67
18. नाटककार—जगदीश शर्मा
19. सुहागिन—जगदीश शर्मा, पृ० 33
20. वही, पृ० 22
21. फैसला—रमेश मेहता, पृ० 64
22. नाटककार—बौआजा चौधरी मस्ताना
23. हिंदी नाटक कोश —डा० दशरथ ओझा के आधार पर, पृ०229
24. नाटककार—मद्दिनेनि राधाकृष्णमूर्ति (तेलगु नाटक)
25. प्रेमालयमु—तेलुगु नाटक—नाटककार—मद्दिनेनि राधाकृष्ण मूर्ति, पृ० 44-45
26. नाटककार—के० वी० प्रसाद राव (तेलुगु नाटक)
27. नाटककार—विमला रैना
28. नाटककार—विमला रैना—खंडहर, पृ० 62
29. वही, पृ० 71
30. वही
31. वही, पृ० 77
32. वही, पृ० 112
33. वही, पृ० 136
34. वही, पृ० 139
35. वही, पृ० 140
36. वही, पृ० 129
37. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक
38. हिन्दी नाटक कोश—डा० दशरथ ओझा, पृ० 649 से उद्धृत
39. छायावादी कवियों की नारी भावना—प्रतिभा गर्ग, पृ० 543 से उद्धृत

पंचम अध्याय

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटकों में वेश्या की समस्याएँ

संसार में वेश्यावृत्ति एक प्राचीनतम व्यवसाय है। वेश्याओं का उल्लेख ऋग्वेद से लेकर महाभारत, अर्थशास्त्र, मेघ सन्देश, जातक कथाएँ आदि ग्रन्थों में मिलता है। मनुस्मृति में इसका तीव्र खण्डन दिखायी देता है।[1] इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत में भी वेश्यावृत्ति अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है।

वेश्या शब्द का अर्थ : "वेश्या शब्द से साधारणतया अभिप्राय उन स्त्रियों से है जिनका उपयोग पैसा देकर स्वच्छन्दतापूर्वक कोई भी व्यक्ति कर सके। इसी प्रकार ऋग्वेद में 'विश' शब्द का प्रयोग विभिन्न स्थलों पर किया गया है।···वेश्या शब्द जिसका अभिप्राय सार्वजनिक स्त्री से है अवश्य ही 'विश' से बना होगा।"[2]

यद्यपि वेश्यावृत्ति समाज के लिए अभिशाप स्वरूप अवश्य है किन्तु वह सामाजिक तिरस्कार का ही तो परिणाम है। पुरुष की वासना की वेदी पर घोरतम बलिदान देनेवाली नारियों को समाज ने 'वेश्या' का घृणित सम्बोधन दिया। "पुरुष की बर्बरता, रक्त-लोलुपता पर बलि होनेवाले युद्धवीरों के चाहे स्मारक बनाये जायें, पुरुष की अधिकार भावना को अक्षुण्य रखने के लिए प्रज्जवलित चिता पर क्षण-भर में जल मिटनेवाली नारियों के नाम चाहे इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित रह सकें, परन्तु पुरुष की कभी न बुझनेवाली वासनाग्नि में हँसते-हँसते अपने जीवन को तिल-तिल जलानेवाली इन रमणियों को मनुष्य जाति ने कभी दो बूंद आँसू पाने का अधिकारी भी नहीं समझा।"[3]

देवदासियों की प्रथा आन्ध्र प्रदेश में अधिक मिलती है जो समाज में युगों से चली आ रही है। किसी कारणवश लड़कियों को मन्दिरों में समर्पित किया जाता है और जन्म-भर कुँआरी रहने का बन्धन उनके लिए रहता है। मन्दिर में नाच-गान से अपना जीवन निर्वाह करती हैं। यह प्रथा वंशानुक्रम के आधार पर चलती है। कभी-कभी ये देवदासियाँ स्वयं छोटी-छोटी लड़कियों को गोद लेकर उन्हें भी इसी वृत्ति में रख लेती हैं।

अगर हम थोड़ा-सा परिशीलन करें तो पता चले कि इस समाज में एक स्त्री के वेश्या बनने के पीछे कई कारण छिपे रहते हैं जो यह समाज जानने का प्रयत्न नहीं करता।

निर्धनता एवं दरिद्रता बड़ी हद तक वेश्यावृत्ति के लिए उत्तरदायी मानी गयी है। यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह है कि गरीबी स्वयं किसी पाप या अपराध का कारण नहीं है।[4] गरीबी के साथ कुछ सामाजिक स्थितियाँ तथा संस्कार एवं रूढ़ियाँ हैं जो अन्त में इस प्रकार की वृत्ति के लिए विवश करती हैं। उदाहरणार्थ—

ये युवतियाँ अधिकतर निम्न मध्यमवर्गीय तथा श्रमिक वर्गीय परिवारों से आती हैं जहाँ के व्यक्तियों से पढ़ाई बहुत दूर पर रहती है। पियक्कड़ पति से रोज मारपीट खाना पत्नी के लिए साधारण-सी बात है। जब घर के बड़े लोग काम पर चले जाते हैं तो परिवार की ये छोटी-छोटी लड़कियाँ रास्ता भटक जाती हैं। श्रीमती पार्वती अय्यपन का ऐसा मत है।[5]

कभी-कभी परिवार का पोषण करने के लिए जबकि अन्य किसी भी प्रकार से जीवन नहीं चला सकतीं तो यह वृत्ति अपनाने के लिए मजबूर हो जाती हैं।

अबला नारी पर परिवार के ही व्यक्ति या बाहर के व्यक्तियों के अत्याचार के कारण, कभी-कभी उसका पतन प्रारम्भ हो जाता है। बाहर जाकर रोटी कमानेवाली स्त्रियों की समाज में सुरक्षा अभी भी कम ही है। कभी-कभी समाज के कुछ व्यक्ति स्त्रियों को बहकाकर इस जाल में लाकर छोड़ देते हैं। जब एक बार पतन प्रारम्भ होता है तो जीवन काटने के लिए उनके लिए वही एक पेशा रह जाता है।

वेश्यावृत्ति अपनाने का कारण बहुधा परिस्थितियों और मजबूरियों की जटिलता होती है। युवतियाँ न चाहते हुए भी इस पेशे में बँध जाती हैं।

"भारतीय पर्यवेक्षण समिति का मत है कि फिल्म संसार में काम करनेवाली तरुणियों और उनमें भी विशेष कर नवीन अभिनेत्रियों को अनैतिकता का शिकार बहुधा होना पड़ता है।"[6] इसका एक कारण यह है कि इस व्यवसाय में काम करने के लिए कोई निश्चित समय या अवधि नहीं होती।

"वे युवतियाँ जिनके पति किसी भी प्रकार स्वर्गवासी हो जाते हैं सबकी घृणा की पात्र बनती हैं। एक ओर तो वही समाज उनके एक-एक क्रियाकलाप पर अँगुली उठाता है और दूसरी ओर वही समाज उन्हें घृणित से घृणित कुकृत्य करने को मजबूर करता है। अस्तु किसी भी प्रकार एक बार अनैतिकता का शिकार बन जाने पर विधवा के लिए जीवित रहने का केवल एक ही अवलम्ब रह जाता है और वह है वेश्यावृत्ति।"[7]

"कामवासना से प्रेमियों के पाश में पड़कर कुछ स्त्रियाँ कुमार्ग पर उतर जाती थीं और पीछे उन्हें वेश्यावृत्ति अपनानी पड़ती थी।"[8]

अतः हम यह कह सकते हैं कि वेश्यावृत्ति का आवश्यक कारण आर्थिक होने के साथ-साथ सामाजिक, नैतिक एवं वैयक्तिक भी है।

इस पेशे में रहनेवाली स्त्रियों को अत्यन्त दुर्भर जीवन बिताना पड़ता है। वे समाज की दृष्टि में पतित, पल-पल पर निन्दा सहते हुए, शोषण का शिकार बनते हुए काँटों के मार्ग पर चलती रहती हैं। वे सामाजिक रूप से ही नहीं वरन् आर्थिक रूप से भी गिरी हुई रहती हैं। एक वेश्या अपने दुखी जीवन की कथा इस प्रकार कहती है—"मेरी जैसी स्त्रियों के सदा हँसते रहने के कारण लोग यह समझते हैं कि हम खुश हैं। लेकिन सत्य यह है कि

हसना ही हमारी वृत्ति है और उसी के लिए हमें पैसे भी दिये जाते हैं ।...कुछ पुरुष मारते हैं और कुछ नाना प्रकार से कष्ट देते हैं । हमारे लिए मित्र कोई नहीं होते । हमारे प्रति सहानुभूति किसी को नहीं होती । सब हमारे शोषण करने ही वाले होते हैं । एक बार पतन प्रारम्भ हुआ तो, वह रोका नहीं जा सकता । अकेली नारी का जीवन संसार के लिए एक खिलौना है ।"[9] कितनी सत्यता है इन शब्दों में ।

इस पेशे में रहनेवाली स्त्रियों को समाज के व्यक्ति सिर्फ एक खिलौना ही समझते हैं, जिसे अपनी इच्छा के अनुसार कुछ पैसे फेंककर अपनी अँगुलियों पर नचाया जा सकता है । वे यह भूल जाते हैं कि इन स्त्रियों में भी वही रक्त, वही हाड़-मांस रहता है ।

एक प्रमुख समस्या जो इन वेश्याओं के सामने आती है, वह उनके सन्तान से सम्बन्धित है । जब समाज में माँ का ही स्थान गिरा हुआ है तो अब उसकी लड़की का क्या होगा ? बहुधा यही होता है कि समाज में तिरस्कृत रहने के कारण उनकी सन्तान भी उसी पेशे को अनिवार्य रूप से अपना लेती है। समाज के व्यक्ति अपनी वासना-पूर्ति के लिए छिपे रूप से इनके पास जाने के लिए तैयार रहते हैं किन्तु प्रकट रूप से उनसे शादी-ब्याह करने के लिए नहीं । एक हजार में एक व्यक्ति अगर इनके उद्धार के लिए इनसे शादी करने के लिए तैयार भी हो तो समाज के अन्य व्यक्ति यथाशक्ति प्रोत्साहन के स्थान पर विघ्न डालते हैं । उस व्यक्ति को भी समाज से, बिरादरी से बाहर किया जाता है । इसीलिए बहुधा होता यह है कि कोई भी व्यक्ति इस ओर साहस भी नहीं करता । गाँधीजी के शब्दों में, "इस वर्ग के व्यक्तियों के चेष्टा करने पर भी उच्च वर्ग के व्यक्ति इन्हें ऊपर उठने में सहायता नहीं करते ।"[10]

पिछली शताब्दी में विवाह तथा अन्य सामाजिक सम्मेलनों में देवदासियों का नृत्य अनिवार्य हो गया था । समाज के कई गणनीय व्यक्ति रखैलों का पोषण करने लगे थे । अन्य आन्दोलनों के साथ इसे भी मिटाने का भरसक प्रयत्न समाज सुधारकों ने किया था । साहित्यकारों ने अपनी लेखिनी उठाकर वेश्याओं की समस्याओं का तथा इस प्रथा से हानि का चित्रण किया । कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् पन्तुलु, गुरजाड़ अप्पाराव आदि उस शताब्दी के प्रमुख व्यक्ति थे ।

इस वेश्यावृत्ति के निर्मूलन के लिए सरकार की ओर से कई प्रकार से प्रयत्न किये जा रहे हैं किन्तु यहाँ विचारणीय बात यह है कि इस विशृंखलता का ऊपरी शासनों से कुछ सीमा तक ही निर्मूलन किया जा सकता है । सर्वप्रथम मनुष्य को अपने मन से यह भाव मिटाने का प्रयत्न करना है । तभी इन वेश्याओं के जीवन में सुधार लाया जा सकता है ।

स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य में भी वेश्याओं की समस्याओं का चित्रण गहराई से किया गया । हिन्दी तथा तेलुगु दोनों भाषाओं के नाटक इसके अपवाद नहीं हैं । वेश्याओं के जीवन से सम्बन्धित कई नाटक मिलते हैं जिनमें विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया गया है । जैसे—

समस्या	हिन्दी नाटक	तेलुगु नाटक
1. वेश्या बनने के कारण	1. कलंक या वेश्या	1. निर्मला
	2. सती वेश्या अथवा समाज की भूल	2. रक्त तूफान
	3. समाज की चिनगारी	3. आरदुकन्नीरू
2. वेश्या सन्तान	ज्वार-भाटा	—
3. वेश्याओं के उद्धार में आनेवाले विघ्न	—	1. पुनर्जन्म
	—	2. सन्देशमु
		3. एदुरीता
4. वेश्याओं की समाज में दशा	—	हन्तकुलेवरू
5. देवदासी की समस्या	—	मनोरमा

5.1 वेश्या बनने के कारण

कोई भी युवती जान-बूझकर इस कीचड़ में फँसना पसन्द नहीं करती। फिर भी परिस्थितियाँ उसे पतित बना देती हैं। इसके उदाहरण निम्न नाटकों में प्राप्त हैं।

5.1.1 कलंक या वेश्या[11]

राधा नामक मातृविहीन युवती के पिता धन के लालच में उसकी शादी एक बूढ़े व्यक्ति से निश्चित कर देते हैं। लालची पिता या शराबी भाई उसके आँसुओं को या सिसकियों को समझने का प्रयत्न नहीं करते तो वह घर से आत्महत्या के प्रयत्न में निकल जाती है। किन्तु उसे एक स्त्री बचाकर अपनी कोठरी में ले जाती है। वह स्त्री वेश्याओं को बनाती है। अब राधा न घर जा सकती है और न यह पेशा ही अपना सकती है किन्तु मजबूरी से उसे वेश्यावृत्ति को अपनाना पड़ता है। समाज की दृष्टि में उसका पतन हो गया है। वह गिर गयी है। किन्तु इसका कारण क्या है? "मर्दों के हजार गुनाहों का नाम वेश्या है।"[12]

वहाँ आनेवाले ग्राहकों के लिए एक खूबसूरत औरत चाहिए जिस पर वे हजारों रुपये खर्च करने के लिए तैयार हो जाते हैं किन्तु यह भूल जाते हैं—"औरत सिर्फ औरत नहीं, माँ-बहन और बेटी भी है। लेकिन आप औरत को सिर्फ खिलौना समझते हैं। आप औरत की अस्मत से खिलवाड़ करते हैं।"[13]

राधा का शराबी भाई एक दिन उस कोठी में आकर अपनी बहन को इस रूप में देखकर लज्जित होता है। इससे पहले जिसने कभी भी अपनी बहन की सुध न ली थी, उसे अब अचाकन अपनी—खानदान की इज्जत की रक्षा, अपनी बड़प्पन की रक्षा आवश्यक जान पड़ती है। अतः इस गिरे हुए रूप में जीनेवाली राधा की हत्या करने के लिए तैयार

हो जाता है। इसी समय शराब के नशे में चूर पिता ही अपनी बेटी पर नोटों का बार-फेर कर उसका पल्ला पकड़ता है। यह स्थिति अत्यन्त असहनीय होने के कारण राधा स्वयं ऊब कर आत्महत्या कर लेती है और इस प्रकार वह इन सारे कलंकों से छुटकारा पा लेती है। राधा सच कहती है कि वेश्या, "मर्द जात के माथे पर जबरदस्त कलंक है। वेश्या कौम के माथे पर कलंक है। वेश्या देश के माथे पर कलंक है।"[14]

कभी-कभी अबला नारी का परिवार के ही व्यक्ति के कारण पतन प्रारम्भ होता है। जैसे समाज के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति उसे अपने जाल में फँसा लेते हैं। इसका उदाहरण निम्नलिखित नाटक है—

5.1.2 समाज की चिनगारी[15]

धनिक वर्ग गरीबों की विवशता का लाभ उठा उनकी मान-मर्यादा से खुलकर खेलता है। स्वजनों से बिछुड़ी निर्मला को सेठ अपनी काम-वासना का शिकार बनाता है, इसी से वह अपने अवैध नवजात शिशु को गंगा की लहरों को सौंपने के लिए अपने वृद्ध संरक्षक को दे देती है। उसका बचपन का बिछड़ा भाई शेखर अपने मित्रों की सहायता से वेश्या-उद्धार आन्दोलन चला कर इस अभिशाप से नारी जाति को मुक्त करना चाहता है। अन्त में अपनी बहन को पहचान कर उसका विवाह करने में सफल हो जाता है।"[16]

इस नाटक में समस्या के साथ-साथ समाधान को भी प्रस्तुत किया गया है।

5.1.3 रक्त तूफान[17] —इस नाटक में भी इसी समस्या का चित्रण है। गौरी तथा शंकर एक दूसरे के प्रेमी हैं। किन्तु गौरी के पिता धन के लालच में उसकी शादी भूषय्या से कर देता है, जो गौरी का मामा है। बूढ़े भूषय्या को अपनी नवविवाहिता युवा पत्नी के प्रति मन में सन्देह होने लगता है। इस कारण वह उसे पल-पल शारीरिक तथा मानसिक कष्ट देने लगता है। न वह जी सकती है न मर सकती है। इस स्थिति से ऊबकर वह आत्म-हत्या करने चली जाती है। किन्तु दुर्भाग्यवश बचकर एक ऐसे व्यक्ति के जाल में पड़ जाती है जो युवतियों के शरीर से व्यापार करता है। उस फन्दे में इस प्रकार बँध जाती है कि बाहर निकलना उसके लिए असम्भव हो जाता है। अब उसका नाम मन्जु है। "इस समाज में जो जी नहीं सकती है, जो पति के साथ अपना जीवन नहीं बिता सकती है, अथवा धन कमाने के लिए या स्वतन्त्रता पाने के लिए जो स्त्री अपने घर से बाहर निकलती है, उसकी स्थिति ऐसी ही रहती है।"[18] धन की लालच में पिता तथा शंका के कारण पति उसके पतन के कारण बनते हैं। अन्त में वह आत्महत्या कर लेती है।

5.1.4 निर्मला[19]—इसमें 'रेणुका' की कहानी है जो परिस्थितियों के कारण वेश्या बनी फिर भी उसकी आत्मा पवित्र रहती है। रेणुका के लिए घर एक नरक है, जहाँ से मुक्ति पाने के लिए विश्वम् नामक युवक के साथ बाहर कदम रखती है। दोनों को एक दूसरे के प्रति प्रेम है और विवाह भी करना चाहते हैं किन्तु दिन काटने के लिए धन नहीं। एक दिन अस्वस्थता के कारण विश्वम् को अस्पताल जाना पड़ा तो रेणुका अकेली रह गयी। चारों ओर से उस इलाके के रईस व्यक्ति घेर लेते हैं। अवसर पाकर वे उसे सहायता करने के बहाने मीठे-मीठे वचनों से अपने वश में कर लेते हैं। अगर वह उनके वश में नहीं रहती

है तो उसे ऋण चुकाना पड़ेगा जिसके लिए उसके पास धन नहीं होता है। इतना ही नहीं, "उनकी बात नहीं सुनेगी तो ये व्यक्ति सहायता नहीं करेंगे। विश्वम् अस्पताल से वापस नहीं लौटेगा और उसे वहाँ और तुम्हें (रेणुका) यहाँ भूखों मरना पड़ेगा। इतना ही नहीं, तुम्हें समाज में निन्दा भी सहनी पड़ेगी।"[20] ये ही व्यक्ति नहीं आखिर अस्पताल का डाक्टर भी उसे चाहने के ही कारण विश्वम् का इलाज करने के लिए तैयार होता है। विश्वम् घर लौटकर स्थिति देख कुपित होता है और रेणुका की निन्दा करता है कि—मुझे अस्पताल गये देख तुम इस प्रकार धन कमाकर कुलटा बन गयी हो। वह अपनी सफाई देती है—"तुम्हारे अस्पताल को जाते ही यहाँ के व्यक्तियों ने मुझे घेर लिया क्योंकि मैं अकेली थी। वे धमकी देने लगे कि अगर उनके इशारे पर मैं नहीं चलूँगी तो मुझे समाज में बदनाम कर देंगे। इसीलिए अन्य कोई मार्ग नहीं होने के कारण मुझे शरीर उन्हें सौंपना पड़ा···किन्तु मेरा मन सिर्फ तुम्हारे प्रति ही समर्पित है।"[21] किन्तु विश्वम् अनसुनी कर चला जाता है तथा व्यभिचार करने का आरोप लगाकर पुलिस को बुलवाता है। उस समय जो रेणुका की इस स्थिति के कारण बने, वे सभी मुँह मोड़ लेते हैं। सिर्फ राजा राव नाम का युवक रेणुका को अपनी पत्नी घोषित कर पुलिस को बाहर भेज देता है। उन दोनों की शादी भगवान के सामने हो जाती है। सब रईस व्यक्ति मिलकर राजाराव पर खून करने का अभियोग लगाते हैं जिसके कारण वह जेल जाता है। रेणुका फिर अकेली रह जाती है। तब तक विश्वम् सच्चाई को जान, उससे शादी करना चाहता है किन्तु रेणुका ठुकरा देती है। रेणुका समाज के व्यक्तियों के सामने एक महत्वपूर्ण सत्य बताती है—"तुम्हारे ही कारण मैं इस प्रकार पतित बन गयी। यद्यपि यह जानते हुए कि यह बुरा है, फिर भी तुम यही चाहते हो कि आज मैं और कल मेरे बच्चे भी इसी प्रकार जियें। हमारे चाहने पर भी आप हमारा उद्धार नहीं होने देते।"[22] अगर इनका उद्धार हो जाये तो समाज के इन व्यक्तियों की वासनाओं की पूर्ति कैसे हो? इसीलिए वे यथासम्भव अवरोध लगाने के प्रयत्न करते हैं।

5.1.5 आरदुकन्नीरु[23]

लता कुमार से प्रेम करती है, जो एक धनवान का बेटा है। कुमार अपने माता-पिता से डरने के कारण लता से शादी नहीं करता और विचित्र स्थिति में लता का विवाह कुमार के घनिष्ट मित्र रवि से होता है, जो बेरोजगार है। अतः वह सम्पूर्ण रूप से कुमार पर ही निर्भर है। एक दिन वह नौकरी ढूंढ़ने के लिए दूसरे शहर में जाता है किन्तु वहाँ उसे गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया जाता है। अब कुमार के मन में स्वार्थ उत्पन्न हो जाता है। रवि को छुड़ाने के बदले वह लता के शरीर को चाहता है। एक बार पतित होने के कारण लता अपने पति से मिलना पसन्द नहीं कर, वहाँ से चली जाती है और अब वेश्या बनकर जीवन काटने लगती है। अचानक वहाँ कुमार तथा रवि का मिलन होता है। किन्तु दोनों की हत्या हो जाती है। लता का मालिक उसे धमकी देता है कि इस कोठरी में जो हुआ उसकी जानकारी किसी को देने से तुम्हारे प्राण नहीं बचेंगे। लता को इसलिए गिरफ्तार नहीं करवाया जाता कि उसके रहने से ही धन कमाया जा सकता है। इस प्रकार

एक युवती का जीवन पतन हो जाता है ।

5.1.6 **सती वेश्या अथवा समाज की भूल**[24]—इस नाटक में भी परिस्थितियों के कारण वेश्या बन जाने का चित्रण है । धन के लालच में पिता लड़की को एक सेठ के हाथ बेच देता है । जिससे पीछा छुड़ाने के प्रयत्न में वह एक वेश्या के हाथों में फंस जाती है ।

5.2 वेश्या सन्तान

जब एक स्त्री स्वयं गिरी हुई स्थिति में है तो उसकी सन्तान की दशा क्या होगी ? एक वेश्या की पुत्री होने के कारण उसे सभ्य समाज में स्थान नहीं मिलता । सुश्री महादेवी वर्मा के शब्दों में—"जिस समाज ने एक बार कुलवधुओं की पंक्ति के बाहर खड़ा कर दिया उसे जन्म-जन्मान्तर तक अपनी सभी भावी पीढ़ियों के साथ बाहर खड़े रहने को ही जीवन का सबसे बड़ा वरदान समझना चाहिए ।"[25] नाटककारों का भी ध्यान इस समस्या की ओर गया है ।

5.2.1 **ज्वारभाटा**[26]—इस हिन्दी नाटक में एक ऐसी बदनसीब लड़की की कहानी है जिसके माँ द्वार पर समाज के सफेदपोश रात के अँधेरे में···सिजदा करते हैं और सुबह की रोशनी में जिसका नाम सुनकर नफरत से मुँह मोड़ लेते हैं ।

रमा नामक वेश्या की लड़की नीलिमा को बंकिम नाम का समाज-सुधारक अपने संरक्षण में ले लेता है । इससे बंकिम के ऊपर उच्च वर्ग के लोग कीचड़ उछालते हैं और उस पर वेश्या को रखने का आक्षेप करते हैं । नीलिमा के विवाह की तैयारियाँ होते समय महाजन कुड़की लेकर आता है । समाज में कितने ही ऐसे व्यक्ति हैं जो इस प्रकार के कार्यों में विघ्न डालने की ताक में रहते हैं । जिस लड़के से शादी तय की गयी थी, उसको भी बहकाने के प्रयत्न किये जाते हैं । आखिर ये सब विघ्न क्यों ? क्योंकि नीलिमा एक वेश्या पुत्री है । सभ्य समाज के इन्हीं सफेदपोशों के सामने नाटककार ने रमा द्वारा यह प्रश्न उठाया है कि क्या माँ होने के नाते भी वेश्या को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह समाज के कोढ़ से बचने के लिए अपनी पुत्री को किसी भले आदमी को सौंप दे ? यह एक अत्यन्त अर्थपूर्ण एवं मार्मिक प्रश्न है, जिसमें समाज की अनुदार वृत्ति पर तीखा प्रहार है । वास्तव में यह एक विचारणीय प्रश्न है । एक वेश्या भी माँ होती है ? इसी के साथ-साथ यह भी प्रश्न उठता है कि वेश्या पुत्री के लिए वेश्या बनना अनिवार्य है ?

"पर सचाई तो यह है कि यदि वेश्याएँ माँ हो जायेंगी तो समाज के उस कामुक भोगी अंग की मांसल भूख कौन मिटायेगा ? यह सामाजिक विडम्बना है, उसे वेश्याओं की आवश्यकता है । अतः वह वेश्याओं को जन्म देगा । उन्हें पाप-गर्त में गिरायेगा तथा उद्धार के नाम पर नाक भी सिकोड़े, संस्कार और कुल मर्यादा के नाम पर मुँह फेर कर चल देगा ।"[27] इसका अर्थ यह हुआ कि वेश्याओं का अस्तित्व समाज का एक आवश्यक कलंक है ।

नाटककार ने नाटक के अन्त में एक सुधारवादी मोड़ दिया है—वर के पिता यह जानते हुए भी कि नीलिमा एक वेश्या की पुत्री है उसे अपनी वधु के रूप में स्वीकार कर लेते हैं । इस प्रकार सुधार की भावना का संकेत नाटक को सुखान्त कर देता है ।

नाटक अपने उद्देश्य में सफल है। एक समस्या का चित्रण व निराकरण का मार्ग बता नाटककार ने अपने साहित्यिक एवं सामाजिक दायित्व का सुन्दर निर्वाह किया है।

5.3 वेश्याओं के उद्धार में आनेवाले विघ्न

प्राचीनकाल से वेश्याओं के समाज के अन्य व्यक्तियों ने सम्बन्ध काटे हुए हैं। यद्यपि समाज के व्यक्ति उनके पास रात के अँधेरे में जाकर अपनी वासनाओं की पूर्ति कर लेते हैं, किन्तु दिन की रोशनी में उनसे मुँह फेर लेते हैं। उस वर्ग के अस्तित्व का उद्देश्य ही है केवल पैसों को लेकर इनके सामने खिलौने की तरह नाचना। जब समाज के कुछ विवेकी व्यक्ति उनका उद्धार करने के लिए आगे बढ़ते हैं तो उनके रास्ते में विघ्न डालना बहुतों का काम है। पिछले शताब्दी के आन्दोलनों में एक वेश्या विवाह भी रहा। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटककारों ने वेश्याओं से विवाह करनेवाले व्यक्तियों के सामने आनेवाले विघ्नों का वर्णन किया है। उदाहरण के लिए कुछ नाटकों की चर्चा प्रस्तुत है।

5.3.1 पुनर्जन्म[28]

पतिता युवती अपने जीवन को सुधार कर समाज में आदर से जीना चाहती है तो उसके सामने जो बाधाएँ आती हैं, उनका चित्रण इस नाटक में किया गया है। यौवन के आरम्भ में 'श्यामला' तथा रामकुमार नाम के युवती-युवक घर छोड़ भाग जाते हैं। साथ में लाये हुए धन, आभूषण सबका व्यय हो जाता है। तब तक रामकुमार का श्यामला के प्रति आकर्षण भी समाप्त हो जाता है क्योंकि प्रेम का नशा काफूर होता है और आर्थिक कठिनाइयाँ सामने आती हैं। इस दशा में रामकुमार श्यामला को पुरुष के अहम् के कारण मार-पीटकर अकेली छोड़कर चला जाता है।

श्यामला जीविका के लिए दर-दर भटकती फिरती है। किन्तु सभी ओर से उसे अपमान का ही सामना करना पड़ता है। कुछ दिनों से भूखी रहने के कारण एक घर के सामने वह बेहोश होकर गिर पड़ती है। दुर्भाग्यवश वह एक वेश्या का घर है, जो श्यामला को भी एक वेश्या बनाकर धन कमाती है। श्यामला कहती है, "मैंने अपने जीवन को उस नरक में एक कालीन की तरह बिछा दिया था, जिसके ऊपर कितने व्यक्ति चलकर गये थे मुझे स्मरण नहीं।"[29] उन यातनाओं को सहन करने की शक्ति न होने के कारण वह एक दिन वहाँ से किसी तरह भाग निकलती है। किन्तु बाहर निकलते ही दुनिया की कुदृष्टि फिर उसका पीछा करती है। एक रात उसके पीछे कुछ गुण्डे पड़ते हैं। वह भाग कर एक घर का द्वार खटखटाती है। वह एक माने हुए डाक्टर मूर्ति का घर है जो उसकी दशा को देख पिघल कर आश्रय देते हैं।

थोड़े ही समय के बाद डाक्टर मूर्ति श्यामला के प्रति आकर्षित होकर विवाह करना चाहते हैं। जब श्यामला अपनी कथा सुनाने का प्रयत्न करती है तो डाक्टर कहते हैं, "मुझे तुम चाहिए, तुम्हारी बीती हुई कहानी नहीं।" विवाह के पश्चात् उनके दिन आनन्द से बीतने लगते हैं किन्तु श्यामला मन-ही-मन डरती रहती है। अचानक उनके प्रशान्त जीवन में

रामकुमार के प्रवेश के कारण तूफान उठ खड़ा होता है। रामकुमार, श्यामला को अकेली देख धमकाने लगता है कि तुम मेरे साथ फिर से आ जाओ, वरना मैं तुम्हारी पतन की कहानी कह दूँगा। श्यामला के उस प्रस्ताव को अस्वीकार करने पर वह डाक्टर मूर्ति को पुरानी कुछ तस्वीरें दिखाकर धीरे-धीरे मन में संदेह के बीज बो देता है। सारे गाँव में यह कहानी फैल जाती है कि डाक्टर की पत्नी पतिता है, वेश्या है। डाक्टर की स्थिति जटिल हो जाती है। वह श्यामला से इतना प्रेम करता है कि उसे छोड़ नहीं सकता और न वह अपनी कुल, मर्यादा के प्रति होनेवाली निन्दा को ही सहन कर सकता है। श्यामला भी मानसिक रूप से पिसती जाती है। वह अपने पति से प्रश्न करती है कि आखिर उसकी स्थिति के लिए अपराधी कौन है? "यौवन के जोश में कुमार का विश्वास करना मेरा अपराध है, या मुझे छोड़कर भागना कुमार का अपराध है? वेश्या बनना मेरी गलती है या खाने के लिए मुट्ठी-भर दाना न दे सकने वाले इस समाज की गलती है? मुझसे प्यार कर, मेरी कहानी सुने बिना मुझसे विवाह करने में अपराध मेरा है या आपका?"[30] इसलिए घर छोड़ वह जाना चाहती है क्योंकि पहले ही वह है पतित और अब पति के मन में भी उसका स्थान नहीं रह गया है।

रामकुमार की बातों से प्रभावित होकर डाक्टर मूर्ति श्यामला की हत्या करने के लिए तत्पर होता है क्योंकि श्यामला के कारण उसके कुल का ही नाश हो गया है। समाज के व्यक्ति उसकी हँसी उड़ा रहे हैं। इस पर डाक्टर के पिता जो एक सहृदय व्यक्ति हैं, समझाते हैं, "इस समाज का अर्थ क्या है? भय का दूसरा नाम ही समाज है। अपने मन में जो भय रहता है, उसे ही हम समाज का नाम देते हैं। पति की आड़ में पत्नी चाहे कैसी भी चाल चले तो समाज कुछ नहीं कहता। किन्तु वही समाज एक गिरी हुई युवती को सहारा देने पर फुसफुसाता है।···हमें तो उद्धार उन्हीं का करना है, जिनका पतन हो गया है क्योंकि अँधेरे में ही उजाले की आवश्यकता होती है।···एक लड़की अनजाने राह भटक गयी तो क्या उसे उसी नरक में सड़ना है?···कीचड़ को ही पानी से धोने की आवश्यकता है। अब सोचो कि उसकी कहानी मिट गयी है और उसे पुनर्जन्म मिला है। घर चलो। भय को जीतो।"[31]

इस प्रकार नाटककार ने समाज का यथार्थ चित्रण कर एक निर्दोष युवती के वेश्या बनने की विवशता तथा चाहकर उस नरक से निकलने में बाधक तत्त्वों का मार्मिक चित्रण किया है। अन्त में युवती को पुनः ससम्मान स्थापित कर नाटक को सुखान्त कर दिया है। निर्मम यथार्थ का चित्रण व आदर्श का संकेत कर नाटककार ने समस्या के साथ पूरा न्याय किया है। साहित्यिक दृष्टि से भी नाटककार सफल है।

5.3.2 संदेशमु[32]

इस तेलुगु नाटक में रामम् नाम का युवक सुशीला नाम की वेश्या युवती से प्रेम करता है। वह गर्भवती भी है। रामम् अपने शहर में आता है तो उसे मालूम होता है कि पिता ने चालीस हजार रुपये का दहेज तय कर उसका सम्बन्ध एक कन्या से निश्चित कर दिया है। रामम् के अपने प्यार के बारे में कहने पर भी पिता अनसुनी कर देता है। कौन पिता चाहता

है कि उसका लड़का बिना दहेज के और वह भी एक वेश्या युवती से ब्याह करे। यही होगा तो समाज के व्यक्ति इन पर उंगली उठायेंगे। इसलिए रामम् के पिता को वेश्या पुत्री से सम्बन्ध बिलकुल पसन्द नहीं आता है। इसी बीच रामम् को एक पत्र मिलता है, जिसमें उसकी प्रेयसी सुशीला के चरित्र पर आरोप लगाया जाता है। पत्र पढ़ उसके मन में सन्देह के बीज उत्पन्न होते हैं। उसका मन डावांडोल हो रहा था तभी उसके बाबा समझाते हैं— "पैसे चाहे कभी भी मिल सकते हैं किन्तु इतना चाहने वाली स्त्री को पाना सम्भव नहीं है। प्रेम में विश्वास की आवश्यकता होती है। प्रेम तथा वासना में बहुत अन्तर है। प्रेम तो विश्वव्यापी है और देवत्व को प्रतिष्ठित करता है। इसीलिए सच्चा प्रेम कभी भी कलंकित नहीं होता। कोई एक निर्णय लेने से पहले सोच समझ कर कदम उठाओ।"[33] किन्तु मानव मन इतना दुर्बल होता है कि बुराई से बहुत जल्दी प्रभावित हो जाता है। इसीलिए रामम् के मन में भी सन्देह के जो बीज थे, वे दिन प्रतिदिन एक महावृक्ष का आकार लेने लगे जिसे उसके पिता ने बढ़ावा दिया। इतने में सुशीला उसे ढूँढ़ती हुई आ निकलती है। पहले रामम् के पिता सुशीला पर तरह-तरह के आरोप लगाते हैं। जैसे उसने पैसे के लिए रामम् को अपने जाल में फँसाया है और अब उसकी सारी मान मर्यादा को मिट्टी में मिलाने आयी है। सुशीला तरह-तरह से उनसे प्रार्थना करती है तथा अपनी सफाई देती है किन्तु उसका प्रेमी रामम् ही उसे कुलटा, पतिता मानता है और उसका मुँह देखना नहीं चाहता। धनी होने के कारण रामम् का पिता सुशीला को कुछ रुपये भीख में देना चाहता है, जिनसे वह गर्भपात करवा कर वहाँ से चली जाए। इस पर सुशीला का दिल टूट जाता है। और वह वहाँ से जाने के लिए तैयार होती है। इतने में रामम् की बहन आकर वह भेद खोलती है कि वह पत्र जिसके कारण रामम् का दिल फिर गया है कुछ पैसे देकर उनके पिता ने ही किसी से लिखवाया था। यह भेद खुल जाने पर रामम् को अपने बाबा के बचन याद आते हैं। बाबा तथा बहन के प्रोत्साहन से वह सुशीला से क्षमा याचना कर उसके साथ जीवन बिताने का प्रण करता है।

इस नाटक में भी लेखक ने एक ओर निर्मम यथार्थ का हृदयग्राही चित्रण किया है तो दूसरी ओर एक आदर्श की स्थापना की है। नाटक समस्या और उसके निराकरण पर सुन्दर प्रकाश डालता है।

5.3.3 एदुरिता[34]

इस नाटक में नाटककार ने यह चित्रण किया है कि समाज के एक मानवीय व्यक्ति को अन्तर्जातीय विवाह करने में किन बाधाओं का सामना करना पड़ता है? यदि वह युवती एक वेश्या के घर में पली हो तो बाधाएँ अत्यधिक बढ़ जाती हैं। नाटककार अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल हुआ है। एक सुन्दर कृति प्रस्तुत कर लेखक ने सुन्दर योग दिया है।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटककारों ने वेश्याओं की स्थिति के चित्रण के साथ-साथ समाज के सामने कुछ आदर्श भी प्रस्तुत किये हैं। अधिकतर नाटककार अपने उद्देश्य में सफल हुए हैं और उन्होंने समाज में जागृति लाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है।

5.4 वेश्याओं की समाज में दशा

समाज के व्यक्ति वेश्या को एक छूत की बीमारी की तरह देखते हैं। यों वह सभ्य समाज में आ नहीं सकती। पर समाज के गणनीय व्यक्ति अपनी वासना पूर्ति के लिए उसे एक साधन बनाने में पीछे नहीं रहते हैं। पतित होने के कारण उसके वचनों पर भी विश्वास नहीं किया जाता। वह अच्छा काम करना चाहती भी है तो उस पर बुराई का मुलम्मा चढ़ा दिया जाता है। समाज उसको केवल पतित ही मानता है। उसके मन, वचन एवं कर्म में छल और दोष ही देखे जाते हैं। अच्छाई से उसका सम्बन्ध माना ही नहीं जाता। इसीलिए वह अच्छे मार्ग पर आना भी चाहती है तो भी कोई उसे आने नहीं देता। उदाहरणार्थ प्रस्तुत है एक नाटक—

5.4.1 हंतकुलेवरू[35]

इस नाटक की नायिक कुसुमा एक वेश्या है। एक दिन एक होटल में उसके कारण एक पचास वर्ष के पुरुष रामनाथम की हत्या सुन्दर राव नाम का युवक कर देता है। सुन्दर राव एक एम० एल० ए० का पुत्र है तो रामनाथम् का भाई भी राजनीति से सम्बन्ध रखता है। इस हत्या से दोनों वर्गों के व्यक्ति लाभ उठाना चाहते हैं। सुन्दर राव के पिता कुसुमा को दस हजार रुपये देकर यह कहलवाना चाहते हैं कि सुन्दरराव ने यह हत्या अपनी आत्मरक्षा के लिए की। इसमें उसका दोष नहीं है। रामनाथम् का भाई भी धन का लालच देकर सुन्दर राव को ही हत्यारा प्रमाणित करना चाहता है और इस आधार पर उसके पिता को बदनाम करना चाहते हैं। कुसुमा एक वेश्या होते हुए भी सच्चाई को सबके सामने न्यायालय में कहना चाहती है।

सुन्दर राव के पिता की प्रथम पत्नी की पुत्री ही कुसुमा थी। कुसुमा की माँ पर सन्देह के कारण पिता ने उसे छोड़ दिया तो दोनों निस्सहाय रह गये। पिता दूसरा विवाह कर सुखपूर्वक जीवन बिता रहे थे। कुसुमा ने विवशतावश यह व्यभिचार की वृत्ति स्वीकार की थी। उसका विवाह हुआ था किन्तु पति ने उसे भी ठुकरा दिया था। वह जानती है कि यह जीवन बिताना नीच है, किन्तु करती क्या ? उसी के शब्दों में "इस वृत्ति के कारण जब मेरे हाथ में पैसे आते हैं तो प्रतिदिन रोती हूँ। पर शाम तक ये पैसे समाप्त हो जाते हैं और 'कल' मुँह खोल कर दिखाई देता है इसीलिए पैसों के लिए फिर यह काम करने के लिए विवश होती हूँ।"[36] यह है उसकी दुर्दशा। इस स्थिति में उसे न्यायालय में जाना पड़ा। वह समझ जाती है कि उसकी साक्ष्य के आधार पर दोनों पक्ष के व्यक्ति अपना स्वार्थ पूरा करना चाहते हैं। वहाँ उसने जो देखा था उसी सत्य को प्रकट किया।

धनी वर्ग के व्यक्तियों ने एक होकर न्यायालय में यह प्रमाणित कर दिया कि यह हत्या कुसुमा ने ही की, इस लालच के कारण कि सुन्दरराव को सजा मिलेगी तो सम्पत्ति पर अधिकार वह पायेगी। आखिर वह तो वेश्या है और वेश्या को सम्पत्ति प्रिय होती है। कुसुमा यह जान कर हताश हो जाती है कि सजा सुन्दरराव को नहीं वरन् उसे ही मिली है और उसे गिरफ्तार कर लिया जाता है। कुसुमा सच कहती है कि "मैं यहाँ सत्य प्रकट

करने के लिए आयी थी चूँकि मैं एक वेश्या हूँ, मेरे जीवन ही नहीं मेरे साक्ष्य का भी कुछ महत्त्व नहीं रहा। आप मुझे सजा इसलिए दे रहे हैं क्योंकि मैं सत्य प्रकट करना चाहती हूँ।"[37]

समाज में उच्चवर्ग में रहने के कारण तथा धनी होने के कारण कुसुमा को अबला बना कर उसे सजा दिलवाना वास्तव में सत्य को ही मारना था। यह नाटक इस तथ्य को प्रकट करता है कि जीवन में गिर जाने के कारण एक वेश्या यदि सत्य कहती भी है तो वह विश्वसनीय नहीं माना जाता। उसके वचनों का महत्त्व जानने का प्रयत्न नहीं किया जाता।

5.5 देवदासी समस्या

तेलुगु भाषा के प्रसिद्ध नाटककार पी० वी० राजमन्नार ने अपने 'मनोरमा' नाटक में इस समस्या का चित्रण किया है।

'मनोरमा' एक अनाथ बालिका थी जिसे मन्दिर के आचार्य ने लाकर देवदासी बना दिया था। इस आड़ में वह अपनी वासना की पूर्ति करता था। एक दिन मन्दिर देखने आये राममूर्ति मनोरमा को देख प्रभावित होते हैं तथा उसे इस नरक से हटाने के लिए पहले एक अनाथ आश्रम में रखते हैं। किन्तु वहाँ भी समाज के ऐसे ही व्यक्ति तो हैं। वे ईर्ष्या के कारण इन दोनों के नाम पर कीचड़ उछालने लगते हैं। वे आपस में कहते हैं—"इसका (मनोरमा) भोग विलास आखिर कितने दिनों तक चलेगा? जब तक इससे भी सुन्दर औरत हाथ न लगे तब ही तो।"[38] ये व्यक्ति मनोरमा को ऊपर उठते नहीं देख सकते।

अत्यन्त धैर्य के साथ राममूर्ति मनोरमा का हाथ पकड़ लेता है। यह शादी न उसके सम्बन्धियों को पसन्द है न मन्दिर के आचार्य को। सम्बन्धी सोचते हैं कि "उसका पिछला जीवन ही बताता है कि वह कितनी सुलक्षणा है और उसका शील स्वभाव क्या है।··· विवाह होने के पश्चात् उसमें काफी परिवर्तन हुआ है, लेकिन यह सब दिखावा है। पुरानी आदतें कैसे छूट सकती हैं। इनकी गन्ध तो कभी जा नहीं सकती।"[39]

मन्दिर का आचार्य मनोरमा पर अपना सम्पूर्ण अधिकार मानता है। जबकि मनोरमा अपने बीते दिनों को भुलाने की चेष्टा करती है तो वह घाव को बार-बार कुरेदने की चेष्टा करता है और राममूर्ति के मन में संदेह उत्पन्न करने में सफल हो जाता है। बेचारी मनोरमा को घर त्यागना पड़ता है किन्तु जायेगी भी कहाँ?—कहती है—"यदि बच्चा गेंद उछाल देता है तो गेंद सोचता है कि नक्षत्र मण्डल में उसे आश्रय मिलेगा लेकिन वह फिर पृथ्वी पर ही गिर पड़ता है। उसी भाँति मैं भी यहीं आ गयी।·· जब मैं अबोध थी, तब इस पेशे में लाकर आपने (आचार्य) मेरा उपकार किया···इस नरक कूप से निकलने के बाद अलौकिक सुख का अनुभव करते देख मेरे जीवन को विच्छिन भी आपने ही किया।"[40]

किन्तु अन्त में पति के सत्यता जानने के कारण पति-पत्नी का मिलन हो जाता है। किन्तु समाज में ऐसे कितने विवेकी पुरुष हैं जो सच्चाई को जानने का प्रयत्न करते हैं। इस समाज का चित्रण राममूर्ति के शब्दों में अक्षरशः सत्य है—"ऐसी शत्रुता क्यों प्रेम

विवाह से ? जनमत के विपरीत हो तो फिर क्या कहना ? चाहे वह कैसा भी उत्तम कार्य क्यों न हो। कैसा भी सत्य हो, वह झूठ है। कैसा भी न्याय हो वह अन्याय है। मनुष्यों में कभी-कभी भले ही न्याय और अन्याय की विवेकशीलता हो, लेकिन समाज में···राम-राम ···वह न्याय-दृष्टि नहीं है, वह विवेक भी नहीं। समाज के पास हृदय ही नहीं है।"[41]

इस प्रकार स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटककारों ने वेश्याओं के जीवन की समस्याओं का कुशल चित्रण किया है। कहीं-कहीं समाज के सामने उनके उद्धार का मार्ग भी बताया है। आशा है, इस प्रकार का साहित्य समाज को दिशा प्रदान करेगा।

सन्दर्भ-संकेत

1. वूमन इन मनु एण्ड हिज सेवेन कामेंटेटर्स के आधार पर।
2. हिन्दू सामाजिक संस्थाएँ—शिवस्वरूप सहाय, पृ० 263
3. श्रृंखला की कड़ियाँ—श्रीमती महादेवी वर्मा, पृ० 37-38
4. सामाजिक समस्याएँ और विघटन—डा० रांगेय राघव तथा प्रो० श्याम शर्मा, पृ० 77
5. इण्डियन वूमन—संकलन—देवकी जैन (लेख—श्रीमती पार्वती अय्यप्पन—प्रास्टीट्यूशन : नोट्स फ्राम ए रेस्क्यू होम) पृ० 263
6. सामाजिक समस्याएँ तथा विघटन—डा० रांगेय राघव तथा प्रो० श्याम शर्मा, पृ० 95
7. वही, पृ० 94
8. हिन्दू सामाजिक संस्थाएँ—शिवस्वरूप सहाय, पृ० 265
9. लक्ष्मीपति गारि अम्मायिलु—दर्मा रावशा (तेलुगु नाटक) पृ० 93
10. वुमन एण्ड सोशल इन जस्टिस, पृ० 151
11. नाटककार—जगदीश शर्मा
12. कलंक या वेश्या, पृ० 30
13. वही
14. वही, पृ० 30
15. देवेन्द्रनारायण एवं सत्यनारायण गुप्त
16. हिन्दी नाटककोश—डा० दशरथ ओझा, पृ० 580
17. तेलुगु नाटक—नाटककार—जी० एल० सत्यबाबू
18. वही, पृ० 100
19. नाटककार—कोर्रपाटि गंगाधरराव
20. निर्मला—नाटक, पृ० 21
21. निर्मला—नाटककार—को० गंगाधर राव, पृ० 49

22. वही, पृ० 71
23. नाटककार—गरिकपाटी
24. नाटककार—मुन्शी दिललखनवी
25. अतीत के चलचित्र, पृ० 85
26. नाटककार—राजकुमार
27. नाटक और यथार्थवाद—कमलिनी मेहता, पृ० 352
28. तेलुगु नाटक—नाटककार—बेल्लंकोंड रामदासु
29. पुनर्जन्म—लेखक—बेल्लंकोंड रामदासु, पृ० 46
30. वही
31. वही, पृ० 80-81
32. तेलुगु नाटक—लेखक के० वी० प्रसादराव।
33. संदेशमु—लेखक के० वी० प्रसाद राव, पृ० 82
34. तेलुगु नाटक—लेखक कौंडमूदिगोपाल राय शर्मा।
35. तेलुगु नाटक—लेखक डा० कोर्रपाटि गंगाधर राव।
36. हंतकुलेबरू—कोर्रपाटि गंगाधर राव, पृ० 23
37. वही, पृ० 66-67
38. मनोरमा—अनुवादक—बालशौरिरेड्डी, पृ० 22
39. वही, पृ० 35
40. वही, पृ० 57-58
41. मनोरमा—नाटककार—पी० वी० राजमन्नार, पृ० 38

षष्ठम अध्याय

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु नाटकों में चित्रित अन्य समस्याएँ

6. "दहेज उस सम्पत्ति या उपहारों को कहते हैं जो कन्या के अभिभावक विवाह के अवसर पर कन्या और वर को देते हैं।"[1] यह एक प्रकार का उपहार था जो कन्या का पिता प्रसन्नता से अपनी पुत्री को देता था। डा० आलतेकर कहते हैं, "स्मृतियों में इस बात की अनुमति मिलती है कि विवाह में कन्या कुछ उपयुक्त आभूषणों के साथ दी जानी चाहिए किन्तु उनकी संख्या और मूल्य पूर्ण रूप से कन्या को पिता की इच्छा पर छोड़ दिया गया है।"[2]

प्राचीन काल में यह धन नाम मात्र का होता था जिसके कारण कन्या पक्ष को विवाह करने में कोई बाधा नहीं होती थी। शायद कन्या को पिता की सम्पत्ति में भाग नहीं होने के कारण विवाह के समय गाय, स्वर्ण, धन आदि दिये जाते थे, जिसे 'स्त्री धन' कहा गया था। धनवान आदमी अपनी पुत्री को विदा करते समय अपने शौक और स्वेच्छा से जितना चाहे उतना धन देता है, यह बात अलग है। पर यह धनादि कर की भाँति वसूल करना सामाजिक अत्याचार है।

जब से दहेज ने एक व्यवसाय का रूप ग्रहण कर लिया, तब से यह समाज की एक चिन्तनीय समस्या बन गयी। "कोई भी प्रथा या रीति-रिवाज सामाजिक परिवेश के परि-प्रेक्ष्य में ही बनते और पनपते हैं। बनती हुई सामाजिक पृष्ठभूमि में ये ही रीति-रिवाज यदि सुधरते नहीं तो कुरीति बनकर रह जाते हैं।"[3]

पिछली शताब्दी में 'कन्या शुल्क' का बोलवाला था। उस समय पुरुष चाहे कितने भी बूढ़े क्यों न हो, वधु के माता-पिता को धन देकर छोटी-सी आयु की कन्याओं से शादी कर लेते थे। पिछली शताब्दी में श्री गुरजाड़ अप्पाराव ने अपने नाटक कन्या शुल्कमु तथा पूर्ण-पक्षा में इन बुराइयों का सशक्त चित्रण किया है।

अब स्थिति बदल कर वर्तमान युग में दहेज का रूप अत्यन्त भयंकर हो गया है। विवाह के समय जो उपहार दिये जाते हैं उसमें स्नेह की भावना रहती है किन्तु दहेज में तो दबाव आ जाने के कारण एक बोझ हो जाता है।

"पुरातनता की दृष्टि से तो हमारे यहाँ विवाह को मुआयदा (कांट्रैक्ट) न मान कर एक पवित्र कर्म (सेक्रामेंट) मानते थे। उसका आध्यात्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व था। किन्तु दहेज ने इसे मुआयदा बना दिया है और मुआयदा भी लड़के और लड़की का नहीं बल्कि परिवारों का। विवाह और सुख का नहीं बल्कि भौतिक उपकरणों का लेने-देने का मुआयदा।"[4]

"समय के साथ विवाह के लिए केवल दहेज ही एक मात्र योग्यता समझी जाने लगी, अन्य सभी योग्यतायें जैसे वंश, बिरादरी, जन्म कुण्डली आदि का महत्त्व घटने लगा। वर के माता-पिता इसे एक अच्छा व्यापार समझने लगे, क्योंकि वधु के माता-पिता अपने से सम्पन्न कुटुम्ब में ही रिश्ता जोड़ना चाहते हैं। इससे स्थिति और भी बिगड़ती जा रही है।"[5] हर माता-पिता अपनी सन्तान की खुशी चाहते हैं इसीलिए "हर अमीर से लेकर भिखारी तक की यही तमन्ना होती है कि उसकी औलाद खुशियों में पनपे, दौलत से खेले और स्वर्ग की झलकियों में जीवन बिताये।···औलाद की खुशी के लिए किसने क्या नहीं किया है?"[6]

अगर दहेज न दे सकने के कारण सगाई टूट जाती है तथा विवाह नहीं हो पाता है तो भी "लड़के वालों की करतूतें कोई नहीं देखता। हजारों मन गढ़ंत बातें लड़की के बारे में उड़ा दी जाती हैं। दुनिया भर की खरी खोटी कह खानदान तक रौशन कर दिया जाता है।"[7]

इस भयंकर समस्या के कारण आज मध्यम वर्गीय परिवार में लड़की का होना अभिशाप और लड़के का होना वरदान माना जा रहा है। लड़की चाहे कितनी भी पढ़ी लिखी क्यों न हो, पुरुषों के समान नौकरी भी क्यों न करे किन्तु शादी के समय दहेज लिये बिना ससुराल में कदम नहीं रख सकती। इस कारण से लड़कियों की विवाह की आयु बढ़ती जा रही है और कभी-कभी जनम भर अविवाहित भी रह जाना पड़ता है। कई कन्याओं को नौकरी करते हुए अपने दहेज के लिए पैसे जुटाते भी देखा जा सकता है।

विवाह के बाद भी दहेज का पीछा नहीं छूटता। जो लड़कियाँ विवाह में अधिक दहेज नहीं ला पाती हैं, उन्हें ससुराल में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कभी दूसरा विवाह करके दहेज प्राप्त करने के लोभ में बहुओं की हत्या तक कर दी जाती है। कभी-कभी लड़की स्वयं ऊब कर आत्महत्या कर लेती है। बहुधा उसका जीवन बन्दी या दासी का हो जाता है। सास-ससुर ही नहीं वरन् कभी-कभी पति भी लड़की के मायकेवालों को अपमानित करते हैं। कभी-कभी दहेज की कमी के कारण लड़की को विवाह के बाद भी मायके में ही रह जाना पड़ता है। इन परिस्थितियों में वैवाहिक सम्बन्धों में तनाव पैदा हो जाता है और पति पत्नी एक दूसरे के निकट नहीं आ पाते हैं।

"गाँधीजी ने सत्य कहा है कि कई कुटुम्बों को नाश करने वाली यह दहेज प्रथा का विरोध सबसे पहले स्त्रियों को ही करना चाहिए। उनके अनुसार आज की कन्याओं को पार्वती को अपना आदर्श बनाना चाहिए जिसने घोर तपस्या कर साधना के साथ परमेश्वर को पति के रूप में पाया था, किन्तु उन्होंने खरीदा नहीं।"[8]

एक सूक्ष्म दृष्टि से परखने पर यह अनुभव होता है कि इस समाज में स्त्री-पुरुष

का स्थान एक नहीं है। स्त्री को पुरुष से हीन समझा गया है। सभी कुरीतियों का मूल यह है कि युगों से स्त्री को आर्थिक रूप से अस्वतन्त्र बना कर, घर की चहारदीवारी तक ही सीमित कर दिया गया है। सन्तान की उत्पत्ति ही उसका एकमात्र कर्तव्य बताया गया है।

यद्यपि भारत सरकार ने सन् 1961 में दहेज को कानूनन अवैध घोषित कर दिया है फिर भी वर के माता-पिता छिपे-छिपे दहेज वसूल करते देखे जाते हैं।

हिन्दी और तेलुगु के निम्न नाटकों में दहेज प्रथा की समस्या को उठाया गया है—

नाटक	नाटककार
हिन्दी	
1. दहेज	जगदीश शर्मा
2. दहेज	मालती श्रीखंडे
3. दहेज	न्यादर सिंह बेचैन
4. सोने की जंजीरें	विश्वेश्वरदयाल कुशल
तेलुगु	
1. पेल्लि	सीतंराजु वेंक्टेश्वर राव
2. पेल्लिपंदिरि	,,

6.1 दहेज[9]

राजबाला उमाशंकर की सुशिक्षित तथा सुशील कन्या है। उनका एक मध्यवर्गीय परिवार है, जिनके पास चाहे सम्पत्ति न हो किन्तु इनमें दया है, सहिष्णुता है, उदारता है। राजबाला सहृदय व्यक्ति थी इसी कारण एक अंधेरी रात में जब कि मूसलाधार वर्षा हो रही थी, वह रमेश नामक बेहोश युवक की रक्षा कर उसके प्राण बचाती है। इसी कृतज्ञता के कारण रमेश के पिता बाबू दीनदयाल राजबाला को एक तोहफा भेजते हैं और बाद में उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अपने रमेश की दुल्हन बनाना चाहते हैं। उमाशंकर उन्हें अपनी स्थिति के बारे में परिचय देते हैं तो दीनदयाल कहते हैं, "भगवान की दया से मेरे घर किसी बात की भी कमी नहीं है उमाशंकर। रुपया, पैसा, काम, धन्धा, परिवार, नौकर-चाकर सब कुछ है। अगर उस परिवार में देवीबाला भी आ मिले तो···।"[10] उमाशंकर हिचकिचाता है क्योंकि वह समझता है कि आर्थिक असमानता के कारण यह रिश्ता निभ नहीं सकेगा। किन्तु किसी तरह मान लेता है।

अपनी बेटी की खुशी के लिए उमाशंकर इस रिश्ते के लिए हाँ कर देता है। वह ब्याह के खर्च के लिए उधार लेकर पैसे बटोरता है और तैयारियाँ शुरू होती हैं। इतने में दीनदयाल से पत्र आता है कि बारात लाने के लिए मुझे आप छह हजार रुपये भेज दीजिये

नहीं तो बारात निकलना मुश्किल है। वही दीनदयाल जो दान-दहेज के खिलाफ थे अब छह हजार माँगने लगे। "लेकिन वे दान दहेज कहाँ माँगते हैं? दयालु हैं, छह हजार तो सिर्फ बारात के लाने का खर्च माँग रहे हैं।"[11]

उमाशंकर दुविधा में पड़ जाता है कि "कहाँ से पैदा करूँ इतनी रकम?···कन्या की शादी का छूट जाना भी ठीक नहीं है। दुनिया कारण नहीं सोचती बल्कि ख़याल करती है कि कन्या में कोई दोष होगा, कोई ऐब होगा।"[12] राजबाला यह बात सुन दुखित होती है तथा पिता से यह रिश्ता छोड़ देने के लिए कहती है क्योंकि "आपकी जिन्दगी का चैन लूट कर मुझे कभी सुख नहीं मिलेगा।"[13]

उमाशंकर ठीक कहता है, "यह शादी तो उनकी अपनी माँग पर तय हुई थी, इसी-लिए छह हजार हैं। अगर मैं कहीं उनके पास जाता तो न जाने उनकी माँग कितनी बड़ी होती। लड़के की सारी जिन्दगी के खर्च का ठेका मुझे ही लेना पड़ता।"[14] उमाशंकर तीन हजार देकर बाकी रकम बाद में देने का वादा करता है। किन्तु पैसे के प्यासे दीनदयाल फेरों से पहले यह प्रश्न फिर सामने रखते हैं।

राजबाला रमेश को अपने पास बुलवा कर प्रार्थना करती है कि उसके पिता की दीन दशा पर दया दिखाये। किन्तु वह एक कायर युवक है, जो माता-पिता के खिलाफ जा नहीं सकता। "यह जानते हुए कि तुम बहुत सुन्दर हो, पवित्र हो और निर्धन के साथ-साथ मेरी नयी जिन्दगी की दाता भी।"[15]···दीनदयाल अब बहुत बदल गये हैं। वे कहते हैं— "यह नहीं हो सकेगा कि हम उस जरा से अहसान के बदले इतना बड़ा नुकसान उठा बैठें। दस-दस, पंद्रह-पंद्रह हजार के कई रिश्ते छोड़ कर यह रिश्ता लिया था तो इसका मतलब यह नहीं कि अपना दिवाला निकाल बैठूं।"[16]

किन्तु इतने में ही अभिमानवती कन्या होने के कारण राजबाला अपने शरीर पर मिट्टी का तेल डाल कर आत्महत्या कर लेती है क्योंकि राजबाला अपने पिता का दुःख देख नहीं सकती—" मैं खुद उन महलों के सपने नहीं देखना चाहती···जिनकी नीवें सच्चाई, शराफत और इंसानियत की लाशों पर खड़ी हों···। जहाँ दया और धर्म की सिसकियों पर पाप पनपता हो, जहालत पनपती हो।"[17]

समाज में ऐसे बहुत से व्यक्ति रहते हैं जो नकद दहेज तो कुछ भी नहीं चाहते, किन्तु स्कूटर, घड़ी, सायकल इत्यादि रूपों में पाना चाहते हैं जिसका खर्च कभी-कभी दहेज के धन से भी अधिक हो जाता है।

यह दहेज ऐसी भयानक समस्या है जो अनेक युवतियों के जीवन को आँसुओं से भर देता है। युवती न चाहते हुए भी दुष्चक्र में फँस जाती है। प्रस्तुत नाटक में एक सर्व-गुण सम्पन्न होनहार युवती दहेज की कुप्रथा पर क्रूरता से बलि हो जाती है। ऐसी दुर्घटनाएँ आये दिन घटित होती रहती हैं। समाचार पत्रों में ऐसे समाचार छपते रहते हैं। नाटककार ने इस कुप्रथा पर बहुत स्वाभाविक रूप से करुण प्रकाश डाला है। वाता-वरण व चरित्र-चित्रण में सफलता मिली है। राजबाला का करुण अन्त 'हान्ट' करने लगता है।

दहेज की मूल समस्या पर आधारित साहित्य आरम्भ से भारतीय साहित्य में

पर्याप्त लिखा गया है। दहेज नाम से एक हिन्दी सिने चित्र भी बना था जिसकी मूल समस्या दहेज थी। परन्तु आज भी लगभग पूरे भारतवर्ष में यह जटिल समस्या बनी हुई है। इसका रूप कहीं-कहीं समाज अथवा समय के अनुसार बदला है पर मूल समस्या आज भी है।

6.1.2 पेल्लि[18]

इस नाटक में आशा एक मध्यम वर्गीय परिवार की कन्या है। उसका विवाह वासु नाम के एक सम्पन्न परिवार के युवक से निश्चय किया जाता है। मुहूर्त के लिए सारी तैयारियाँ की जाती हैं। मण्डप सजाया जाता है। मुहूर्त से पहले वर के पिता दहेज की रकम पांच हजार चाहते हैं जिसे देने में आशा के पिता असमर्थ हैं। दो दिन की अवधि माँगते हैं ताकि वे उधार लेकर चुका दें। आशा के पिता वासु के पिता से बहुत प्रार्थना करते हैं कि अभी मेरे पास तीन हजार रुपये हैं, आप ले लीजिए। बाकी दो माह बाद मैं दूँगा। वासु के पिता नहीं मानते और कहते हैं कि वासु को मोटर साइकिल, घड़ी आदि के लिए एक हजार और दें, तभी यह शादी होगी नहीं तो हम वापस चले जायेंगे। अब कन्या के लिए यहाँ तक आकर शादी न होना भी एक कलंक ही है और भविष्य में अन्यत्र सम्बन्ध होने की सम्भावना भी नहीं रहती। वासु के पिता अपने इस कर्म का समर्थन करते हैं—"दहेज की सृष्टि हमने नहीं की। पीढ़ियों से चली आ रही यह परम्परा है। जो दहेज देते हैं उन्हीं का गौरव बढ़ता है। इस प्रथा को धिक्कारने की शक्ति किसी में भी नहीं।"[19]

जो दहेज लेते हैं, उनमें दया नहीं होती। अपने लड़के को केवल दहेज के लालच से ही विवाह सूत्र में बांधना चाहते हैं। उनके सभी सम्बन्ध केवल धन से ही होते हैं। वे केवल धन के उपार्जन के लिए ही जीते हैं। धन कमाने के लिए कैसा भी अन्याय करने लिए तैयार रहते हैं। वासु जब कहता है कि मैं आशा से ही विवाह करूँगा तो पिता उसको चेतावनी देते हैं—पहले मेरी हत्या कर फिर यह विवाह कर। इस प्रकार वासु अपने पिता के लिए बँध जाता है। इसीलिए जब आशा दुल्हन के रूप में उसके पास आकर पल्ला पसारती है कि दहेज के कारण इस विवाह को मत रोकिये—किन्तु वासु निस्सहाय है—"मैं अपने माता-पिता के विरुद्ध चल नहीं सकता। इस विवाह के लिए उनका विरोध करना मुझे पसन्द नहीं।"[20] जब आशा यह जानती है कि उससे बात करना व्यर्थ है तो वासु से कहती है मुझे यह विवाह पसन्द नहीं क्योंकि "दहेज के लिए तुम (वर) नीति नियम को तोड़ने के लिए तैयार हो। आज पाँच हजार के लालच में मुझसे शादी कर रहे हो। कल और पांच हजार कमाने के लालच में मुझे ठुकरा भी सकते हो।"[21] और अपने पिता से भी यही कहती है जिस वर में अपना व्यक्तित्व नहीं है उससे विवाह करने की अपेक्षा जन्म भर अविवाहित ही रहकर कुछ नौकरी ढूँढ़ लेना अच्छा है। पिता यह नहीं मानता और कहीं से धन चुरा लाता है। किन्तु पिता के मुहूर्त से पहले ही आत्महत्या कर लेने के कारण विवाह रुक जाता है।

नाटककार ने दहेज कुप्रथा के कारण होनेवाली अनेक दुर्घटनाओं में से एक दुर्घटना का करुण एवं मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। नाटककार एक यथार्थ वातावरण में नाटक

एक स्वाभाविक अन्त की सृष्टि करने में सफल हुआ है। आशा, वासु, उसके पिता आदि जैसे पात्र हमें प्रतिदिन समाज में मिलते हैं।

इसी नाटककार की रचना 'पेल्लि पंदिरि' में भी दहेज की ही समस्या का चित्रण है। दहेज की कमी के कारण वर के पिता विवाह को रोकना चाहते हैं तो वधु के भाई का दोस्त उनसे विवाह कर सबके सम्मुख एक आदर्श प्रस्तुत करता है।

6.1.3 श्रीमती मालती श्रीखण्डे ने अपने नाटक 'दहेज' में समस्या के साथ-साथ उसका एक समाधान भी प्रस्तुत किया है। इनकी नायिका सुधा एक पढ़ी-लिखी युवती है तथा वह नौकरी भी करती है। दहेज के कारण उसकी शादी नहीं हो पाती है। विनोद से वह प्रेम करती है किन्तु विनोद के अभिभावकों को दहेज काफी अधिक मात्रा में चाहिए। विनोद के माता-पिता दहेज इसलिए चाहते हैं क्योंकि "लड़के को पढ़ाने-लिखाने में उन्हें जो धन खर्च करना पड़ता है उसके बदले में उन्हें क्या लाभ?"[22] ये ऊपर से ढोंग की बातें कहते हैं, "दहेज लेना हमारी पूर्व परम्परा है। हमारी प्राचीन संस्कृति का अंग है। हम नहीं चाहते कि इस प्राचीन परम्परा को तोड़कर इस आर्य संस्कृति में कालिख पोत दें।"[23]

विनोद की माता कहती है "जिसके पास पाँच हजार रुपये निकल सकते हैं, उसके पास दो हजार रुपये का सामान नहीं निकल सकता क्या?'' मेरे घर चार औरतें आयेंगी उन्हें मैं अपने लड़के के ससुराल से मिली कौन सी चीज दिखाऊँगी?"[24]

विवाह लड़की के लिए जितनी आवश्यकता है, लड़के के लिए भी उतनी ही। किन्तु सारा बोझ केवल लड़की के माता-पिता पर ही रहता है। ऊपर से विनोद के चाचा सुधा के पिता को धमकी देते हैं कि दहेज दिये बिना आपकी लड़की की शादी कैसे होगी? यह हम भी देखेंगे। किन्तु विनोद होशियारी से एक नाटक रचता है। शादी के बाद वह अपने माता-पिता के साथ घर जाने के लिए इन्कार कर देता है क्योंकि पैसे लेने के कारण वह सुधा को बिक गया है। अब उस पर सुधा को ही पूरा अधिकार है। तब बड़ों की आँखें खुलती हैं। किन्तु इस समाज में कितने ऐसे व्यक्ति हैं जो समस्या को हल करने का प्रयत्न करते हैं।

श्रीमती मालती श्रीखण्डे ने विनोद जैसे न्यायप्रिय एवं साहसी युवक का चरित्र देकर एक नया आदर्श प्रस्तुत किया है। यह एक बड़े व्यावहारिक समाधान की ओर सफल संकेत है। वास्तव में यह सुधार केवल विनोद जैसे युवकों के साहस से ही सम्भव हो सकता है।

6.1.4 दहेज—दहेज की समस्या के कारण एक समूचे परिवार का टूट जाना इस नाटक में न्यादर सिंह बेचैन ने चित्रित किया है।

"गरीब होने के कारण उमाशंकर की तीन लड़कियों में से किसी का विवाह नहीं हो पाता। किसी प्रकार घर गिरवी रखकर वे एक पुत्री का विवाह करते हैं। किन्तु पर्याप्त दहेज न देने से पुत्री को ससुराल में कष्ट दिया जाता है। दूसरी लड़की पिता की गरीबी देखकर आत्महत्या करती है। तीसरी लड़की पिता के ऋण चुकाने के लिए फिल्म हीरोइन बनने के लोभ में गुण्डों के हाथों पड़कर वेश्या बन जाती है।"[25]

इस प्रकार नाटककार ने एक पूरे परिवार की आहुति का चित्र प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार शादी के बाद भी पर्याप्त दहेज न मिलने के कारण नारी को जो कष्ट

सहने पड़ते हैं उसका उदाहरण हमें **सोने की जंजीरें**[26] नाटक में मिलता है।

दिवाकर तथा रजनी एक ही कालेज में पढ़ते हुए एक-दूसरे से शादी करने का इरादा कर लेते हैं। दिवाकर एक धनी सेठ का पुत्र है। रजनी के पिता सामान्य गृहस्थ होते हुए भी अपना मकान गिरवी रखकर शादी में दहेज देते हैं। किन्तु दिवाकर के माता-पिता दोनों इस छोटी-सी दहेज राशि से असंतुष्ट रहने के कारण पल-पल उसे सताते ही रहते हैं। रजनी दुखित रहती है, "विधाता ! तू भारत में नारियों को जन्म ही क्यों देता है ? हिन्दू घरों में लड़कियों के बदले अगर पत्थर पैदा होने लगें तो ही अच्छा है।"[27] दिवाकर अपने माता-पिता के विरुद्ध कुछ नहीं सोच सकता। ऊपर से रजनी को ही धमकी देता है, "ताली एक हाथ से कभी नहीं बजती रजनी। वे कुछ कठोर अवश्य हैं, परन्तु कुछ न कुछ कसूर तुम्हारा भी जरूर होगा।"[28] सास और ससुर उसको बाहर भगाने का प्रयत्न करते हैं तो रजनी के पिता पल्ला पसारकर प्रार्थना करते हैं कि ऐसा न करें। किन्तु अपमानजनक स्थिति के कारण वे मर जाते हैं। दिवाकर भी घर की परिस्थितियों से तंग आकर घर से निकल जाता है। अब रजनी भी जहर खाकर आत्महत्या कर लेती है। रजनी का भाई किसी तरह इन लालचियों को संतुष्ट करने के लिए धन जुटाकर लाता है और दिवाकर की भी तब तक आँखें खुल जाती हैं किन्तु लाभ क्या ? जब चिड़िया चुग गयी खेती। रजनी का भाई पिघल जाता है और दिवाकर से कहता है, "एक दिन वह था जब वह तुम्हारी मुहब्बत में पागल थी और तुम उसे ठोकर मारते थे, तुम पर वह जान देती थी और तुम अपने माँ-बाप के कहने में आकर उसकी जान लेने पर तुले बैठे थे। तुम्हारे माँ-बाप को दौलत से प्यार था और तुम्हें उनकी भक्ति से···।"[29]

अब पैसे तो बहुत सारे हैं किन्तु वे रजनी को वापस नहीं लायेंगे। बड़ों की मूर्खता ने "लालच के फन्दे में फँसकर अनमोल रत्न गँवा दिया, कागज के बेजान पुर्जों के लोभ में एक जीती-जागती देवी के प्राण ले लिए, एक मुहब्बत की मूरत, उदारता की प्रतिमा को मिट्टी में मिला दिया।"[30]

दहेज की कुप्रथा भारतवर्ष में पर्याप्त पुरानी हो गयी है। लगभग सारे भारत में आज भी यह किसी न किसी रूप में विराजमान है। समय, समाज व स्थितियों के कारण इसका रूप थोड़ा बहुत बदला है पर मूल समस्या ज्यों की त्यों है। अतः सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में कुछ कम या अधिक स्थान मिलता रहा है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी व तेलुगु नाटककारों ने भी अपनी लेखनी से इस पर आघात किया है। साहित्य की दृष्टि से वे पर्याप्त सफल रहे हैं। काश, हमारा कम से कम सुधी समाज ही इस साहित्य से कुछ सीख सकता।

6.2 पेशे में रहनेवाली नारी की समस्याएँ

आज की बदलती हुई परिस्थितियों में नारी को अपने घर की चारदीवारी से बाहर आकर अपने आपको आर्थिक रूप से स्वतन्त्र बनाना अनिवार्य हो गया है। वह पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाती हुई सभी क्षेत्रों में प्रवेश कर रही है। पेशे में जाने के कई कारण दिखायी देते हैं। नारी अपने आपको आर्थिक रूप से स्वतन्त्र बनाना चाहती है। कभी-कभी

अपने परिवार का निर्वाह करने के लिए बाध्य होकर वह धनोपार्जन करती है। कुछ अन्य कारणों से भी है। इस प्रकार से आज की नारी दुहरा दायित्व निभा रही है। "घर में गृहस्वामिनी, बहन, पुत्री आदि के रूप में जहाँ वह गृहकार्य सम्भालती है, वहीं बाहर कार्य कर अर्थोपार्जन में भी सहयोग देती है। फिर भी जो कृतज्ञता, सम्मान एवं सद्व्यवहार उसे मिलना चाहिए वह नहीं मिलता।"[31] आज भी स्थिति कुछ ऐसी है कि "एक ओर तो पुरुष अपना शासन रखना चाहता है और दूसरी ओर नौकरी के कारण नारी आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्र एवं आत्मनिर्भर हो जाती है, जो एक बड़ी हद तक उसे सामाजिक स्वतन्त्रता के लिए भी उकसाती है।"[32]

जब नारी घर से बाहर नौकरी आदि के लिए जाती है तो कई प्रकार के सन्देह पीछे लग जाते हैं। बहुतों को सन्देह होता है "वह अपनी घर-गृहस्थी सम्भाल नहीं सकेगी, अथवा उसका नैतिक पतन हो जायेगा, अथवा वह बच्चों का और घर का उत्तरदायित्व छोड़ देगी।"[33]

सबसे बड़ी समस्या सामाजिक सुरक्षा की है। नारी के बाहर कदम रखते ही उसके पीछे समाज की कुदृष्टि पड़ती रहती है। कुछ प्रकार के पेशे में न चाहने पर भी नारी अपने पतन को रोक नहीं सक रही है। "भारतीय पर्यवेक्षण समिति का मत है कि फिल्म संसार में काम करनेवाली तरुणियों और उनमें भी विशेषकर नवीन अभिनेत्रियों को अनैतिकता का शिकार बहुधा होना पड़ता है।"[34] चारों ओर अपने साथ काम करने वाले व्यक्तियों की दूषित प्रवृत्तियों से वह डरते-डरते अपना समय बिताती है। इन्हीं कारणों से जब एक नारी मर्दों के बीच काम करने आती है तो उसे पतित समझा जाना आश्चर्य की बात नहीं है। पुरुष उसे किसी न किसी तरह अपने जाल में फँसाने का भरसक प्रयत्न करते हुए दिखायी देते हैं। इन परिस्थितियों में स्त्री बाहर आने का साहस करेगी ? स्त्री की प्रगति के बिना देश की प्रगति कैसे होगी ?

एक दूसरा प्रश्न स्त्री की सुरक्षा का है। वह किसी भी व्यवसाय को अपनाये कुछ न कुछ पर-पुरुषों के सम्पर्क में उसे आना ही पड़ता है। चाहे वह अभिनय करनेवाली अभिनेत्री हो, चाहे वह वकील, डाक्टर, इंजीनियर या शासकीय अधिकारी हो अथवा घर में काम करनेवाली गृह-सेविका हो, अथवा कड़ी धूप और वर्षा में ईंट और गारा ढोने वाली मजदूरिन हो उसे पुरुष वर्ग के सम्पर्क आना ही पड़ता है। एक ओर उसे सहयोगी पुरुषों की लोभी दृष्टियों से अपने को बचाना होता है दूसरी ओर परिवार और समाज की सन्देह दृष्टि को झेलना पड़ता है। इस दुहरी सुरक्षा की समस्या से उसे अकेली ही जूझना पड़ता है। यह भारतीय सामाजिक वातावरण का विषम वैषम्य है।

कुछ नाटकों में इन समस्याओं को उभारा गया है, अब उनके उदाहरण प्रस्तुत हैं—

6.21 पतंग[35]

राधा एक सुन्दर युवती है जो एक छोटे से शहर के स्कूल में पढ़ाने आती है। अब तक उस स्कूल में केवल पुरुष ही थे। उसके बारे में जानने का कौतूहल वहाँ के पुरुष अध्यापकों में

इतना बढ़ जाता है कि वे अपने आप ही कुछ सोचने लगते हैं। एक अध्यापक वेंकटेश्वर्लु के अनुसार, "महानदियों की, महामुनियों की, पतिव्रताओं की और कुछ अध्यापिकाओं की जड़ें नहीं होतीं जैसे कुछ लोगों के वंश वृक्ष की जड़ें नहीं होतीं। यह जापानी गुड़िया यहाँ अधिक दिन तक टिक नहीं सकेगी।"[36]

उनके मतानुसार नौकरी में आनेवाली नारी शीलवती नहीं होती। उन्हें यह भी मालूम नहीं कि वह विवाहिता है या अविवाहिता। देखने में सुन्दर है इसलिए एक जाल फेंककर देखना चाहते हैं। यदि फँस गयी तो उनका भाग्य है। इसमें पुरुषों की आयु कोई बाधा नहीं डालती। जैसे अधेड़, विधुर वर्माजी, तीस-पैंतीस वर्ष के कांताराव और वेंकटेश्वर्लु तथा ऊपर से केवल ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले हनुमन्त। सबका उत्साह समान है। एक गर्ल फ्रेंड चाहिए—जिसके साथ वे घूम-फिर सकें।

वर्माजी पहली बार ही टीचर्स रूम में जान-बूझकर राधा से टकरा जाते हैं तो वह चुप रह जाती है। दुबारा उसके घर में ही एकान्त में उसका हाथ पकड़कर बकने लगते हैं—"तुम्हारे दर्शन होते ही मैं अपनी आयु को भूल गया।"[37] राधा उन्हें फटकारती है, "पहली बार जब आपका स्पर्श मुझे हुआ तो मैं जान गयी थी कि वह पाप से भरा हुआ है। आपकी आयु को देख मैं चुप रह गयी। आज आपने फिर से वही साहस किया। ऊपर से आप सभी लोगों को नीति और नियम का उपदेश देते हैं। मुझे मालूम है कि आप मेरी सुन्दरता का आस्वादन करने, बिना बुलाये ही मेरे घर आ गये। अब जाइये। दुबारा ऐसे आये तो मुझे आपको पाठ पढ़ाना पड़ेगा।"[38]

इसी घटना को दूसरा रूप देकर वर्मा फैलाते हैं कि राधा ने स्वयं मेरा हाथ पकड़ा, मुझे देख वह मुग्ध रह गयी तो मैंने उसे फटकारा। इसी प्रकार दूसरे व्यक्ति सिनेमा ले जाकर अथवा सैर के लिए ले जाकर अपने प्रेम को प्रकट करते हैं। अन्त में हनुमन्त भी उसका हाथ पकड़ते हैं। किन्तु कायर होने के कारण वे राधा को 'बहन' कहते हैं जिस पर वह ठीक कहती है—"बहन का रिश्ता जोड़कर आप अपने को धोखा देना चाह रहे हैं। अगर बहन मानते हैं तो हाथ पकड़ने में आप इस प्रकार क्यों घबरा रहे हैं? ऊपर से भातृ भाव प्रकट करते हुए पीछे से प्रणय कार्य करनेवाले नीचों को मैं अच्छी तरह पहचानती हूँ। आप मन में गन्दी वासनाओं को रख बाहर से भाई का नाता जोड़ रहे हैं।"[39]

राधा के बारे में ये सभी व्यक्ति दुष्प्रचार करते हैं कि वह एक कुलटा है, विलासिनी है, इस शहर के लिए वह एक बीमारी है, इसके कारण स्कूल की बदनामी होगी आदि-आदि। उनके अनुसार "पेशे में रहनेवाली नारी की अपनी प्रतिष्ठा क्या होगी?"[40] राधा इन सभी बातों को भूलकर उनसे ठीक ही ढंग से बर्ताव करती है। वे राधा के बारे में प्रधानाचार्य से भी कहते हैं। इन सभी का समाधान राधा के शब्दों में एक ही है—"मानव के वस्त्रों को पहनकर चलनेवाले पशु।"[41]

अन्त में राधा उन सभी को अपने घर बुला कर कहती है कि मैं एक विवाहिता नारी हूँ। मेरे पति के अनुसार पेशे में रहने वाली नारी अपनी शील की रक्षा नहीं कर सकती। मैं सिद्ध करना चाहती हूँ कि अगर स्त्रियाँ अपने हद में रहकर अपना काम करेंगी तो कुछ नहीं होगा। इसीलिए मैं यहाँ आयी। अपने पति के पढ़ी-लिखी, काम करने वाली

स्त्रियों के प्रति इस संदेह को मिटाना ही मेरा उद्देश्य है ।

सामान्यत: देखा जाता है कि अपने साथ काम करने वाली स्त्री के प्रति पुरुष वर्ग प्रायः दुष्प्रचार करता रहता है ।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में एक वेतन भोगी महिला की जटिल स्थिति का बड़ा ही यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है । एक ओर उसका अपना पति उसकी अपनी शील रक्षा की सामर्थ्य के प्रति शंकित है दूसरी ओर उसके सहयोगी पुरुष उसको वासनात्मक दृष्टि से देखते हैं । वे अपनी स्थिति या अवस्था को भूलकर उसे अपने खेलने के लिए खिलौना बनाना चाहते हैं । अपने उद्देश्य में सफल न होकर उसको लांछित एवं अपमानित करना आरम्भ करते हैं ।

वास्तव में ऐसी परिस्थितियों में किसी महिला के लिए कार्य करना कितना कठिन और कितना जोखम से भरा हुआ है ।

कभी कभी कुछ संस्थाओं के मालिक ही स्त्रियों पर अत्याचार करते हैं । इसका उदाहरण निम्न नाटक है ।

6.2.2 आमे निर्दोषि[41]

शान्ती से विजातीय विवाह करने के कारण गोपाल राव के माता-पिता उससे सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं । गोपालराव एक बेरोजगारी युवक रहता है । अत: शान्ती एक कम्पनी में छोटी-सी नौकरी ढूँढ़ लेती है । उसका मालिक एक बूढ़ा व्यक्ति है । आयु से बुढ़ापा आ गया है किन्तु वासनाओं में नहीं । इसीलिए शान्ती से कहता है—"या तो तुम मुझसे विवाह कर लो नहीं तो हम दोनों इसी प्रकार से छिप-छिपकर मिलते रहेंगे और दुनिया को यह बात जानने न देंगे । सारी सम्पत्ति की तुम मालकिन बनोगी ।"[42] किन्तु जब शान्ती उसके हाथ नहीं आती तो वह उसके बारे में दुष्प्रचार करने लगता है जिसे सुन गोपालराव के मन में शंका उत्पन्न हो जाती है और शान्ती की मिन्नतें भी न सुनकर उसे घर से बाहर निकाल देता है । उस अँधेरी रात में वह अकेली बाहर रह जाती है । अन्त में गोपालराव के दोस्त के कारण यह साबित होता है कि शान्ती निर्दोष है । उससे क्षमायाचना कर गोपालराव उसे अपने घर लाता है ।[43]

अगर इससे पहले ही शान्ती कहीं आत्मघात कर लेती तो क्या होता ? इस दुनिया में बहुत आसानी से किंवदन्तितों का प्रचार किया जाता है जिसका कुप्रभाव नारी के जीवन पर पड़ता है । नाटक का उद्देश्य स्वतः स्पष्ट है । नाटककार ने एक वस्तुस्थिति का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है और मार्ग-निर्देश भी किया है । गोपालराव के मित्र जैसे युवक समाज की स्थिति को सुधार सकते हैं ।

वेतन भोगी स्त्री की समस्या पर निम्न नाटक में एक नये ढंग से प्रकाश डाला गया है—

6.2.3 पनिमनिषि[44]

यह एक निम्नवर्ग की युवती की कहानी है । 'नागी' एक फैक्टरी में काम करनेवाले कुली

'एल्लय्या' की पत्नी है। कबीर के कथन को चरितार्थ करते हुए 'रूखा सूखा खाइके ठंड पानी पीव' दोनों अपना जीवन सुख से बिता रहे थे। एक दिन फैक्टरी मैनेजर के घर में नागी को काम करने के लिए बुलाया जाता है। नागी जब वहाँ जाना पसन्द नहीं करती है तो एल्लय्मा को उकसाया जाता है 'बीवी को तुम अगर इतना नहीं समझा सकते हो तो पुरुष जाति को ही अपमानित कर रहे हो।' [45] इस पर एल्लय्मा नागी से काम में जाने का हठ करता है।

पहले ही दिन मैनेजर की कुदृष्टि नागी की सुन्दरता पर जाती है। धन, आभूषण आदि कई प्रकार के लोभ उसे दिखाये जाते हैं किन्तु नागी वश में नहीं आती। इतने में फैक्टरी में एल्लय्या की टाँग टूट जाती है और वह लंगड़ा हो जाता है। इसका लाभ उठा कर मैनेजर मनोहर बाबू उसे चोरी के आरोप में जेल भेजने की धमकी देकर वश में कर लेता है। एल्लय्या को इसी समय नागी के बुरे चाल-चलन का समाचार मिलता है। वह अपने जात के पंचों को बुलाता है। नागी अपनी सफाई देती है "अब मुझे डाँटने से क्या लाभ ? जब मुझे दूसरे के घर जाना पसन्द नहीं था तो उसने ही भेजा। वहाँ मैनेजर ने मेरे ऊपर अत्याचार किया। जब हमें खाने के लिए ही नहीं था तो उसके उपचार के लिए पैसे कहाँ से ला सकती थी ? मुझे अपनी वासना के लिए नहीं किन्तु इन सब कारणों से पतित बनना पड़ा।"[46]

पंच एल्लय्या को समझाते हैं कि जो परिस्थितियों के कारण हुआ उसमें नागी का क्या दोष ? इसलिए उसे अपने घर में ही रखो। किन्तु एल्लय्या उस व्यभिचारिणी नारी को स्वीकार नहीं करना चाहता। इस पर नागी तड़प उठती है—"ऐसा अन्याय स्त्रियों के प्रति ही क्यों ? शराब के नशे में कई बार अन्य स्त्रियों के साथ घूमते हुए तुम्हें मैंने देखा। किन्तु मैंने पंचायत नहीं की। मैं अबला थी इसलिए मुझे सब सहन करना पड़ा।"[47]

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में एक निम्नवर्गीय कामकाजी स्त्री की यथार्थ स्थिति का चित्र प्रस्तुत करने में नाटककार को सफलता मिली है। हर फैक्टरी में एल्लय्या, नागी व मनोहर बाबू जैसे चरित्र देखे जाते हैं और सबके अपराधों का दण्ड भोगना पड़ता है निस्सहाय स्त्री को।[48]

6.2.3 महानटी[49]

नाटककार ने इस नाटक में एक रंगमंच पर अभिनय करनेवाली स्त्री तथा उसकी समस्याओं का चित्रण किया है। समाज उसे गौरव की दृष्टि से नहीं देखता। अपने चारों ओर के वातावरण में उसे सुरक्षा तथा स्वतन्त्रता बहुत कम मिलती है। उसके प्रति समाज में आदर भी बहुत कम रहता है।[50]

"नयी एक्ट्रेस"[51] नाटक में एक लड़की की कहानी है, जो स्क्रीन तक पहुँचने से पहले ही डायरेक्टर, रायटर, संगीतकार, चित्रकार ही नहीं रिश्तेदारों की कोठियों तक पहुँच जाती है।

यह एक अभिनेत्री के जीवन की विषाद भरी कहानी है। प्रसिद्ध अभिनेत्री मीना-कुमारी व मेरलिन मैनरो का जीवन अति विषादमय रहा है।

6.2.4 एक स्त्री के लिए घर से बाहर जाकर नौकरी करने जाने से पहले उसे घर में एक अनुकूल एवं स्वस्थ वातावरण मिलना चाहिए। पति के सहयोग के बिना पत्नी काम नहीं कर सकती है यदि वह करती भी है तो पल-पल पर उसे विघ्न-बाधाएँ झेलनी पड़ती हैं। उदाहरण के लिए "बिना दीवार के घर"[52] नाटक की नायिका शोभा है। उसे अपनी शक्ति मालूम है कि वह कालेज प्रिंसिपल का उत्तरदायित्व निभा सकती है। उसके पति अजित उसके व्यक्तित्व को न निखारने के प्रति सचेष्ट हैं और न उसके मार्ग में अवरोध ही उत्पन्न करते हैं—"कालेज चलाना और कालेज में पढ़ाना दो अलग बातें हैं। यह जयन्त है कि तुम्हें झूठ-मूठ रात-दिन आसमान पर चढ़ाने की कोशिश करता है।"[53] इस पर शोभा का उत्तर है "और तुम हो कि मुझे रात-दिन धरती पर घसीटने की कोशिश करते हो।"[54]

अजीत उन बहुत सारे व्यक्तियों का प्रतीक है जो पत्नी की थोड़ी सहायता करने का उद्देश्य उनका सबेरे-रात आरती उतारना ही समझते हैं। वे यह नहीं चाहते कि पत्नी का अपना अलग व्यक्तित्व विकसित हो। इसीलिए शोभा जैसी आधुनिक पढ़ी-लिखी पत्नी अनुभव करती है "लगता है जैसे जितना-जितना ऊपर से बढ़ती जा रही हूँ, भीतर से उतनी ही मेरी जड़ें कटती जा रही हैं। मैं अपनी धरती से उखड़ती जा रही हूँ।"[55]

आज के युग में नारी स्वतन्त्रता के नारे चारों ओर गूँज रहे हैं, किन्तु वास्तव में जब वह बाहर निकली है तो उसके सामने कितनी उलझनें उपस्थित हो जाती है।

प्रस्तुत नाटक में लेखिका ने एक मध्यम परिवार की जागरूक स्त्री जो जीविकोपार्जन के लिए नौकरी करती है, की सूक्ष्म स्तरीय बाधाओं जटिलताओं और विशेषताओं का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। भौतिक दृष्टि से वह सब साधन उपलब्ध कर लेती है परन्तु सूक्ष्म स्तर पर टूटती चली जाती है। उसे मीठी छुरी से धीरे-धीरे मारा जाता है न वह आह भर पाती है और न तड़प ही पाती है बस धीरे-धीरे घुलती रहती है। आज के समाज में ऐसी शोभाओं की भीड़ है।

अतः अन्त में यह कह सकते हैं कि पेशे में जानेवाली नारी के लिए घर और बाजार दोनों क्षेत्रों में अनुकूल वातावरण की आवश्यकता है। एक ओर घर में कामकाजी नारी के प्रति सहानुभूति चाहिए और कार्यालयों में स्त्री के साथ के पुरुष सहकर्मियों का सहज व्यवहार व सम्बन्ध कायम करने का प्रयत्न करना चाहिए। तभी समस्याएँ बहुत हद तक सुलझ सकेंगी।

6.3 परदे की समस्या

इस सृष्टि के प्रत्येक प्राणी के स्वस्थ जीवन के लिए स्वच्छ जलवायु एवं मुक्त वातावरण की आवश्यकता होती है। किन्तु कट्टर परदा प्रथा के कारण स्त्रियाँ जन्म-भर खुली हवा, स्वस्थ सूर्य प्रकाश एवं उचित वातावरण से वंचित रहती हैं। इस प्रथा की प्रबलता देखकर यह सन्देह होता है कि क्या स्त्रियाँ इस अनन्त विश्व के प्राणियों की कोटि में नहीं हैं? अगर हैं तो उनके प्रति इस प्रकार का अन्याय क्यों? कट्टर परदा प्रथा के कारण बाहर के क्या, अपने परिवार के ही इने-गिने व्यक्तियों के सामने वे आ सकती हैं। बाहर

जाती हैं तो सिर से पैर तक अपने आपको ढँककर या बन्द गाड़ियों में और कभी-कभी उनका यह बाहर जाना भी वर्जित होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि समाज का आधा एवं महत्त्वपूर्ण अंग अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रता से वंचित किया जा रहा है।

"ऋग्वैदिक काल में इस प्रथा का कोई आभास नहीं प्राप्त होता और न ऐसी कोई परिस्थिति ही प्रतीत होती है जिसके आधार पर कहा जाये कि यह प्रथा उस समय कभी रही होगी। उस समय कन्या के युवती होने पर ही विवाह-प्रथा की प्रणाली थी।··· विवाह के बाद वह (पत्नी) यज्ञ कार्य में भाग लेती थी।"[56]

बौद्ध काल में भी परदा नहीं हो सकता था क्योंकि स्त्रियाँ भिक्षुणियाँ बन, भिक्षुओं के साथ घूमती थीं। मुसलमानी आक्रमणों के साथ ही भारत में परदा प्रथा का प्रारम्भ हुआ ऐसा प्रतीत होता है। "संस्कृत साहित्य में अवगुंठन तथा अवगुंठनवती-नारी के उल्लेख मिलते हैं किन्तु कट्टटर प्रथा के प्रचलन का कोई प्रमाण नहीं मिलता।"[57]

मुसलमानी शासकों ने भारत में अपनी संस्कृति का प्रसार करना प्रारम्भ किया तो उसका प्रभाव उनके अधीनस्थ भारतीय समाज पर भी पड़ा। भारतीय ललनाओं को मुसलमान आक्रमणकारियों की क्रूर एवं अमानुषिक दृष्टि से बचाने के लिए यह आवरण हितकारी सिद्ध हुआ। यही कारण है कि यह प्रथा उन प्रदेशों में अधिक है जहाँ मुसलमानी आक्रमण अधिक हुए तथा जहाँ की स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक कोमल एवं सुन्दर होती थीं। सम्भ्रान्त कुलों में इस प्रथा के अधिक प्रचलन का भी यही कारण है। धीरे-धीरे यह प्रथा इतनी फैल गयी कि एक कुप्रथा बन गयी है। परदा प्रथा से नारी की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है। वह पूर्णतया पति की दासी बनी रह जाती है। उसकी शिक्षा-दीक्षा में भी बड़ी बाधा होती है। एक प्रकार से नारी समाज का पूर्ण विकास ही असम्भव हो जाता है। मनु के शब्दों में :—

"अरक्षिता गृहेरूढा : पुरुषैरास्तकारिभि :
आत्मानमातमायास्तु रक्षे युस्ता: सुरक्षिता :"[58]

अर्थात् पुरुषों के कारण गृह में बन्दिनी बननेवाली स्त्रियों को पूर्णतः सुरक्षित नहीं कहा जा सकता। जो अपनी आत्मा की रक्षा स्वयं करती हैं, उन्हें ही सुरक्षित कहा जा सकता है। महात्मा गाँधी के अनुसार, "नैतिकता की किसी ऊपरी आवरण से रक्षा नहीं की जा सकती उसे सहज रूप से आना चाहिए।"[59] यह प्रथा भारत में भी सार्वदेशिक नहीं है। दक्षिण में हिन्दू परिवारों में परदा प्रथा नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे अनैतिक हैं। इसीलिए गाँधीजी ने अनेक आन्दोलनों के साथ-साथ परदा प्रथा के विरुद्ध भी आन्दोलन प्रारम्भ किया था। बहुधा देखा यह जाता है कि समाज के व्यक्ति हृदय से इस प्रथा के विरोधी हैं किन्तु उसका खुलकर विरोध करने का उनमें आज भी साहस नहीं है। शोचनीय स्थिति यह है कि आज के इस वैज्ञानिक युग में पढ़ी-लिखी युवतियाँ भी बाहर जाते समय अपने आपको पूरी तरह ढक लेती हैं। मुसलमान स्त्रियों में 'बुरका' का प्रचलन लगभग सम्पूर्ण भारत में तथा सभी वर्ग के परिवारों में अभी तक है। इस रोग की चिकित्सा बिना भारतीय स्त्री समाज की प्रगति सम्भव नहीं। इसके कारण शरीर ही नहीं वरन् आत्मा भी रोग ग्रस्त हो जाती है।

इस प्रथा का ही एक रूप है स्त्री को बन्द ताले में रखना। पति अपनी पत्नी का अन्य पुरुषों के सामने आना भी पसन्द नहीं करते हैं। जैसे वे छुईमुई हों। इसीलिए स्त्रियों को घर के एकान्त में रहना पड़ता है। इसका अच्छा उदाहरण निम्न नाटक में है—

6.3.1 सुजाता[60]

नायिका सुजाता के पति विजय एक अध्यापक हैं। विजय सुजाता को चारों ओर से बन्द कर रखते हैं। सुजाता के शब्दों में, "इस आजन्म जेल में अपने भाग्य का दण्ड भुगत रही हूँ।...वे दिन रात, अन्धेरे उजाले चाहे जो भी कर सकते हैं, हमें उनसे कुछ पूछ सकने का अधिकार नहीं।"[61] यह है उनकी वैवाहिक स्थिति। कठपुतली की तरह उनके सन्देह की डोरियों में बँधी उस पत्नी को मुक्ति कहाँ ? किन्तु यह मुक्ति, "आसानी से क्या कोई सौंप देता है ? वह अपने हाथ से वसूल की जाती है, और सीधी अंगुली से भी नहीं।"[62] विजय यह कभी भी नहीं समझते कि इस प्रकार सुजाता को चारों ओर से बन्द रखना नारीत्व का घोर अपमान है।

उसकी इस दयनीय दशा पर द्रवित होकर एक दिन सुजाता के बचपन के साथी डा० बिशन उसके घर का ताला निकालकर सुजाता को इस बहाने उसके गाँव ले जाते हैं कि गाँव में सुजाता के पिताजी बीमार थे और सुजाता का वहाँ पहुँचना आवश्यक था। सुजाता को मुक्त करने के लिए बिशन ने यह कदम उठाया था। विजय को घर आने पर एक चिट्ठी मिलती है "अविश्वास का फल ले गया तुम्हारी स्त्री को।" विजय यद्यपि पढ़े-लिखे थे पर उनमें आदिकालीन गुफा-निवासी पुरुष की-सी मनःप्रवृत्ति अभी तक विद्यमान थी। संदेही पति अपने प्राण न्योछावर करनेवाली पत्नी का भी मूल्य नहीं जान सकता। सुजाता के साथ यही चरितार्थ हुआ कि "उस पर रोज जो सन्देह जमा किये, वे ही आज घनीभूत होकर उसे उड़ा गये।"[63] विजय को सुजाता के चले जाने से अधिक समाज में उनके सम्मान भंग की चिन्ता थी, इसीलिए तुरन्त ही वे सुजाता के मरने की घोषणा कर देते हैं।

स्वयं सुजाता को डा० बिशन के साथ इस प्रकार जाने में कुछ सन्देह उत्पन्न होता है अतः वह उससे अपना पीछा छुड़ाती है। बिशन उसे समझाने का प्रयत्न करते हैं—"वह तुम्हें एक अपराधी की तरह नित्य ताले में बन्द कर चले जाते हैं। मैं जानता हूँ तुम कितनी पवित्र हो। मैं उन्हें यही दिखाने को तुम्हें यहाँ तक ले आया हूँ कि ताले में बन्द होने पर भी तुम इतनी दूर तक बहकाई जा सकती हो।"[64] सुजाता अकेली पीहर जाती है। किन्तु पिता उसका मलिन वेष देख उसे पहचानना अस्वीकार कर देते हैं क्योंकि उसका श्राद्ध कर्म हो गया था। वे उसे भूत, प्रेत कह उसे अँधेरी रात में बाहर भगा देते हैं। "मार्ग में नदी और कुएँ नहीं थे कोई ? रेल की लाइन पर दौड़ता हुआ इंजन भी नहीं ?...जा तूने जहाँ अपना मुँह काला किया, वहीं चली जा, सिर ढाँककर और होंठ सीकर।"[65] बस हमेशा के लिए इस प्रकार पीहर के द्वार सुजाता के लिए बन्द हो जाते हैं। उसके पिता भी उसका करुण क्रन्दन सुनने का प्रयत्न नहीं करते। इस तरह बहकाई गयी नारी को जो अपवित्र समझता है उस समाज की कालिमा सबसे गहरी है। यदि उसने ऐसी नारी का

आदर करना न सीखा तो एक दिन सारा हिन्दुत्व डूब जायेगा इस अत्याचार में ।[66]

दर-दर भटकती हुई सुजाता पति के पास पहुँचती है, जब तक विजय का दूसरा विवाह रेखा से सम्पन्न हो गया होता है। पति से सुजाता प्रार्थना करती है "मैं अपना कोई अधिकार न माँगूँगी। सबकुछ उन्हीं को सौंप दूँगी···नौकरानी बनाकर रख लो। तुमने जैसे भी मुझे मारा है, उसी तरह मरी पड़ी रह जाऊँगी। एक टूटे हुए बर्तन और जीर्ण कपड़े के समान मुझे इस घर में किसी अँधेरे और सीलन भरे कमरे में तो रहने दो।—विस्मृत और विसर्जित।"[67] किन्तु घर से उसका एक बार कदम बाहर रखने के कारण पति उसे कलंकित ही मानता है और लात मारता है। सुजाता के पति और पिता दोनों पुरुष हैं—जिनमें से एक ने उसे मार दिया था दूसरे ने उसी पर उसका भूत खड़ा कर दिया। उन दोनों से अच्छी रेखा निकली जो एक नारी होने के नाते सुजाता को आश्रय देकर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करती है।

रेखा सुजाता को विजय से मिलाने का भरसक प्रयत्न करती है। थोड़ी समय के पश्चात् स्वयं विजय के मन में पश्चाताप होने लगता है। जब तक सुजाता को पति से मिलने का सुनहला अवसर मिलता है, तब तक उसे एक साँप काट लेता है। वह उसका दंश सहन कर लेती है क्योंकि "शायद वह पति द्वारा किये गये एक सती नारी के तिरस्कार से अधिक कोमल और ज्यादा मीठा था।"[68] अपने को निष्कलंक साबित कर सुजाता पति के समक्ष प्राण त्याग कर देती है। वह मरकर स्वतन्त्र हो जाती है। सुजाता को उसके पति ने "तिल-तिल घुलाकर मारा है। शरीर का जहर इतना तीखा नहीं जितना आत्मा का। तुम्हारे रोज के सन्देहों का अखण्ड धार से उसकी आत्मा कट चली।"[69]

इस प्रकार परदा-प्रथा के ही एक रूप—पत्नी को ताले में बन्द रखने की प्रवृत्ति का दुष्परिणाम नाटककार ने चित्रित किया है। अगर नाटक को सफलता की दृष्टि से देखें तो नाटककार को ऐसी स्थिति का चित्रण करना चाहिए था जिसमें विजय सुजाता पर अकारण सन्देह करता है तभी वह अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल हो सकता था।

6.4 विवाह-विच्छेद की समस्या

हिन्दू कोड बिल के अनुसार स्वतन्त्र भारत में विवाह विच्छेद सम्भव है। पुरुष तथा स्त्री दोनों तलाक के लिए न्यायालय में जा सकते हैं। कुछ परिस्थितियों में पति से पत्नी तलाक पा सकती है। इसे कानूनी मान्यता देकर पति के बहु विवाह एवं अन्याय पर नियन्त्रण रखा गया है। प्राचीन काल की तरह आधुनिक नारी के लिए न चाहने पर भी वैवाहिक जीवन की यातनाएँ सहन करना अनिवार्य नहीं है। अन्य कारणों के साथ-साथ शारीरिक अथवा मानसिक कष्टों के कारण भी तलाक ली जाती है।

किन्तु समाज में पति से बिछुड़ी नारी को सहानुभूति नहीं मिलती। उसे पतित समझ, विभिन्न प्रकार से उसकी निन्दा की जाती है। इतना ही नहीं, आर्थिक रूप से परतन्त्र होने के कारण पत्नी पति से दूर होना अधिकतर पसन्द नहीं करती। समाज में अकेली नारी के लिए सुरक्षा की भी कमी है। बच्चे हों तो उनकी समस्या भी कम विकट नहीं होती। इसीलिए बहुत कम स्त्रियाँ तलाक लेने का साहस करती हैं।

कहानी तथा उपन्यास की तुलना में बहुत कम नाटक इस समस्या पर लिखे गये प्राप्त होते हैं। एक हिन्दी व एक तेलुगु नाटक का उदाहरण प्रस्तुत है।

6.4.1 हिन्दू कोड बिल[70]

प्रस्तुत नाटक में डा० उमाशंकर भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विरोधी हैं। हिन्दू कोड बिल का फायदा उठाकर वे तीन औरतों को तलाक दे देते हैं। लक्ष्मी उनकी चौथी पत्नी है। वह भारतीय नारी—लज्जा, सेवा, धर्म-परायणता आदि गुणों से सम्पन्न साक्षात् देवी की मूर्ति है। वह पति को परमेश्वर मान उमाशंकर की सेवा में तत्पर रहती है। किन्तु उमाशंकर को लक्ष्मी के धर्म, व्रत, कथा, पूजा आदि से घृणा है और उसे भी वे छोड़ देना चाहते हैं। उनके स्वयं के शब्दों में—"अपनी इस भक्तिनी मीराबाई से तंग आ गया हूँ। जब देखो रामायण, जब देखो धर्म का प्रचार, जब देखो अपने पुराने ढर्रे के ही गीत सुनाती है···।"[71] बस यही कारण बन जाता है तलाक देने के लिए। उमाशंकर ही नहीं उसके दोस्त भी ऐसे ही हैं। वे भी अपनी सुविधा के लिए, मनमानी करने के लिए कोड-बिल का उपयोग करना चाहते हैं। उमाशंकर लक्ष्मी से बलात् चाभी छीन अलमारी से रुपये पैसे निकालकर क्लब जाकर गुलछर्रे उड़ाता है। उसे पूछने का भी अधिकार नहीं है। वकील जयनारायण भी पति-पत्नियों को भड़काकर तलाक दिलवाने के बहाने खूब धन कमाते हैं। इसी वकील के समक्ष उमाशंकर चाँदनी नामक फैशनपरस्त औरत (जो अपने पति को तलाक दे देती है) से विवाह कर लेते हैं। चाँदनी को क्लब में अन्य पुरुषों के साथ नाच-गान करते हुए देख उमाशंकर मना करते हैं। किन्तु चाँदनी अनसुनी कर देती है। इसी कारण वे दोनों भी अलग हो जाते हैं। लोग उमाशंकर को व्यभिचारी समझते हैं। लक्ष्मी अकेली अपने बच्चे के साथ दिन काटती रहती है। उमाशंकर को अब अपनी पत्नी की महानता समझ में आती है। वे उससे क्षमा याचना करते हैं। लक्ष्मी एक सच्ची भारतीय नारी की भाँति पति के सारे दुष्कर्मों को भूल क्षमा कर देती है। इसे हम भारतीय नारी की महानता ही नहीं, कभी-कभी दुर्बलता भी कह सकते हैं। इसी कारण वह कुचली जाती है।

6.4.2 बिडाकुलु[72]

इस नाटक की नायिका अरुन्धती एक आदर्श पत्नी है। उसका पति भी उससे बहुत प्रेम करता है। अरुन्धती की छोटी बहन एक आधुनिक सुशिक्षित युवती है जो अपने कम पढ़े-लिखे हुए पति से तलाक लेना चाहती है। उसकी इस मानसिक स्थिति का लाभ उठाकर उसका सहपाठी उससे अनुचित सम्बन्ध जोड़ता है। अपने बहन, पिता तथा भाई सभी के समझाने पर भी वह पति के साथ रहना स्वीकार नहीं करती है। वह अपने स्वार्थ के लिए अपने बहनोई के मन में सीता जैसी अपनी जीजी के प्रति सन्देह पैदा करती है। वह अपने पति और अपनी दीदी का अवैध सम्बन्ध जोड़ती है। अरुन्धती का पति पियक्कड़ बन जाता है। उसका सारा खेत उसके विरोधियों ने जला दिया था और उसके मन में अपनी पत्नी के प्रति सन्देह है। अरुन्धती जब पति को इस बुरे रास्ते से हटाने का प्रयत्न करती

है तो पति उसे धमकी देता है कि मैं तुम्हें तलाक दे दूँगा। यह सुन अरुन्धती अवाक् रह जाती है कि आनन्द और उसके बीच नीच सम्बन्ध हैं। लांछन लगानेवाले अन्य नहीं एक ओर अपनी सगी बहन और दूसरी ओर स्वयं पति। बस, इस स्थिति को और अधिक सहन करने की शक्ति न होने के कारण पति के न्यायालय जाने से पहले ही आत्महत्या कर लेती है।

ऊपर चर्चित दोनों नाटकों में पुरुष की सुविधा के लिए तलाक का उपयोग करना चित्रित है। इस प्रकार के कई उदाहरण आज के समाज में दिखायी दे रहे हैं।

6.5 समाज में सुरक्षा—इतिहास के पन्ने उलटने पर वह प्रतीत होता है कि समाज में अकेली नारी की सुरक्षा नहीं है। प्राचीन काल में यह सुरक्षा के अभाव के कारण ही (मुसलमानी आक्रमणों से) आठ साल की छोटी-सी आयु में कन्यादान कर दिया जाता था। आज के इस प्रगतिशील समाज में कन्याओं को शिक्षा के लिए या नौकरी के लिए या नहीं तो अन्य किसी आवश्यकता के लिए बाहर जाना जरूरी है। किन्तु निर्भय होकर नहीं। पल-पल पर अपनी सुरक्षा करने के लिए उन्हें तैयार रहना पड़ रहा है। कभी-कभी कन्याओं की चोरी कर अन्य देशों को भेजने के समाचार मिलते हैं। कहीं अकेली सफर करनेवाली युवती का अपहरण किया जाता है। इन सबकी कहानियाँ कितनी दर्दभरी रहती हैं सभी को मालूम है। उन्हें वेश्या वाटिकाओं में अपने शरीर को बेचकर जीना पड़ता है या नहीं तो केवल भीख माँगने योग्य बनाकर छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार की समस्याओं का चित्रण निम्न नाटकों में मार्मिक ढंग से किया गया है —

6.5.1 पगली[73] दीनू एक भिखारी है, जिसकी पोती रत्ना है। इस संसार में उनके और कोई नहीं है। दीनू अन्धा है तथा भीख माँगकर दोनों का पोषण होता है। वह रत्ना की शादी ब्याह के बारे में सोचने लगता है। वे दोनों सड़क के किनारे एक छोटी-सी जगह में अपना जीवन बिताते हैं। एक दिन म्युनिसिपलिटी के सिपाही आकर दीनू की झोंपड़ी को उजाड़ देते हैं क्योंकि वह सरकारी जगह है। उसी समय बाहर गया हुआ दीनू मोटर से टक्कर खाकर लाया जाता है। अब रत्ना को मजबूरी के कारण भीख माँगने जाना ही पड़ता है यद्यपि वह कहती है— "मुझसे लोगों की बकवास नहीं सुनी जाती। लोगों की निगाहों का शिकार नहीं हुआ जाता। मुझे हर कोई छेड़ता है…।[74] कोई नोट देकर उसे बुलाता है तो कोई टेढ़ी नजर से देखता है। उसके रूप पर दुनिया के व्यक्ति अपनी भूखी नजर रखते हैं। वह अपने बाबा की बीमारी के लिए दवा माँगने डाक्टर के पास जाती है, वहाँ उस पर बलात्कार किया जाता है। वह अपने बाबा के पास आती है तो लाश है। उसका सर्वनाश हो गया। किन्तु उसकी जिम्मेदारी रत्ना पर नहीं परन्तु "इस समाज के एक-एक इन्सान पर है। रत्ना लुट गयी है। रत्ना मर गयी है मानसिक रूप से। इसको सहन न कर सकने के कारण वह पगली बन दर-दर भटकती रहती है।"

नाटककार ने मार्मिक ढंग से अकेली युवती कन्या पर होनेवाले अत्याचारों का चित्रण किया है।

6.5.3 'सत्पत्'[75] नाटक में एक दुश्चरित्र व्यक्ति एक कुमारी के साथ बलात्कार करता है जिसके फलस्वरूप उसका सतीत्व भंग हो जाता है। वह समाज में अपना मुँह दिखाने लायक

नहीं रह जाती है। वह एक नवयुवक के समक्ष शादी का प्रस्ताव प्रस्तुत करती है। पहले तो वह आनाकानी करता है, किन्तु परिस्थितिवश शादी करने के लिए तैयार हो जाता है। विजय के पिता को जब यथार्थ स्थिति की जानकारी होती है तब उन्हें कष्ट होता है। अतएव इन सबसे बचने के लिए नायिका गायिका के रूप में परिवर्तित हो जाती है किन्तु वहाँ भी उसे गुण्डों और डकैतों का सामना करना पड़ता है।[76]

6.5.3 **प्रेम ज्योति**[77]—इस नाटक की नायिका ज्योति एक अनाथ युवती है। उसकी माँ अस्पताल में है और पिता जेल में। वह अपनी माँ की बीमारी की दवा के लिए तथा अपने पिता को छुड़ाने के लिए प्रयत्न करती है। इस स्थिति में एक डाक्टर, एक वकील, एक प्रोड्यूसर तथा राजू नाम के एक व्यक्ति से उसकी टक्कर होती है। ये सभी उसे एक जाल में फंसा लेते हैं। इन सबके बीच केवल मधु ही एक ऐसा व्यक्ति है जो उससे शादी करना चाहता है किन्तु मधु के मामा इसका विरोध करते हैं क्योंकि वे अपनी पुत्री के साथ मधु का विवाह करना चाहते हैं। इस प्रकार ज्योति जैसी निस्सहाय अबला इस समाज में अकेली जी नहीं सकती। उसे इस समाज के व्यक्ति अपने स्वार्थों के लिए भ्रष्ट कर देते हैं परिस्थितियों से विवश होकर जीने का दूसरा रास्ता न होने के कारण ज्योति आत्महत्या कर लेती है। यह अकेली ज्योति की कहानी नहीं, इस प्रकार की कई अबलाएँ हमारे सामने सजीव दिखायी देती हैं।

6.5.4 **प्रेमनगर**[78]—नाटक की नायिका प्रगति एक गरीब अध्यापक की पुत्री है। एक दिन जब वह अकेली घर लौट रही थी तो कुछ गुण्डे उसका अपहरण कर लेते हैं। उनका नायक प्रगति से बलात्कार कर उसे बाद में एक वेश्या बना देता है। किन्तु अन्त में प्रगति का विवाह होना दिखाकर नाटककार ने समाज के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया है।

समाज का स्वरूप दिन-प्रतिदिन इस प्रकार बदल रहा है कि अकेली ही नहीं पति के साथ होने पर भी उस पर अत्याचार होने की घटनाएँ नित्य हम देखते हैं। वह भी अगर परिस्थितियों के कारण निस्सहाय अबला है तो कठिनाइयों का कहना ही क्या है? सब उसकी दयनीय स्थिति का लाभ उठाना चाहते हैं। इन परिस्थितियों में कभी नारी अपना शील खो बैठती है तो कभी प्राण ही। विवाहिता होने पर भी उसे समाज में वह पूर्ण सुरक्षा नहीं मिलती जो स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक है। उदाहरणार्थ है तेलुगु नाटक—

6.5.5 **आका शनिकि निच्चेनलु**[79]—कस्तूरी का जन्म एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। फिर भी वह विवाह रघु नामक एक गरीब युवक से करती है। दोनों को एक-दूसरे के प्रति प्रेम है। भुजंग कस्तूरी का फुफेरा भाई है जो रघु का भी दोस्त है। इसी मित्रता के कारण भुजंग रघु तथा कस्तूरी के घर आता-जाता है। कस्तूरी को उसका यह आना-जाना पसन्द नहीं है। उसके ही शब्दों में "वह मेरा रिश्तेदार है। मुझसे ब्याहने के लिए उसके किये गये प्रयत्न विफल होने के कारण उसके मन में ईर्ष्या है और इसके कारण सम्भव है द्वेष भी हो। मुझे किसी भी प्रकार पाने का निश्चय भी उसने किया था। मुझे डर है कि अब वह उसका प्रयत्न न करे।"[80] किन्तु रघु को अपने मित्र पर सन्देह नहीं होता है तथा घर आने के लिए मना करने का साहस भी नहीं रहता है।

एक दिन उनके दुर्भाग्यवश रघु मोटर के नीचे गिर लँगड़ा हो जाता है। अब उसमें जीविकोपार्जन की शक्ति नहीं रहती अतः घर में चारों ओर गरीबी नृत्य करने लगती है। भुजंग यह अवसर पाकर कस्तूरी को पाना चाहता है। इसलिए रघु पर चोरी का आरोप लगवाकर जेल भिजवा देता है। कस्तूरी अकेली निस्सहाय बच जाती है। उसकी दशा देखने वाला कोई नहीं रहता है। भुजंग उसके पास आकर कहता है कि एक बार तुम मेरी बन जाओगी तो तुम्हारे सारे कष्ट दूर हो जायेंगे। रघु जेल से वापस आयेगा, उसकी चिकित्सा करवाऊँगा और उसे एक अच्छी-सी नौकरी भी दिलाऊँगा। चारों ओर से कस्तूरी के लिए विवशता रहती है। भुजंग भी उस पर दबाव डालता रहता है। वह विवशता के कारण 'हाँ' कह देती है और उससे पहले अपने पति को छुड़वाना चाहती है। भुजंग की सहायता के कारण रघु घर वापस आ जाता है किन्तु तब तक कस्तूरी भुजंग के भेजे हुए वस्त्र, फूल आदि स्वीकार कर तथा विष पीकर वह सुहागिन के रूप में मर जाती है।

आज भी समाज में न कस्तूरी जैसी असुरक्षित स्त्रियों की कमी है, न भुजंग जैसे लम्पटों की। न जाने कितनी दुखात्मक घटनाएँ इस प्रकार घटती हैं।

ऐसा ही एक उदाहरण है निम्नलिखित नाटक में—

6.5.6 स्वर्गम्-नरकम्[81]

इस नाटक की नायिका ललिता अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध प्रभाकर नामक युवक से प्रेम विवाह करती है। ललिता के पिता धन के लालच में उसका विवाह राय-बहादुर नामक अधेड़ व्यक्ति से करना चाहते हैं। हरिराम् नाम का व्यक्ति ललिता को पाने का प्रयत्न कर विफल हो जाता है। वह ललिता से अपमानित होने के कारण उससे बदला लेने का अवसर देखता रहता है। रायबहादुर तथा हरिराम् दोनों को ललिता के प्रति क्रोध है क्योंकि वे दोनों उसे पा नहीं सके।

विवाह के पश्चात् प्रभाकर तथा ललिता आनन्द से अपना जीवन बिताते रहते हैं। हरिराम् प्रभाकर से मित्रता कर उसे बुरे रास्ते में लाने में सफल होता है। प्रभाकर, जो कभी एक आदर्श युवक था, अब एक पियक्कड़ है। जब ललिता उसे मना करती है तो उसे अकारण ही मारना-पीटना शुरू करता है। वैद्यक शास्त्र पढ़कर भी बुरे जाल में फँसने के कारण प्रभाकर का पतन प्रारम्भ हो जाता है। कमाई कुछ न होने के कारण वह ललिता को उसके पिता से धन माँगने के लिए भेजना चाहता है। ललिता जैसी मानिनी स्त्री को यह अच्छा नहीं लगता है। प्रभाकर मार-पीटकर उससे कहता है "चाहे कुछ भी करो, पर मुझे चाहिए पैसे। किसी से भी माँगो। पैसे नहीं लाओगी तो और मार खाओगी।"[82] वह उसके आभूषण भी छीनकर ले जाता है।

ललिता के पास रोने के सिवाय उपाय भी क्या था? हरिराम् ऐसे ही अवसर की प्रतीक्षा में था। ललिता को पाने के लिए द्वार बन्द कर आता है और कहता है—"तुम अगर शोर मचाओगी भी तो तुम्हें कुछ लाभ नहीं क्योंकि मैंने द्वार बन्द कर दिया है। मेरे साथ तुम्हें एकान्त में देखकर पड़ोसी तुम्हें ही पतिता कलंकिनी कहेंगे। मुझे कुछ भी भय

नहीं। इसलिए मुझे समर्पण कर दो।"[83] पुरुष का यही गर्व है जो स्त्री को सदा निम्न दृष्टि से देखने में तत्पर रहता है। चाहे वह कैसा भी व्यवहार करे, समाज उस पर कलंक नहीं लगाता। नारी की प्रकृति के कारण निन्दा उसे ही सहनी पड़ती है। इस स्थिति में प्रभाकर आकर सच्चाई जान जाता है और ललिता को हरिराम् से बचाता है।

प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने यथार्थ चित्रण के साथ-साथ समाज के सामने आदर्श का संकेत भी दिया है जो सराहनीय है।

सन्दर्भ-संकेत

1. भारतीय सामाजिक संरचना और संस्कृति—डा० शम्भुरत्न त्रिपाठी, पृ० 201
2. वही
3. दहेज—एक सामाजिक अभिशाप (लेख) कमला सिंघवी—संस्कृति-संचिका, 52
4. वही
5. इंडियन वूमेन थ्रू एजेस—पी. थामस, पृ० 472
6. दहेज—नाटककार—जगदीश शर्मा, पृ० 50
7. वही, पृ.० 54
8. भारत नारी—नाडु नेडु—इंल्लिदल सरस्वती देवी, पृ० 30 से उद्धृत
9. नाटककार—जगदीश शर्मा
10. दहेज—नाटककार—जगदीश शर्मा, पृ० 40
11. वही, पृ० 46
12. वही, पृ० 46
13. वही, पृ० 47
14. वही, पृ० 48
15. वही, पृ० 63
16. वही
17. वही, पृ० 49
18. नाटककार—सीतंराजु वेंकटेश्वर राव (तेलुगु नाटक)
19. पेल्लि—नाटककार—सीतंराजु वेंकटेश्वर राव, पृ०38
20. वही, पृ०58
21. वही, पृ०60
22. दहेज, नाटक, पृ० 67
23. वही, पृ० 69
24. वही, पृ०113
25. हिन्दी नाटक कोश—डा. दशरथ ओझा,पृ० 215 के आधार पर
26. नाटककार—विश्वेश्वर दयाल 'शुक्ल'

27. सोने की जंजीरें, पृ०16
28. वही, पृ०29
29. वही, पृ०9
30. वही, पृ० 42
31. आधुनिक भारत में नारी का स्थान (लेख) शम्सुद्दीन, संस्कृति-संचिका, 53 से पृ० 24-25
32. सामाजिक संस्थाएँ और विघटन, प्रो० रांगेय राघव, प्रो० श्याम शर्मा, पृ० 40
33. नारी जगत्तु—इल्लिंदल —सरस्वती देवी, पृ० 1
34. सामाजिक समस्याएँ और विघटन—डा० रांगेय राघव तथा प्रो० श्याम शर्मा पृ० 65
35. तेलुगु नाटक—नाटककार—जगन्नाथ ।
36. पतंगं—नाटककार—जगन्नाथ, पृ०11
37. वही, पृ० 42
38. वही, पृ० 43
39. वही, पृ० 72
40. वही, पृ० 73
41. वहीं, पृ० 72
42. तेलुगु नाटक—नाटककार—पी० आदिनारायण मूर्ति
43. आमेनिर्दोषि—पी० आदिनारायण मूर्ति, पृ० 71
44. नाटककार—वी० एन० सूरी(तेलुगु नाटक)
45. पनिमनिषि—बी० एन० सूरी, पृ० 20
46. वही, पृ० 62
47. वही, पृ० 64
48. वही, पृ० 66
49. नाटककार—तोलेटी (तेलुगु नाटक)
50. महानटी—तौलेटी,
51. नाटककार—जगदीश शर्मा
52. नाटककार—मन्नू भंडारी (जिसका पहले अध्यायों में विस्तृत रूप से अध्ययन किया गया है)
53. बिना दीवारों के घर—मन्नू भंडारी, पृ० 43
54. वही
55. वही, पृ० 63
56. हिन्दू सामाजिक संस्थाएँ, शिवरत्न सहाय, पृ० 162
57: श्री सोशल ईविल्स—सुन्दरबाई मुक्तांकर (लेख) अवर काज से, पृ० 214
58. मनुस्मृति 9-12
59. वुमन एण्ड सोशल इन जस्टिस—एम० के० गाँधी, पृ० 94

60. नाटककार—गोविन्दवल्लभ पन्त
61. सुजाता—गोविन्दवल्लभ पन्त, पृ॰ 1
62. वही
63. वही, पृ॰ 4
64. वही, पृ॰ 10
65. वही, पृ॰ 25
66. वही, पृ॰ 27
67. वही, पृ॰ 39-40
68. वही, पृ॰ 94
69. वही
70. नाटककार—न्यादर सिंह बेचैन।
71. हिन्दू कोड बिल—न्यादर सिंह बेचैन, पृ॰ 20
72. नाटककार—कोडालिगोपाल राय
73. नाटककार—जगदीश शर्मा
74. पगली—नाटक, पृ॰ 17
75. नाटककार—तृप्तिनारायणलाल
76. हिन्दी नाटक कोश—डा॰ दशरथ ओझा, पृ॰ 675
77. तेलुगु नाटक—नाटककार—कर्पूरपु आंजनेयुलु
78. नाटककार—गरिकपाटि—तेलुगु नाटक
79. तेलुगु—नाटक—नाटककार, बी॰ आर॰ एस॰ राजू।
80. आकाशानिकि निच्चेनलु—बी॰ आर॰ एस॰ राजू, पृ॰ 24
81. तेलुगु नाटक—नाटककार—पी॰ बी॰ आचार
82. स्वर्गम्-नरकम्—पी॰ बी॰ आचार, पृ॰ 88-89
83. वही, पृ॰ 92

सप्तम अध्याय

उपसंहार

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आंखों में पानी।।"

मनु की सन्तान होने के करिण हम अपने आपको मानव कहने में गर्व अनुभव करते हैं। इस गर्व को सार्थकता तभी प्रदान होगी जब हम मनु की इस उक्ति "यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:"[1] को अपने सामाजिक जीवन का आदर्श मानें। मनु ने यह भी कहा है कि जिस कुल में स्त्रियाँ कष्ट पाती हैं या मानसिक अशान्ति अनुभव करती हैं, वह कुल शीघ्र ही बिनष्ट हो जाता है। यह नियम एक कुल के लिए ही नहीं, वरन् सारे देश तथा सर्व संसार के लिए भी चरितार्थ होता है। जिस समाज या देश में स्त्रियों का जितना सम्मान होता है, उस समाज या देश को उतना ही सुसंस्कृत माना जाता है। एक समय था जबकि नारी को आर्य संस्कृति में पुरुष के समान अधिकार, सभी क्षेत्रों में, प्राप्त थे। पुत्री, पत्नी, माता सभी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण था। [दे० प्रस्तुत प्रबन्ध (1.1)] विदुषी नारियों की कमी नहीं थी। धीरे-धीरे समय की गति से नारी भी किसी सम्पत्ति या वस्तु विशेष की तरह पुरुष के अधीन हो गयी। उसका कार्य क्षेत्र घर की चारदीवारी तक ही सीमित हो गया। [दे० प्रस्तुत प्रबन्ध] अर्थात् नारी का स्थान हृदय से नीचे होते हुए पैरों तक आ गया जहाँ से किसी भी क्षण उसे ठोकर मारकर निकाल दिया जाना सम्भव है। अन्य कई कारणों के साथ-साथ नारी की निरक्षरता, आर्थिक परतन्त्रता, पुरुष के बहु-विवाह तथा वेश्या वृत्ति के कारण नारी की स्थिति और भी हीन हो गयी।

इतना ही नहीं, कुछ विचारकों एवं दार्शनिकों ने स्त्री का स्थान अत्यन्त दीनहीन बना दिया। किसी ने नारी को नरक का मुख्य द्वार माना तो किसी ने अमृत जैसा लगने-वाला विष माना। कबीरदास, शंकराचार्य आदि दार्शनिकों ने स्त्री को 'माया' माना है जो जीव तथा ब्रह्म के बीच अवरोध उत्पन्न करती है तथा उससे दूर रहने की चेतावनी भी दी है। भारत में ही नहीं, विदेशों में भी नारी के प्रति यही दृष्टिकोण दृष्टिगत होता है। फारसी में स्त्रीवाचक शब्द 'ज़न' है। 'ज़न' का शब्दार्थ है जिसे कूटा-पीटा जाये।

एक फारसी शायर ने लिखा है कि—अगर औरतें नेक होतीं तो इनका नाम 'मज़न' होता क्योंकि ये कूटने-पीटने से ही ठीक रहती हैं। इसलिए इनका नाम ज़न है।[2] यूनान में स्त्रियों का स्थान शाक-भाजी के बराबर था। कभी-कभी सरकारी कर चुकाने में असमर्थ प्रजा द्वारा अपनी पत्नियों को भेजने का उल्लेख भी पाश्चात्य इतिहास में मिलता है।[3]

किन्तु जिस देश में स्त्रियों को समाज में गौरव नहीं दिया जाता है, वह देश अपने आपको सभ्य नहीं कह सकता। इस तथ्य को जानने के ही कारण बीसवीं शताब्दी में पुनः स्त्रियों को पुरुषों के समान सम्मान देने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। स्त्रियों का सम्मान केवल पुरुष ही नहीं, वरन् स्त्रियों को भी अपने आपको सम्मान करना सीखना है। आज के युग को हम नारी जागरण का युग कह सकते हैं। यहाँ इस बात को विस्मृत नहीं करना चाहिए कि स्त्री की स्वतन्त्रता और समानता की लड़ाई अकेली स्त्री की ही लड़ाई नहीं है। न यह स्त्री-पुरुष के बीच की लड़ाई है। मूलतः यह लड़ाई है संस्कारों के साथ, तौर तरीकों के साथ। यह भी भूलना न चाहिए कि स्त्री की स्वतन्त्रता और समानता के बिना पुरुष स्वयं कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता।

15 अगस्त 1947 को भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की। इसका प्रभाव सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियों के साथ कला तथा साहित्य पर भी पड़ा। स्वतन्त्र भारत में स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए भरसक प्रयत्न सरकार की ओर से किये जा रहे हैं। हिन्दू-कोड बिल में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार देने के प्रयत्न किये गये हैं। उक्त बिल के अनुसार पारिवारिक सम्पत्ति में स्त्री को भी अधिकार है। वह गोद भी ले सकती है। स्त्रियों के स्वास्थ्य तथा अन्य सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से गर्भपात को भी वैध घोषित किया गया है। दहेज प्रथा कानूनन् अवैध है। स्त्रियों की सुरक्षा के लिए पुरुषों के बहुविवाह पर नियन्त्रण किया गया है। विवाह विच्छेद को वैधानिक मान्यता दी गयी है। नारी शिक्षा तथा स्वास्थ्य के लिए विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ दी जा रही हैं। आज भारत देश में उच्च शिक्षा प्राप्त कर नौकरी या अन्य व्यवसाय करनेवाली वनिताओं की संख्या तीन करोड़ से अधिक है। परिवार नियोजन भी स्त्री के लिए लाभदायक माना गया है।

इन तथ्यों पर दृष्टिपात करने पर हम यह अनुभव करते हैं कि नारी को अब कमी क्या है? सभी क्षेत्रों में नारी आगे बढ़ रही है। किन्तु यह सब सिक्के का एक पक्ष है। दूसरी ओर वह यथार्थ सामने आता है जिसको हम नित्यप्रति जीवन में देखते हैं। ऊपर जिन बातों का उल्लेख किया गया है उन सबके दर्शन केवल पुस्तकों के पन्नों में होते हैं। वास्तव में आज भी नारी की समस्याएँ बहुत कुछ ज्यों की त्यों हैं। बदलती हुई परिस्थितियों में कुछ सुविधाओं के साथ-साथ कुछ समस्याओं के भी अधिक हो जाने का आभास होता है।

साहित्य समाज की उपज होती है। वही साहित्य सहज साहित्य माना जाता है, जिसमें जीवन का सही चित्रण किया जाता है। साहित्यकार अपनी कुशल लेखनी से समाज का विभिन्न प्रकार से चित्रण कर यथार्थ स्थिति को पाठकों के सामने रखने का

प्रयत्न करता है। नाटक केवल श्रव्य ही नहीं वरन् दृश्य भी होने के कारण अन्य विधाओं से अधिक प्रभावशाली होते हैं। नाटकों का मनोरंजन के लिए ही नहीं, शिक्षा के लिए भी उपयोग किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और तेलुगु सामाजिक नाटकों में चित्रित नारी समस्याओं के तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है तथा तेलुगु दक्षिण भारत की प्राचीन भाषाओं में से एक है। आशा है कि इस प्रकार के अध्ययन से एक ही देश के निवासी एक-दूसरे के रीति-रिवाज ही नहीं वरन् सामाजिक नियम तथा समस्याओं से भी परिचित होंगे। यह शोध कार्य भी उसी ओर एक कदम है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की छोटी-सी सीमा में नारी की विभिन्न समस्याओं के चित्रण के अध्ययन करने का यथा सम्भव प्रयत्न किया गया है। फिर भी यह अनुभव होता है कि बहुत कुछ शेष रह गया है। इसका कारण शायद यह है कि समस्याओं का अन्त नहीं और विशेषकर नारी समस्याओं का। आशा है कि नाटककारों ने जिन कुप्रथाओं को सामने लाने का प्रयत्न किया है, उसे पढ़ और देख आज के समाज में आवश्यक सुधार आ सकेंगे।

सामाजिक समस्यायें प्रायः देश भर में एक ही हैं, विशेषकर नारी सम्बन्धी समस्यायें। भाषा चाहे जो भी हो, किन्तु मूल समस्यायें एक ही होने के कारण हिन्दी तथा तेलुगु दोनों भाषाओं के नाटकों में समानता दिखायी देना स्वाभाविक है। साथ-ही-साथ अपनी प्रादेशिक सीमाओं के प्रभाव के कारण कुछ भिन्नता भी गोचर होना उतना ही स्वाभाविक है। पिछले अध्ययन के पश्चात् स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और तेलुगु नाटकों में चित्रित नारी समस्याओं के कुछ तथ्य हमारे सामने आते हैं जिनको अति संक्षेप में इस परिच्छेद में, उपसंहार रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

आज भी भारतीय परिवार में कन्या का जन्म उतना हर्षदायक नहीं माना जाता है, जितना पुत्र का। कन्या की पढ़ाई-लिखाई के लिए आज के युग में माता-पिता अपेक्षाकृत अधिक अग्रसर होते हुए दिखायी दे रहे हैं और युवतियां उच्च शिक्षा पाकर समाज में गौरवपूर्ण स्थानों पर नियुक्त की जा रही हैं। फिर भी कन्या के जीवन में विवाह एक महत्वपूर्ण घटना है। इसी कारण दोनों भाषाओं के अनेक नाटक युवतियों के प्रेम तथा विवाह की समस्या पर लिखे गये हैं। इस प्रेम तथा विवाह से ही नाना प्रकार की समस्याएँ जन्म लेती हैं। सामान्य रूप से कन्याओं को अपने इच्छित व्यक्ति से प्रेम एवं विवाह करने के बहुत कम अवसर मिलते हैं। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक दीवारों को तोड़ना उनके लिए अधिक कठिन है। अधिकतर कन्यायें अपना हृदय एक व्यक्ति को समर्पित कर दूसरे व्यक्ति से विवाह करने से अच्छा स्वयं का अन्त कर समस्या का अन्त कर लेना ही समझती हैं। अतः वे आत्महत्या कर लेती हैं। अथवा जीवित रहकर भी मृत्यु-तुल्य जीवन व्यतीत करती हैं। कन्या के माता-पिता के लिए साधारणतया समाज में अपने गौरव और सम्पत्ति का महत्व अधिक होता है—और वे अपने सामाजिक स्तर के अनुरूप उसके लिए वर भी ढूंढ़ते हैं। कन्या और उसके अभिभावकों के इस विरोधी दृष्टिकोणों के कारण प्रेम और विवाह से सम्बन्धित समस्याओं का चित्रण नाटकों का प्रधान विषय है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और तेलुगु नाटकों में इनके उदाहरण पूर्व पृष्ठों में चर्चित 'असफल प्रेम' [2.1]

शीर्षक में दिये गये हैं। हिन्दी नाटकों की नायिकायें—शकुन्तला [2.1.1], संध्या [2.1.2] व तेलुगु नाटकों की नायिकायें शारदा [2.1.3], जगदा [2.1.4], चन्द्रकला [2.1.5] आदि का प्रेम वैवाहिक बन्धन में बँधने का गौरव न पा सका। जात-पाँत, बिरादरी तथा अन्य सामाजिक कारण एक दीवार बन गये। समाज एवं व्यक्तिगत बन्धनों के कारण उनका प्रेम सफल न हुआ अतः उन्होंने आत्महत्या ही कर ली। प्रेम की सच्ची उपासना में उन्हें केवल "कुलटा" की ही उपाधि मिली क्योंकि उनके माता-पिता ही प्रेम और वासना के भेद को पहचान नहीं सके। यह समस्या भारत में ही नहीं पश्चिम देशों में भी उपस्थित है। प्रश्न यहाँ यह है कि क्या समाज सीधे-सच्चे स्वाभाविक प्रेम को सहज रूप से स्वीकार कर नहीं सकता? आशा है कि इस प्रकार की रचनाओं से समाज में परिवर्तन आयेगा।

प्रेमी से धोखा खाने के कारण युवतियों की जटिल स्थिति के चित्रण दोनों भाषाओं के नाटकों में प्राप्त होते हैं। क्षणिक आवेश के कारण नारी के जीवन पर जो कलंक लगता है वह कभी नहीं मिटता। स्त्री को पुरुष अपनी वासना का साधन मात्र मान लेता है तभी इस प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। पाप में स्त्री-पुरुष दोनों समान रूप से भागी होने पर भी परिणति नारी के लिए ही कटु होती है। "त्रिकोण की भुजाएँ" नाटक [2.2.1] की नायिका नमिता को उसका प्रेमी ऐसा ही धोखा देता है। इतनी पढ़ी-लिखी होने पर भी वह आत्महत्या करने के लिए तैयार हो जाती है। ऐसी शिक्षित युवती भी इस प्रकार सोचती है तो सामान्य युवतियों का क्या कहना? आशा [2.2.2] निर्मला [2.2.3] व देवकी [2.2.4] सभी दर-दर भटकती हुई, ठोकरें खाती हुई अपना जीवन चलाती हैं। कोई सहृदय व्यक्ति उनका उद्धार करे तो प्रसन्नता की बात है। ऐसी नारियों को समाज आश्रय नहीं देता और उनकी सन्तान को अवैध घोषित कर दिया जाता है। आश्चर्य इस बात का है कि युवक यौवन के दिनों में युवती को निस्सहाय छोड़ देता है। किन्तु कभी-कभी अपनी वृद्धावस्था में उस सन्तान को किसी तरह अपने पास लाने की चेष्टा करता है। चाहे न्यायालय में लड़कर ही क्यों न हो। क्योंकि वह उस पर अपना अधिकार समझता है। इसका उदाहरण हिन्दी नाटक "न्याय" [2.2.4] तथा तेलुगु नाटक "अनामकुल" [2.2.3] में प्राप्त होता है। अब माँ न उस पुरुष के साथ जा सकती है, न अपने बच्चे की प्रगति के मार्ग में बाधा ही बन सकती है। दोनों नाटकों में नायिकायें अपने पुत्र को पिता को विवशता के कारण समर्पित कर स्वयं मार्ग से हट जाती हैं।

आधुनिक महिला बौद्धिक एवं मानसिक रूप से विकास कर रही है। वह जानती है कि उसे क्या चाहिए। इसीलिए आधुनिक नारी अपने आपको न पुरुष की पूजा की पात्री बनाना चाहती हैं, न संभोग की वस्तु अथवा मात्र सम्पत्ति। वह ऐसी जीवन-संगिनी के रूप में रहना चाहती है जो जीवन के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद में पुरुष के साथ समान स्तर पर कंधा से कंधा मिला सके। अविवाहिता कन्या उसी प्रकार के वर की खोज में रहती है और विवाहिता नारी भी पुरुष से उसी प्रकार का साथ चाहती है। किन्तु युगों से चले आ रहे सामाजिक नियमों के कारण पुरुष आज भी स्त्री को जीवन-संगिनी मानने को तैयार नहीं है। इस प्रकार के वातावरण में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में

तनाव आना कोई विचित्र बात नहीं है। स्त्री अपने अधिकार चाहती है, पुरुष उसे देना नहीं चाहता अतः संघर्ष उत्पन्न होता है। "उड़ान" [2.3.1] नाटक की नायिका माया आधुनिक युवतियों का प्रतिनिधित्व करती है। जो यह कहती है—न मैं दासी हूँ, न एक देवी, न खिलौना। मैं एक संगिनी बनना चाहती हूँ। जब उस पर उसका प्रेमी मदन सन्देह करता है तो वह अकेली ही जीना श्रेष्ठ समझती है। वैवाहिक सम्बन्धों में भी इसी प्रकार के वैषम्य दिखायी देते हैं। पत्नी की बौद्धिक सत्ता के कारण समाज में उसका सम्मान है, किन्तु घर में पति उसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं। वह कितनी भी सुशिक्षित क्यों न हो किन्तु पति तो उसे एक कठपुतली ही मानता है। इसी कारण "बिना दीवारों का घर" नाटक [3.1.2] की नायिका शोभा अपने पत्नीत्व एवं मातृत्व का गला घोंटकर पति से बिछुड़ जाती है। इसका कारण है उसकी मानसिक अशान्ति, अन्यथा कौन स्त्री चाहती है कि उसके वैवाहिक बन्धन में विच्छेद आये? तेलुगु में "सुशील पेल्लि" नाम के नाटक (नाटककार—देवरकोंड बाल गंगाधर तिलक) की नायिका एक से प्रेम कर, दूसरे से विवाह करने के लिए विवश हो जाती है क्योंकि उस व्यक्ति से उसके पिता को आर्थिक सहायता मिली थी। किन्तु बाद में जब पति तथा प्रेमी दोनों उसे ठुकराते हैं तो स्वतन्त्र रूप से जीने का निश्चय कर चली जाती है।

अकेली युवती जब जीविका चलाने के लिए प्रयत्न करती है तथा आर्थिक कठिनाइयों में फँस जाती है तो कभी-कभी उसका पतन हो जाता है। उसका दोष न होते हुए भी इसके लिए समाज और उसके घर के व्यक्ति दोषी उसे ही ठहराते हैं और हत्या तक कर देते हैं। "अन्नाचेल्लेलु" [2.4.1] नाम के तेलुगु नाटक में निर्धनता एवं आर्थिक कठिनाइयों से पतित नायिका की हत्या स्वयं उसका भाई ही कर देता है। इस प्रकार के उदाहरण नाटकों में ही नहीं, कहानी तथा उपन्यासों में भी प्राप्त होते हैं।

समाज में कई प्रकार के अनमेल विवाह होते दिखायी देते हैं। कभी-कभी माता-पिता की विवशता, कभी-कभी धन के लालच के कारण या अन्य किसी सामाजिक बन्धन के कारण ऐसे विवाह सम्पन्न हो जाते हैं। "वीणा" का विवाह अधेड़ व्यक्ति से दहेज न दे सकने के कारण "सगाई" [2.5.1] नाटक में हो जाता है, तेलुगु भाषा के "चिल्लर कोट्टु चिट्टेम्मा" [3.5.3] नाटक में भी ऐसी ही कथा है।

कन्या के लिए योग्य वर से सम्पत्ति को अधिक समझ 'अनमेल विवाह' करने के उदाहरण हिन्दी के नाटक 'कलंक या वेश्या' [5.1.1] में, तथा तेलुगु के 'स्वर्गम्-नरकम' [2.5.2] 'प्रेमालयमु' [4.2.1] 'सन्देशमु' [4.2.2] नाटकों में मिलते हैं। उसका परिणाम कितना विध्वंसकारी होगा—अभिभावकों को यह अनुभव नहीं होता। इस प्रकार के अनमेल विवाहों के दुष्परिणामों का चित्रण 'कैद' [3.5.1] 'कन्या का तपोवन' [3.5.2] आदि हिन्दी नाटकों में तथा तेलुगु के 'कलावती' [3.5.4] और 'चिल्लर कोट्टुचिट्टेम्मा' [3.5.3] नाटकों में मिलते हैं। कभी स्त्री का पतन हो जाता है [कलावती] कभी चारों ओर की परिस्थितियों के कारण उसकी हत्या कर दी जाती है [चिल्लर कोट्टु चिट्टेम्मा], कभी अपने मन में घुटन अनुभव करती हुई वह मानसिक रूप से रोगग्रस्त [कैद] हो जाती है। कभी अवस्था में बहुत अधिक अन्तर होने के कारण वह शीघ्र ही विधवा बन जाती है

[प्रेमालयमु, सन्देशमु] और उसे सारा जीवन आँसुओं में ही बिताना पड़ता है। बहुत कम ही ऐसे अवसर आते हैं जब अबला अपने आपको इन परिस्थितियों से मुक्त कर सकती है। अनमेल विवाह होने पर भी इन्दुमती, 'कन्या का तपोवन' की नायिका अपने विवेकपूर्ण आचरण से जीवन को सुधार लेती है। स्वर्गम्-नरकम्, 'ईडू-जोडू' तथा वाग्दानम् नाम के तेलुगु नाटकों की नायिकाएँ समाज का सामना कर इस प्रकार के अनमेल विवाह से बच जाती हैं।

अनमेल विवाह का एक रूप बाल-विवाह में भी मिलता है। उसका चित्रण भी नाटकों में हुआ है। युवती युवक एक दूसरे के विषय में तो क्या अपने आपके ही बारे में भी सोचने की अवस्था से पूर्व ही कभी-कभी विवाह बन्धन में बंध जाते हैं। एक दूसरे को अपने अनुरूप न पाकर बाद में वे असन्तुष्ट हो जाते हैं। कुछ परिस्थितियों में अतृप्ति इतनी अधिक हो जाती है कि अवस्था प्राप्त करने पर पति से पत्नी ठुकराई जाती है। हिन्दी के डाक्टर [3.6.1] तथा तेलुगु के 'व्यामोहमु' [3.6.2] नाटकों में इसी परिस्थिति का चित्रण है। दोनों नाटकों के नायक कम पढ़ी-लिखी पत्नी को अपने सामाजिक स्तर के अनुरूप न पाकर ठुकरा देते हैं। डाक्टर नाटक की नायिका 'अनीला' में प्रतिशोध की प्रक्रिया होती है। किन्तु अपने मन को सन्तुलित कर वह एक कुशल डाक्टर बन जाती है। व्यामोहमु नाटक की नायिका सुशीला की कुशलता के कारण पति से उसका पुनर्मिलन हो जाता है।

आर्थिक असमानता का प्रभाव व्यक्ति के जीवन, प्रेम विवाह आदि पर भी पड़ता है। धनिक वर्ग का व्यक्ति निम्न या मध्यम वर्ग के व्यक्ति से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ता नहीं चाहता। युवती-युवकों के सामने यह एक दीवार बन जाती है। युवक दूसरे से विवाह कर जीवन से समझौता कर लेता है किन्तु युवती नहीं कर पाती। हिन्दी नाटक 'अधूरी-आवाज' [2.6.2] की नायिका आत्महत्या कर लेती है। तेलुगु नाटकों में भी पर्याप्त उदाहरण इस स्थिति के हैं जैसे 'वारसुरालु' [2.6.1], पल्लेपिल्ला [2.6.3], तिरस्कृति [2.6.4] आदि नाटक। तिरस्कृति नाटक में अबलाओं के सबल बनने का सन्देश नाटककार ने अपनी नायिका के माध्यम से दिया है।

विवाह की समस्या तो कठिन है ही, नारी के वैवाहिक जीवन में भी कठिनाइयों की कमी नहीं है।

पति-गृह में पत्नी को अभी सम्मानपूर्ण स्थान नहीं मिल सका है। पति आज भी अपेक्षाकृत बहुत स्वतन्त्र है और पत्नी बहुत परतन्त्र। युगों से बन्दिनी नारी कभी प्रतिक्रिया स्वरूप विद्रोहिणी बनती है तो अनेक समस्याएँ जन्म लेती हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि स्त्री तन और मन से जन्मतः एवं स्वभावतः अपेक्षाकृत कोमल है अतः वह अपनी समस्याओं का निराकरण कोमलता से ही अधिक सफलतापूर्वक कर सकती है। विशेष परिस्थितियाँ अपवाद हैं अन्यथा स्त्री के लिए प्रबल विद्रोह की अपेक्षा स्नेह एवं विवेकपूर्ण समर्पण का मार्ग ही श्रेयस्कर है। पति के न रहने पर स्त्री का स्थान और भी अधिक दयनीय हो जाता है। सुश्री महादेवी वर्मा के अनुसार[4] स्त्री का व्यक्तित्व वह शून्य दहाई है जिसका मूल्य पति रूपी इकाई पर ही निर्भर रहता है। यही भिन्न पक्ष है जिसके चारों ओर स्त्री

की समस्याएँ मँडराती हैं। इन समस्याओं को तेलुगु और हिन्दी के स्वातन्त्र्योत्तर नाटकों में पर्याप्त स्थान मिला है।

पति स्वयं पियक्कड़, वेश्यागामी और हर प्रकार से दुश्चरित्र हो सकता है, किन्तु पत्नी की पवित्रता के प्रति वह बहुत सतर्क रहता है। तनिक-सी बात पर वह पत्नी पर सन्देह कर सकता है। पति को उचित मार्ग में लाने के प्रयत्न में कभी-कभी पत्नी की आहुति ही हो जाती है—जैसे 'नर्स' नाटक की नायिका ऊषा [3.4.1]। इसी प्रकार से तेलुगु नाटक मंगलसूत्र [3.4.2] की नायिका अपने इस प्रयत्न में सफल हो जाती है। क्योंकि उसकी परिस्थितियाँ अलग हैं। पति के सन्देहात्मक प्रवृत्ति के कारण कभी-कभी वे एक दूसरे से अलग हो जाते हैं जैसे पोरपाटु-तेलुगु नाटक [3.2.1] में। इसी सन्देह के कारण कभी पति अपनी पत्नी का खून कर बैठता है जैसे 'चिल्लर कोट्टु चिट्टेम्मा' नाटक में [3.5.3] पति अपनी पत्नी की हत्या कर देता है। अपनी सन्देहात्मक प्रवृत्ति के कारण पति का पत्नी को एक प्रकार से ताले में बन्द रखना कितनी बर्बरता है। पति यह नहीं सोचता कि पत्नी की आत्मा एवं शरीर दोनों ही इस प्रकार के कैद में रोगग्रस्त हो जाते हैं और ऐसे जीवन और मृत्यु में कोई अन्तर नहीं रहता। सुजाता [6.3.1] नाटक में पत्नी को पति इस प्रकार ताले में बन्द रखता है।

शारीरिक एवं मानसिक कष्ट झेलने में शिक्षित तथा अशिक्षित पत्नियों में कोई अन्तर दिखायी नहीं देता। मंगलसूत्र [3.3.2] की सुशिक्षित नायिका अलका, तेलुगु के स्वर्गम्-नरकम् नाटक [6.5.6] की नायिका सुशिक्षित ललिता तथा अन्धा कुआँ नाटक [3.3.9] की अशिक्षित एवं ग्रामीण नायिका सूका आदि सभी की कहानियाँ एक प्रकार की ही हैं। इनके पति इन्हें रात-दिन मारते-पीटते हैं और अपने घर में ही वे सभी प्रकार से परतन्त्र हैं। उनका विवाह सुख-सन्तोष के लिए नहीं, वरन् आजन्म कारावास का दण्ड भोगने के लिए हुआ है। हाँ, अलका अपने आपको उस कारावास से मुक्त कर लेती है क्योंकि इसमें उसके पिता तथा अन्य व्यक्ति सहायता करते हैं। किन्तु सूका उसी नरक में मर जाती है।

इतने कष्टों को सहने पर भी पत्नी को वैवाहिक जीवन में बहुत कम सुरक्षा मिलती है। किसी भी क्षण उसे लात मारकर निकालने का अधिकार पति को युगों से मिला हुआ है। तेलुगु के 'अनुबन्धालु' नाटक में [3.9.1] पति गर्भिणी पत्नी को इसलिए बाहर निकाल देता है क्योंकि उसने विवाह से पहले किसी और से प्रेम किया था। भारत में नारी जीवन इतना दुर्भाग्यपूर्ण है कि ऐसे तुच्छ कारणों के लिए भी पत्नी को निकाल दिया जाता है। बेचारी ऐसी 'परित्यक्ता' को समाज तो क्या, स्वयं पिता भी आश्रय देना पसन्द नहीं करते। पति उसे मृतक घोषित कर दूसरा विवाह कर लेता है। 'सुहाग बिन्दी' [3.8.1] नाटक में ऐसी ही परित्यक्ता की समस्या का चित्रण है। बेचारी के लिए समाज के व्यक्तियों की कुदृष्टि से अपने आपको बचाना कोई आसान काम नहीं। 'नारी की साधना' [3.8.3] नाटक में परित्यक्ता नारी द्वारा इन कठिन परिस्थितियों का सामना करने का चित्रण है। 'पंजरम्' नाम के तेलुगु नाटक में असहाय परित्यक्ता अबला की कहानी है। किन्तु अन्त में पति अपनी भूल समझ पत्नी को बुरे व्यक्तियों के जाल से बचाता है।

भारतीय समाज में सबसे दयनीय स्थिति विधवा की है। वह सभी प्रकार से परतन्त्र है—चाहे मायके में हो या ससुराल में। पिता और पति की सम्पत्ति पाने में भी कई प्रकार के बन्धन उसके सामने आते हैं। पति के मरण में अपना कुछ दोष न होते हुए भी ससुराल तथा मायके के व्यक्तियों से उसे खरी-खोटी सुननी पड़ती है। कभी-कभी इस जीवन से तंग आकर आत्महत्या करने का साहस करती है—जैसे हिन्दी नाटक 'सुहागिन' [4.1.2] तथा 'फैसला' [4.1.1] की नायिकाएँ। आज के इस वैज्ञानिक युग में भी उनके पुर्नविवाह की संख्या अति अल्प ही है। उनके पुर्नविवाह का प्रस्ताव ही पाप माना जाता है जैसे 'सन्देशमु' [1.2.2] की नायिका पुर्नविवाह न हो सकने के कारण समाज सेवा में ही दिन बिताती है। हाँ, तेलुगु नाटक 'प्रेमालयमु' [4.2.1] की नायिका अपने जीवन में हरियाली ला सकती है। सन्तानवती विधवा के सामने कई समस्याएँ रहती हैं। वह न हँस सकती है, न रो सकती है, उसके हर कदम पर समाज की कड़ी निगाह रहती है। पुर्नविवाह का प्रश्न ही उसके लिए नहीं उठता—जैसे खण्डहर [4.3.1] नाटक में।

सारे संसार में वेश्यवृत्ति एक नवीनतम व्यवसाय है। यह एक ऐसा वर्ग है जिसे समाज के व्यक्ति अपनी वासना की तृप्ति का साधन मात्र मानते हैं। इन वेश्याओं की समस्याओं पर प्रकाश डालने से पहले हमारे सामने यह प्रश्न आता है कि इनके पतन के कारण क्या हैं ? इसके कई प्रकार के समाधान प्राप्त होते हैं। कभी माता-पिता का धन का लालच है, कभी अनमेल विवाह, कभी सामाजिक सुरक्षा का अभाव, कभी निस्सहाय स्थिति। इसका चित्रण हिन्दी तथा तेलुगु दोनों भाषाओं के नाटकों में मिलता है। हिन्दी के कलंक या वेश्या [5.1.1], समाज की चिनगारी [5.1.2]सती वेश्या अथवा समाज की भूल [5.1.6] आदि नाटक तथा तेलुगु के रक्त तूफान [5.1.3] निर्मला [5.1.4] आरदुकन्नीरू [5.1.5] आदि नाटक इसके उदाहरण हैं।

इन वेश्याओं की ही नहीं वरन् इनकी सन्तान की भी स्थिति कितनी दयनीय होती है तथा उनके विवाह में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इसका उदाहरण—ज्वार-भाटा [5.2.1] तथा तेलुगु के एदुरीता [5.3.3] नाटक में प्राप्त है। समाज का कोई सहृदय व्यक्ति इन वेश्याओं का उद्धार करना चाहता है तो उसके सामने कठिनाइयों की दीवार खड़ी कर दी जाती है। इसका प्रभाव उस वेश्या पर क्या होता है —इसका चित्रण तेलुगु नाटक—पुनर्जन्म [5.3.2] सन्देशमु [5.3.2] में मिलता है। इन सबसे अलग केवल मन्दिरों में अपना जीवन समर्पित करने वाली देवदासियों की समस्या का चित्रण तेलुगु नाटक मनोरमा [5.5.1] में किया गया है।

यह जानते हुए भी कि दहेज एक सामाजिक बीमारी है, इसका निवारण किया नहीं जा रहा है। नित्य प्रति जीवन में दहेज के कारण कितने जीवन आँसुओं से बिताये जा रहे है, यह सब जानते हैं। अतः हिन्दी और तेलुगु दोनों भाषा के नाटकों में दहेज की कुप्रथा का चित्रण मिलता है। कभी दहेज की कमी के कारण विवाह रुक जाता है जैसे हिन्दी के दहेज [6.1] तथा तेलुगु के 'पेल्लि' [6.1.2] नाटकों में। दहेज नाटक में नायिका आत्महत्या कर लेती है और पेल्लि नाटक में पिता। श्रीमती मालती श्रीखण्डे के नाटक दहेज [6.1.3] में तथा तेलुगु में पेल्लि, मन्दिरि नाटकों में दहेज की समस्या का समाधान

भी प्रस्तुत है। दहेज [6.1.4] तथा सोने की जंजीरें [6.1.5] नाटकों में पर्याप्त दहेज न ला सकने के कारण बहुओं को जो यातनाएँ सहनी पड़ती हैं—उनका चित्रण मिलता है।

आधुनिक आर्थिक परिस्थितियों में नारी को कभी-कभी नौकरी करना अनिवार्य प्रतीत होता है। किन्तु दुर्भाग्यवश बहुधा नौकरी करनेवाली नारियों को सुरक्षा का अभाव रहता है। कभी-कभी उन्हें पतित समझा जाता है—जैसे तेलुगु नाटक पतंग [6.2.1] तथा आमेनिर्दोषि [6.2.2] में और उन्हें अपने वश में लाने का प्रयत्न किया जाता है। कभी-कभी मजबूरियों के कारण उनका पतन भी हो जाता है। जैसे पनिमनिषि [6.2.3] नाम के तेलुगु नाटक में। अभिनय तथा सिनेमा के क्षेत्र में किसी प्रकार की स्वतन्त्रता और सुरक्षा नहीं होती। नायिकाएँ एवं अभिनेत्रियाँ, निर्माणकर्ता, निर्देशक आदि के हाथ का खिलौना बन जाती हैं। वे जैसे चाहते नचाते हैं। हिन्दी के दहेज [6.1.4] नयी एक्स्ट्रेस, तथा तेलुगु के महानटी [6.2.4] आदि नाटकों में उनका चित्रण मिलता है। घर में शान्तिमय वातावरण के अभाव में पेशे में रहनेवाली नारी के टूटते हुए जीवन का चित्रण 'बिना दीवारों के घर' [6.2.5] नाटक में है। पति पत्नी की बीच की खाई इतनी बढ़ जाती है कि दोनों का वैवाहिक जीवन विच्छिन्न हो जाता है। लेकिन क्या नारी को घर और बाहर के जीवन में से किसी एक को ही चुनना आवश्यक है। क्या वह नौकरी आदि व्यवसाय का निर्वाह करते हुए गृह-लक्ष्मी के पावन स्थान को प्राप्त नहीं कर सकती? यह एक ज्वलन्त पर स्वाभाविक प्रश्न है।

विवाह विच्छेद की समस्या तथा नारी शिक्षा की समस्या पर लिखे गये नाटक अपेक्षाकृत कम हैं। हिन्दी के हिन्दूकोड बिल [6.4.1] तथा तेलुगु के विडाकुलु [6.4.2] नाटकों में पति अपनी सुविधा तथा मनमानी करने के लिए पत्नी को तलाक देने की धमकी देते हैं। इसका कारण है उसकी निस्सहाय स्थिति तथा आर्थिक परतन्त्रता। पति जानता है कि पत्नी सभी ओर से निस्सहाय है। भोजपुरी में लिखी गयी—मेहरारुन की दुरदसा—नाटक में अन्य कई समस्याओं के साथ-साथ नारी शिक्षा पर भी प्रकाश डाला गया है। सन्तानवती नारी की समस्या अथवा माता की समस्या के चित्रण हिन्दी के पार्वती [3.10.1] तथा तेलुगु के शिक्षार्हुलु [3.10.2] नाटकों में मिलते हैं।

प्राचीन नारी से भिन्न आधुनिक नारी के लिए अपने घर से बाहर निकल विभिन्न कार्यकलापों के लिए अकेली जाना, अनिवार्य है। एक ओर उसकी इस प्रगति पर सन्तोष है दूसरी ओर समाज में घटती हुई सुरक्षा के कारण उसके प्रति होनेवाले अत्याचारों को देख दुःख होता है। कभी-कभी समाज के कुछ व्यक्तियों के कारण ऐसी स्त्रियाँ अपना सतीत्व खो बैठती हैं तो कभी प्राण ही। इस प्रकार के समाचार नित्य हम समाचार पत्रों में देखते हैं। नाटककारों ने भी इसको अपनी विषय वस्तु बनाया है। कुछ दुश्चरित्र व्यक्तियों के कारण अपने सतीत्व भंग होने पर कन्या आत्मघात कर लेती है। जैसे सत्पत [6.5.2] तथा पगली [6.5.1] नाटक की नायिकाएँ। कभी-कभी अपहरण कर उन्हें वेश्या गृहों में रख दिया जाता है। इसका उदाहरण तेलुगु नाटक 'प्रेमनगर' [6.5.4] में मिलता है। अगर साहस कर अकेली जीने के लिए वह स्वयं तैयार हो भी जाये, किन्तु

चारों ओर के व्यक्ति उसे जीने नहीं देते। चाहने पर भी वह इन परिस्थितियों से बाहर नहीं आ सकती है और वहीं उसका अन्त हो जाता है, जैसे तेलुगु नाटक 'प्रेमज्योति' की नायिका। [6.5.3]। इस प्रकार के अत्याचार विवाहिता नारियों पर भी होते हुए देख आश्चर्य होता है। नारी की विवशता का लाभ उठाकर कुछ पुरुष अपनी वासनाओं की तृप्ति करने का प्रयत्न करते हैं। जैसे आकाशानिकि निच्चेनलु [6.5.5] नाम के तेलुगु नाटक की नायिका कस्तूरी की आर्थिक कठिनाइयों का लाभ उठाने का प्रयत्न किया जाता है, जिसमें वह मर ही जाती है। स्वर्गम-नरकम् [6.5.6] की नायिका ललिता को भी अकेली देख बलात्कार करने का प्रयत्न किया जाता है, किन्तु वह बच जाती है। दोनों भाषाओं के नाटककारों ने यथार्थ स्थिति के साथ-साथ आदर्श भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। अर्थात् समस्या के साथ-साथ समाधान भी प्रस्तुत करने का प्रयास है।

इस सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात् हम यह अनुभव करते हैं कि स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और तेलुगु भाषाओं के नाटककारों ने अपने चारों ओर के समाज की लगभग सभी नारी समस्याओं को अपनी विषय वस्तु बनाया है। यह प्रवृत्ति युग के अनुरूप है।

नारी की इन्हीं समस्याओं से द्रवित हो कवि की वाणी घोषित करती है—

"मुक्त करो नारी को, मानव चिरवन्दिनि नारी को
युग युग की निर्मम कारा से अपनी, सखी, प्यारी को।"

संदर्भ-संकेत

1. अर्थात् जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं।
2. आर्य संस्कृति में नारी का स्थान [लेख], शिवकुमार शास्त्री—संस्कृति-संचिका-53, पृ० 15
3. वही
4. शृंखला की कड़ियाँ—भूमिका।

सहायक ग्रन्थ सूची

हिन्दी

1. हिन्दी नाटक कोश, डा० दशरथ ओझा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1975
2. हिन्दू सामाजिक संस्थाएँ, शिवस्वरूप सहाय, किताब महल, इलाहाबाद, 1964
3. सामाजिक समस्याएँ और विघटन, प्रो० रांगेय राघव तथा प्रो० श्याम शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1961
4. भारतीय सामाजिक संरचना और संस्कृति, शम्भुरत्न त्रिपाठी
5. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य, डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली
6. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, 14वाँ भाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा
7. नव्य हिन्दी नाटक, डा० सावित्री स्वरूप, ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर, 1967
8. आन्ध्र हिन्दी रूपक, डा० इ०पाण्डुरंगराव, नागरी प्रकाशन, प्रा०लि० पटना, 1960
9. नाटककार अश्क, संकलन : कौशल्या अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954
10. हिन्दी के समस्या नाटक, मांधात ओझा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
11. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद
12. अतीत के चल-चित्र, श्रीमती महादेवी वर्मा, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद
13. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, डा० विवेकीराय
14. नाटक और यथार्थवाद, कमलिनी मेहता, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
15. छायावादी कवियों की नारी भावना, प्रतिभा गर्ग, उस्मानिया विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त शोध प्रबन्ध (अमुद्रित)
16. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, महेन्द्र भटनागर, नवभारत सहकार प्रकाशन, प्रतिष्ठान, दिल्ली
17. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य
18. हिन्दी निबन्ध, शिवकुमार मिश्र, नारायण बुक डिपो, कानपुर, 1959
19. रामचरित मानस, गो० तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर

हिन्दी नाटक

1. अन्धा कुआँ, लक्ष्मीनारायण लाल, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, 1956
2. अधूरी आवाज, कमलेश्वर, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1962
3. अलग-अलग रास्ते, उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954
4. कन्या का तपोवन, रामनरेश त्रिपाठी, आदर्श पुस्तक भण्डार, कलकत्ता, 1954
5. कलंक या वेश्या, जगदीश शर्मा, देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली, 1962
6. कैद और उड़ान, उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1950
7. खण्डहर तथा न्याय, विमला रैना, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
8. ज्वार भाटा, राजकुमार, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, काशी, 1960
9. डाक्टर, विष्णु प्रभाकर
10. त्रिकोण की भुजाएँ, डा० चन्द्रशेखर, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1970
11. दहेज, न्यादरसिंह बेचैन, देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली, 1951
12. दहेज, जगदीश शर्मा " " 1962
13. दहेज, मालती श्रीखण्डे
14. देवर-भाभी, बौआजा चौधरी मस्ताना, ग्रन्थालय प्रकाशन, दरभंगा, 1965
15. नयी एक्ट्रेस, जगदीश शर्मा, देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली
16. नर्स, जगदीश शर्मा, " " 1959
17. नारी की साधना, अभयकुमार यौधेय, शशांक प्रकाशन, मेरठ छावनी, 1954
18. पगली, जगदीश शर्मा, देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली, 1956
19. पार्वती, उदयशंकर भट्ट, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1958
20. फैसला, नरेश मेहता, देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली, 1956
21. बिना दीवारों के घर, मन्नू भण्डारी, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली 1965
22. मंगलसूत्र, वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, 1953
23. बिदाई नाटक जगदीश शर्मा, देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली, 1959
24. विधवा, जगदीश शर्मा, देहाती पुस्तक भण्डार दिल्ली
25. सगाई, शम्भुदयाल सक्सेना, नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर, 1953
26. सती वेश्या अथवा समाज की भूल, मुंशी दिल लखनवी, न्यू स्टैण्डर्ड पब्लिकेशन्स दिल्ली, 1949
27. सम्पत, तृप्तिनारायण लाल, 1964
28. समाज की चिनगारी, देवेन्द्रनारायण और सत्यनारायण गुप्त, गंगा पुस्तक मन्दिर पटना, 1961
29. सुजाता, गोविन्दवल्लभ पन्त, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1961
30. सुहाग-बिन्दी, गोविन्दवल्लभ पन्त, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, 1949
31. सुहागिन, जगदीश शर्मा, देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली, 1967
32. सोने की जंजीरें, विश्वेश्वरदयाल कुशल " "

33. हिन्दूकोडबिल, न्यादरसिंह बेचैन, देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली, 1952
34. हिन्दू विधवा, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली, 1953

संस्कृत

1. मनुस्मृति, व्याख्या, सूर्यभूषण योगी, मोतीलाल बनारसीदास, जवाहरनगर, दिल्ली
2. अमरकोश, व्याख्या, वेंकटकृष्ण शर्मा, बाल सरस्वती बुक डिपो कर्नूल
3. रघुवंश

तेलुगु

1. युगयुगाल्लो भारतीय महिला, श्रीमती जे० बरलक्ष्मी, ललिता प्रेस, खैतराबाद, हैदराबाद
2. भारतीय नारी नाडु-नेडु, इल्लिंदल सरस्वती देवी, युवाभारती सिकन्दराबाद, 1975
3. महात्मुडु-महिला, श्रीमती सरस्वती देवी
4. स्त्रीलु-समस्यलु, जी० सरलादेवी, पी० रामाराव, आन्ध्र प्रदेश महिला फेडरेशन, हैदराबाद, 1975
5. भारतीय महिललु चट्टरीत्या वारि हक्कुलु, के० नरसिंहमु " "
6. तेलुगु नाटकविकासमु, डा० पी० एस० आर० अप्पाराव, यू० जी० सी० प्रकाशन, आन्ध्र प्रदेश, 1967
7. नारी जगत्तु, श्रीमती इल्लिंदल सरस्वती देवी, नवोदया पब्लिशर्स, विजयवाड़ा
8. आन्ध्र नाटक दर्शिनी, श्रीनिवास चक्रवर्ती, जयन्ती पब्लिकेशन, विजयवाड़ा, 1963
9. संस्कृत-आन्ध्र निघंटुवु, वाबिल्ल रामस्वामी पब्लिकेशन्स, मद्रास

नाटक

1. अनामुकुल, एस. जोगिराजु, कलाकेली प्रकाशन, सामलकोटा, 1950
2. अन्ना चेल्लेलु, पिनिशेट्टि श्रीराम मूर्ति, देशी कविता मण्डली; विजयवाड़ा, 1952
3. अनुबन्धालु, ओंटेल सिद्धेश्वर, आदर्श ग्रन्थ मण्डली, विजयवाड़ा, 1962
4. आशा, सानं० वि० रघुनाथराव, सन्मित्रा-पब्लिकेशन्स, हैदराबाद, 1955
5. आमेनिर्दोषि, पी० आदिनारायण मूर्ति, जयश्री पब्लिकेशन्स, राजमण्डी, 1973
6. आकाशनिकि निच्चेनलु, वी०आर०एस० राजू, विजयश्री पब्लिकेशन्स, विजयवाड़ा, 1977
7. आरदुकन्नीरू, गरिकपाटि, 1969
8. ईडू-जोडू, भमिडिपाटि कामेश्वर राव, कोंडपल्लिवीर वेंकय्या एण्ड सन्स, राजमण्डी 1953
9. एदुरीता, कोंडमुदि गोपालराय शर्मा, भवानी प्रोडक्शन्स, मद्रास, 1947
10. कलावती, सी० वेंकट शास्त्री, 1949
11. कन्नबिड्डा, बी० एन० सूरी, बाबा पब्लिकेशन्स मेडूरू (कृष्णा जिला), 1957

12. चिल्लरकोट्टु, दासं गोपालकृष्णा, गोंडपल्लि वीरवेंकय्या एण्ड सन्स, राजमण्डी 1962
13. तिरस्कृति, रामकोंड विश्वनाथ शास्त्री, अरुणा पब्लिशिंग हाउस, विजयवाड़ा, 1974
14. निर्मला, कोर्रपाटि गंगाधरराव, कोडपल्लि वीरवेंकय्या एण्ड सन्स, राजमंडी, 1965
15. पंजरम्, अक्सराल सूर्याराव, विशालांध्रा पब्लिकेशन्स, विजयवाड़ा, 1958
16. पतंगं, जगन्नाथ, प्रेमचन्द पब्लिकेशन्स विजयवाड़ा, 1964
17. पनिमनिषि, वी० एन० सूरी, राज्यम् पब्लिकेशन्स गुड़िवाड़ा, 1954
18. पल्लेपिल्ला, सीतंराजु वेंकटेश्वर राव, सरस्वती बुक डिपो, विजयवाड़ा
19. पुनर्जन्म, वेल्लंकोंड रामदास, उदयसाहिती पब्लिकेशन्स विजयवाड़ा, 1956
20. पेल्लि, सीतंराजु वेंकटेश्वर राव, जयश्री बुक डिपो, विजयवाड़ा, 1955
21. पेल्लिपंदिरि ” ”
22. पोरपाटु, बी० भास्कर राय ” ” 1953
23. प्रेमज्योति, कर्पूरपु आंजनेयुलु, भास्कर पब्लिशिंग हाउस, विजयवाड़ा, 1973
24. प्रेमनगर
25. प्रेमालयमु, मद्दिनेनि राधाकृष्ण मूर्ति
26. मनोरमा, पी०वी० राजमन्नार, देशी कविता मण्डली, विजयवाड़ा, 1959
27. महानटी, तौलेटी, 1970
28. मंगल सूत्रं, सीतंराजु वेंकटेश्वर राव, 1966
29. रक्त तूफान्, जी० एल० सत्यबाबू
30. रक्त कन्नीरु कथा, सीतंराजु वेंकटेश्वर राव
31. लक्ष्मीपतिगारि अम्मयिलु, दर्भारामशा, कलाकेलि, सामर्ल कोटा, 1951
32. वारसुरालु, शिवम्, देशी कविता मण्डली, विजयवाड़ा, 1952
33. व्यामोहमु, वेदमु वेंकटराय शास्त्री, 1952
34. विडाकुलु, कोडालिगोपालराव, 1963
35. शारदा, पंपिशेट्टिवेंकटेश्वर राव, आदर्श ग्रन्थ मण्डली, विजयवाड़ा, 1962
36. शिक्षार्हुलु, कोप्पुल बसन्तराव
37. स्वर्गम्-नरकम्, पी० वी० आचार, देशी कविता मण्डली, विजयवाड़ा, 1961
38. सन्देशमु, के० वी० प्रसाद राव, 1960
39. सुशील पेल्लि, देवरकोंड बालगंगाधर तिलक, प्रजाप्रचुरणालु एलूरू, 1961
40. हंतकुलेवरु, कोर्रपाटि गंगाधर राव

पत्र-पत्रिकाएँ

हिन्दी—1. संस्कृति-संचिका, (52, 53), 2. सरिता, 3. आलोचना—स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य विशेषांक (1965-66) (चार भाग)

तेलुगु—1. आन्ध्र प्रभा, 2. आन्ध्र पत्रिका, 3. ज्योति, 4 आन्ध्रज्योति

अंग्रेजी—ईव्स विकली आदि

ENGLISH

1. Women in Manu and his Seven Commentators. R. M. Das, Tara Publications Kamachha, Varanasi, 1961
2. Our Cause, Edited by : Shyam Kumari Nehru, Kitabistan, Allahabad
3. The Hindu Women and her future, Chandrakala A. Hate, New Book Company Ltd., Bombay, 1948
4. Indian women, Edi. by : Devaki Jain, Publications Division Ministry of Information & Broadcasting, Govt. of India, 1975
5. Women in modern India, Edited by: Evelyn C. Gedge, D. B. Tarapore walla Sons & So., Bombay
6. women and Social Injustice, M. K. Gandhi, Navjivan Publishing House, Allahabad
7. The Hindu women, Margret Cormack, Asia Publishing House, Delhi, 1961
8. Indian women Through the ages, P. Thomas, Asia Publishing house, Delhi, 1964
9. Prevention of Prostitution, League of Nations Publication, 1943
10. Marriage and the working women in India, Pramila Kapoor, Vikas Publication, 1970
11. The Position of women in Hindu Civilization, A.S. Altekar, Motilal Banarasi Das, Jawahar Nagar, Delhi, 1956
12. women in the Vedic Age, Shankuntala Rao Shastry, Bharatiya Vidya Bhavan Bombay
13. Modern Telugu literature and theatre, S. M. Y. Sastry, Andhra Mahasabha, Bombay, 1976
14. Othello, william Shakespeare

ooo